Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ISSN 2277-4351
UTTMUL 000 25/35/1/2012-TC

वैदिक वाग् ज्योतिः

वैदिक वाग् ज्योतिः

Vaidika Vāg Jyotiḥ

An International Refereed Research Journal on Vedic Studies

Vol. 1 | JAN-JUNE 2013 | No.2
जनवरी–जून 2013

सम्पादक
दिनेशचन्द्र शास्त्री

गुरुकुल काङ्गड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
Gurukula Kangri Vishwavidyalaya
Haridwar-249 404(Uttarakhand), India
http://www.gkv.ac.in

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ISSN 2277-4351
Vol. 1, Jan-June 2013, No.2

वैदिक वाग् ज्योतिः

'वैदिक वाग् ज्योतिः' 'Vaidika Vāg Jyotiḥ'

An International Half Yearly Refereed Research Journal on Vedic Studies

Patrons

Dr. Ram Prakash, Chancellor
Prof. Swatantra Kumar, Vice Chancellor
Prof. A.K. Chopra, Registrar
Sh. R.K. Mishra, Finance Officer

Advisory Board

Prof. B.L. Bharteeya, Rajasthan
Acharya Rajvir Shastri, Modinagar, U.P.
Prof. Mahavir Agrawal, Haridwar
Dr. Vinod Chandra Vidyalankar, Jwalapur
Prof. Vijaypal Shastri, GKV, Haridwar
Prof. Maan Singh, Roorkee
Prof. Nicholas Kazana, Athens (Greece)
Prof. Rajendra Vidyalankar, Kurukshetra
Sh. Girish Khosala, USA
Prof. Shashi Tiwari, Delhi
Prof. Gauri Mahulikar, Mumbai
Prof. Kamlesh Chaukashi, Ahamedabad, Gujrat
Acharya Balvir, Rohtak, Haryana
Prof. Vikram Kumar Viveki, Chandigarh
Prof. Kishnaram Bishnoi, Hissar
Prof. Lekhram Sharma, Amritsar
Prof. K.K. Budkar, GKV, Haridwar
Prof. Shrawan K. Sharma, GKV, Haridwar
Prof. Prabhat Kumar, GKV, Haridwar
Prof. Devendra Kumar Gupta, GKV, Haridwar
Dr. L.P. Purohit, GKV, Haridwar

Departmental Advisory Board

Prof. Manudev Bandhu
Prof. Roopkishor Shastri
Dr. Naresh Kumar (Ad-hoc)

Chief Editor

Prof. Dinesh Chandra Shastri
Head, Dept. of Veda, GKV, Haridwar-249 404 (U.K.) India
Email - dineshcshastri@gmail.com
Tel : +91- 9410192541

Reviewers

Prof. Gyan Prakash Shastri, GKV, Haridwar
Dr. Meera Dwivedi, DU, Delhi

Finance Advisor

Sh. Shashi Kant Sharma, ACMA

Business Manager

Librarian
GKV, Haridwar - 249404 (Uttarakhand) India

Annual Subscription

Rs. 150.00, US $ 9, Single Copy: Rs. 75.00
Payment Mode :
D.D. in favour of Registrar G.K.V. Haridwar (U.K.)

Published by

Prof. A.K. Chopra
Registrar, GKV, Haridwar - 249 404 (Uttarakhand) India

Printed at

Kiran Offset Printing Press, Kankhal, Haridwar - 249 404 (U.K.) India, Tel: +91- 9837007222, 01334 -245975

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ISSN 2277-4351
UTTMUL 000 25/35/1/2012-TC

वैदिक वाग् ज्योतिः

वैदिक वाग् ज्योतिः

Vaidika Vāg Jyotiḥ

An International Refereed Research Journal on Vedic Studies

Vol. 1 Jan-June 2013 No.2
जनवरी–जून 2013

सम्पादक
प्रो0 दिनेशचन्द्र शास्त्री
अध्यक्ष, वेद विभाग

गुरुकुल काङ्गड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
Gurukula Kangri Vishwavidyalaya
Haridwar-249 404(Uttarakhand), India
http://www.gkv.ac.in

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयसूची

	श्रुति-सुधा		
	वागृज्योतिर्नितरां विभाति भुवने ज्ञानप्रदं वैदिकम्		
	सम्पादकीय (Editorial)	प्रो० दिनेशचन्द्र शास्त्री	I-XIII
1.	वैदिक याग, पशुहिंसा और दयानन्ददृष्टि	प्रो० वीरेन्द्र कुमार अलंकार	1-8
2.	वशा और उसका स्वरूप	डॉ० बद्रीप्रसाद पंचोली	9-14
3.	मंगलीक योग एवं गुणमेलापक-वेदोक्त यथार्थता की कसौटी पर	श्री वेदप्रकाश शास्त्री	15-24
4.	ऋग्वेद के प्रमुख पुरुष व्यत्ययों की समीक्षा	डॉ०रामनाथ वेदालंकार	25-35
5.	त्रिदोष-सिद्धान्त की वेदमूलकता	प्रो० दिनेशचन्द्र शास्त्री	36-43
6.	बरमूडा-त्रिकोण का रहस्य	डॉ०एम०एल० गुप्ता	44-54
7.	शतपथ ब्राह्मण में अंक-विमर्श : एक विश्लेषण	डॉ अपर्णा धीर	55-61
8.	वेदों में ऊर्जा के स्रोत	डॉ० अर्चना दुबे	62-66
9.	प्रो० मैक्समूलर और वेद	डॉ०कृष्णवल्लभ पालीवाल	67-74
10.	पाश्चात्य वेदानुशीलन : कुछ तथ्यात्मक बातें	प्रो० भवानीलाल भारतीय	75-79
11.	वेद और ईश्वर	(स्व०) श्रीपाद दामोदर सातवलेकर	80-87
12.	यो देवानां नामधा एक एव	(स्व०) वासुदेवशरण अग्रवाल	88-95
13.	वेद का चरम लक्ष्य-वैदिक स्तुति-प्रार्थना-उपासना और उसका स्वरूप	(स्व०) युधिष्ठिर मीमांसक	96-102
14.	भक्ति-एक वैदिक दृष्टिकोण	श्री सन्दीप कुमार चौहान	103-109
15.	वेद प्रतिपादित देवहित आयु और उसका स्वरूप	डॉ० प्रशस्यमित्र शास्त्री	110-114
16.	गोभिल गृह्यसूत्र के परिप्रेक्ष्य में अग्निहोत्र की प्राचीन विधि	प्रो० दिनेशचन्द्र शास्त्री	115-122
17.	भार्गव-वारुणी विद्या का जीवन में महत्त्व	डॉ० दिनेश आर० माछी	123-130
18.	वेद और स्वामी दयानन्द	डॉ० भारतेन्दु द्विवेदी	131-135
19.	मनुस्मृति, आर्यसमाज एवं नारी : एक विवेचन	डॉ० भारती आर्य	136-143
20.	वेदों में आदर्श परिवार की अवधारणा	डॉ० सुशील कुमार 'अमित'	144-148

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

21.	आर्ष साहित्य में प्रत्याहार	डॉ० राम हरीश मौर्य	149-154
22.	वैदिक साहित्य में वर्णित सेना एवं उसके प्रकार	डॉ० नरेश कुमार	155-161
23.	सामवैदिकचिन्तने प्रकृतिमानवयोः सम्बन्धः	डॉ० रामराजउपाध्यायः	162-165
24.	Gratitude and Devotion in the Vedic Tradition	Prof. Shashi Tiwari	166-178
25.	Themes In Vedic Mythology. Significance of Some Vedic Legends	Dr. Kapil Dev Dvivedi,	179-184

–o–

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रुति-सुधा

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒ता॒नि॒ परा॑ सुव।

यद्भ॒द्रं तन्न॒ ऽआ सु॑व ॥ यजु०३०.३॥

(नारायणः। सविता=ईश्वरः। गायत्री। षड्जः)

पदार्थः-(**विश्वानि**) समग्राणि (**देव**) दिव्यगुणकर्मस्वभाव (**सविता**) उत्तमगुणकर्मस्वभावेषु प्रेरक परमेश्वर! (**दुरितानि**) दुष्टाचरणानि दुःखानि वा (**परा**) दूरार्थे (**सुव**) गमय (**यत्**) (**भद्रम्**) भन्दनीयं धर्म्याचरणं सुखं वा (**तत्**) (**नः**) (**अस्मभ्यम्**) (**आ**) समन्तात् (**सुव**) जनय॥

अन्वयः-हे देव सवितस्त्वमस्मद्विश्वानि दुरितानि परा सुव यद्भद्रं तन्न आ सुव॥

भावार्थः-अत्र वाचकलुप्तोपमालंकारः। यथोपासितो जगदीश्वरस्स्वभक्तान् दुष्टाचारान्निवर्त्य श्रेष्ठाचारे प्रवर्त्तयति, तथा राजाऽपि प्रजा अधर्मान्निवर्त्य धर्मे प्रवर्त्तयेत्, स्वयमपि तथा स्यात्॥

(महर्षिदयानन्दकृतवेदभाष्यम्)

*हे **(सवितः)** सकल जगत् के उत्पत्ति कर्त्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त **(देवः)** शुद्धस्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर! आप कृपा करके **(नः)** हमारे **(विश्वानि)** सम्पूर्ण **(दुरितानि)** दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को **(परा, सुव)** दूर कर दीजिए **(यत्)** जो **(भद्रम्)** कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं **(तत्)** वह सब हमको **(आ, सुव)** प्राप्त कीजिए।* ***(महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि, ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना)***

*हे सत्यस्वरूप, हे विज्ञानमय, हे सदानन्दस्वरूप, हे अनन्तसामर्थ्ययुक्त, हे परम कृपालो, हे अनन्तविद्यामय, हे विज्ञानविद्याप्रद **(देव)** हे परमेश्वर! आप सूर्य्यादि सब जगत् का और विद्या का प्रकाश करने वाले हो, तथा सब आनन्दों के देने वाले हो, **(सवितः)** हे सर्वजगदुत्पादक सर्वशक्तिमन्! आप सबको उत्पन्न करने वाले हो, **(नः)** हमारे **(विश्वानि)** सब **(दुरितानि)** दुःख हैं उनको और हमारे सब दुष्ट गुणों को कृपा से आप **(परासुव)** दूर कर दीजिए अर्थात् हमसे उनको सदा दूर रखिए **(यद्भद्रं)** और जो सब दुःखों से रहित कल्याण हैं जो कि सब सुखों से युक्त भोग है उसको हमारे लिये सब दिनों में प्राप्त कीजिए। सो सुख दो प्रकार का है-एक जो सत्यविद्या की प्राप्ति में अभ्युदय अर्थात् चक्रवर्त्ति राज्य, इष्ट, मित्र, धन. पुत्र, स्त्री और शरीर से अत्युत्तम सुख का होना; और दूसरा जो निःश्रेयस सुख है कि जिसको मोक्ष कहते हैं; और जिसमें ये दोनों सुख होते हैं उसी को भद्र कहते हैं **(तन्न आसुव)** उस सुख को आप हमारे लिये सब प्रकार से प्राप्त करिए और आपकी कृपा के सहाय से सब विघ्न हमसे दूर रहें।*

(महर्षि दयानन्दकृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, ईश्वरप्रार्थनाविषयः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाग्ज्योतिर्नितरां विभाति भुवने ज्ञानप्रदं वैदिकम्

नाना-तर्कैर्वितर्कैर्विबुध-जनमतैर्भूषयल्लेखमालाः,
शास्त्राणां दर्शनानां निगमपथजुषां ब्राह्मणानां बहूनाम्।
वाक्यैः सिद्धान्तनिष्ठैः समम् उपनिषदां तत्त्वमाधातुकामम्,
वाग्ज्योतिर्वैदिकं तत् प्रसरतु भुवने ज्ञानविज्ञानदं नः॥१॥ (स्रग्धरा)

विद्वद्व्यूहविचारसारसहितं यत् प्राच्यविद्याऽऽश्रितम्,
अज्ञानाऽन्धतमोनिवारणपरं सद्-बुद्धिशुद्धि-प्रदम्।
शोधोद्योगपरायणा बुधजना जानन्तु तद् दीपकम्,
वाग्ज्योतिर्नितरां विभाति भुवने ज्ञानप्रदं **वैदिकम्**॥२॥ (शार्दूलविक्रीडितम्)

-प्रशस्यमित्रशास्त्रिणः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotiḥ Vol.1, No.2 (I-XIII) Jan-jun 2013
ISSN 2277-4351

सम्पादकीय (Editorial)

(i) मातृशक्ति के प्रति बढ़ते अपराध और उनका वैदिक निदान

वेदों के अनुसार यातुधान, रक्षस्, दस्यु, पिशाच, स्तेन और तस्कर-इन छह नामों का दण्डनीय व्यक्तियों में उल्लेख किया जाता है। ये सभी नाम प्राय: पर्यायवाची हैं। साथ ही इनके अर्थों में परस्पर कुछ भेद भी है। यों तो सभी प्रकार के अपराधी इन नामों के भीतर आ जाते हैं। परन्तु वेद में स्पष्टता के लिये स्थान-स्थान पर कितने ही अपराधियों के नाम गिनाये गये हैं, जिनमें दुष्कृत, कोकयातु एवं स्त्रीभिर्यो वृषणं पृतन्यात् (व्यभिचारी)-नाम से कथित अपराधी भी परिगणित हैं। १. दुष्कृत=दुराचरण करने वाला, २. कोकयातु=कोक पक्षी की तरह आचरण करने वाला। कोक पक्षी में कामवासना प्रबल रूप से होती है। जो लोग अपनी कामातुरता के कारण दूसरों को कष्ट पहुंचाएं, बलात्कार करें; वे कोकयातु हैं। ३. स्त्रीभिर्यो वृषणं पृतन्यात्=जो पुरुष स्त्रियों से व्यभिचार करे, वह व्यभिचारी पुरुष है। ऋग्वेद १०.५.६-**स॒प्त म॒र्यादा॑: क॒वय॑स्ततक्षु॒स्तासा॒मेका॒मिद॒भ्यं॑हु॒रो गा॑त्। आ॒योर्ह॑ स्क॒म्भ उ॑प॒मस्य॑ नी॒ळे प॒थां वि॑स॒र्गे ध॒रुणे॑षु तस्थौ॥** मन्त्र में सात मर्यादाओं की चर्चा की गयी है, जिसमें एक मर्यादा आचार्य यास्क के अनुसार तल्पारोहण=व्यभिचार न करना भी है। वेद कहता है जो कोई भी इनकी ओर जाता है, वह महापापी कहलाता है।

उपर्युक्त प्रकार के अपराधी सीधे तौर पर मातृशक्ति के प्रति किये जाने वाले अपराध से सम्बन्धित हैं। ऐसे अपराधियों के लिये वेदों में कई प्रकार के दण्ड बताये हैं। जिनमें पहला यह है कि अपराधी को जिह्वा से पकड़ना चाहिये अर्थात् वाणी से समझाना चाहिये साथ ही अपराधी की धन-सम्पत्ति आदि को छीन कर राष्ट्र के सहायता के योग्य पुरुषों में बांट देना चाहिये। दूसरा यह है कि ऐसे अपराधी को कारागार में डाल देना चाहिये, क्योंकि इनमें ऐसे भी अपराधी हो सकते हैं, जिन पर समझाने और आर्थिक दण्ड-दोनों का ही कोई प्रभाव न पड़े। उन्हें समाज से अलग करके जेल में डालने की आवश्यकता पड़ सकती है। उन्हें कारावास के कठोर दण्ड का विधान है। उन्हें किसी भी प्रकार की जमानत नहीं मिल सकती-ऐसा वेद का कठोर आदेश है। यदि वहाँ रह कर भी न सुधरे तो उसे पुन: जेल में लाकर उस कालकोठरी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्धेरी कोठरी; जिसमें कुछ भी दिखायी न पड़ता हो, डाल देना चाहिये। यदि इतने पर भी अपराधी न सुधरे तो उसके शरीर के विशेष विशेष अंगों को लोहे के गर्म हथियारों से बींध देना चाहिये। जिससे उन्हें अपने अपराध का दण्ड सदा स्मरण रहे और उनके दग्ध अंगों को देखकर सर्वसाधारण जनता भी भयभीत होकर उन अपराधों से बची रहे। अपराधी की दोनों आंखें निकालना-**पातयु परमक्ष्युतावरम्**-अथर्व०१.८.१३ का भी विधान वेद में है। आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ने यहाँ आंखों को उपलक्षण मानते हुए लिखा है कि आंखों की भांति दूसरे अंग भी काट डाले जा सकते हैं।' मातृशक्ति के प्रति एवं शैशवावस्थापन्न बच्चों के प्रति अमानवीय दुष्कृत्य करने वाले घोर अपराधी हो सकते हैं, जो किसी भी प्रकार से न माने, और बार-बार उसी अपराध को करते चले जायें। जिनको देखकर, सुनकर दूसरे भी ऐसा ही दुर्व्यवहार करने को उद्यत हों। समाज पर दुष्प्रभाव न पड़े, अतएव ऐसे लोगों के लिये यह आवश्यक है कि उनके शिश्न को या दूसरे उन-उन अंगों को काट दिया जाये, जिससे वे अपराध करते हैं। ऋग्वेद ७.१०४.२२-**उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्। सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र॥** मन्त्र में तो स्पष्टरूपेण अन्य बुरी वृत्तियों वालों के साथ-साथ कोकयातु=व्यभिचारी को भी राष्ट्र का राक्षस कहा गया है और राजा से, जैसे पत्थरों के द्वारा चनों को पीस दिया जाता है वैसे ही उसे हिंसित करने, मारने वा मसलने की प्रार्थना की गयी है।

देश के वर्तमान परिदृश्य पर दृष्टि डालते हैं तो ध्यान में आता है कि मातृशक्ति के विरुद्ध बलात्कार, अत्याचार, हिंसा, लूटपाट आदि की घटनाओं में निरन्तर वृद्धि हो रही है। कुल मिलाकर देखा जाये तो देश की सामाजिक स्थिति में निरन्तर गिरावट आ रही है। बलात्कार की बढ़ती घटनाएं देश की बिगड़ी हुई सामाजिक व्यवस्था का ही दुष्परिणाम है। इस समस्या का स्थायी समाधान चाहिये तो उनके कारणों को ढूंढ कर निदान की प्रक्रिया अविलम्ब प्रारम्भ करनी होगी।

एक साप्ताहिक पत्र के अनुसार गत वर्ष देश की राजधानी दिल्ली में लगभग ७०० बलात्कार की घटनाएं हुईं, जिनमें से कुछ को ही दोषी ठहराया जा सका-यह आंकड़ा भी सही नहीं है। क्योंकि अनेक घटनाएं तो पुलिस स्टेशन तक पहुंचती ही नहीं हैं। एक समाचार पत्र में विवरण आया कि एक बलात्कारी आटो चालक ने स्वीकार किया कि उसने नौ महिलाओं को अपनी हवस का शिकार बनाया, जिसमें से मात्र दो ने ही शिकायत दर्ज की थी। दूसरी ओर कईं बार वर्षों तक मामले चलते रहते हैं, इसके बाद सजा होगी तो भी उसका कोई मतलब नहीं होता। इसलिये आज के कानून में सुधार होना चाहिये। न्यायालयों (फास्ट ट्रैक कोर्ट)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की संख्या अधिक बढ़ानी चाहिये, पीडितों को शीघ्रातिशीघ्र एक निश्चित समय में न्याय मिलना चाहिये। अपराधी को उपर्युक्त वेदोक्त कठोरतम सजा मिलनी चाहिये। पुलिस की संख्या बढ़ाना और उसको चुस्त-दुरुस्त करना भी आवश्यक हैं। वेदोक्त कठोर कानून के भय से कुछ सुधार हो सकता है क्योंकि कहा भी है-**दण्ड एवाभिरक्षति**। परन्तु इससे स्थायी एवं पूर्ण समाधान सम्भव होगा क्या? देश में इस विषय पर चल रही व्यापक चर्चा में एक बात उभर कर सामने आयी है कि समाज को अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना होगा। मनु के शब्दों में यह मानना पड़ेगा कि **यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता:** अर्थात् जहाँ नारियों का सम्मान होता है, वहां देवता निवास करते हैं। 'परन्तु दृष्टिकोण में बदलाव आये कैसे? यह बड़ा प्रश्न है। फांसी की सजा से या अपराधी के सम्बन्धित अंग को काटने से, पुलिस की व्यवस्था बढ़ाने से, बलात्कारियों के नामों की सूची इन्टरनेट (अन्तर्जाल) पर डालने से यह बदलाव सम्भव है क्या? **मेरी दृष्टि में दृष्टिकोण में बदलाव विचारों से आ सकते हैं। विचारों में बदलाव परिवार के संस्कारों एवं शिक्षा में नैतिकमूल्यों के समावेश तथा समाज के संस्कारक्षम वातावरण से सम्भव हो सकता है।** महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव की शुरूआत स्वयं के परिवार से करनी होगी। परिवार में बहिन, बेटी, पत्नी, माता आदि के साथ सम्मानपूर्वक एवं समानता का व्यवहार हो। निर्धन परिवार भी दो वक्त की रोटी को परेशान हैं। बच्चों की तरफ उचित ध्यान नहीं है। उनका सही विकास नहीं हो पा रहा है। दूसरी तरफ मध्यम वर्ग भौतिकता की दौड़ में जुटा है। पति पत्नी दोनों के नौकरी या व्यवसाय में होने के कारण उनके पास बच्चों के लिये समय नहीं है। इसी प्रकार ज्यादातर और आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न परिवारों में ड्रिंक्स, डांस और क्लब का कल्चर बहुत बढ़ रहा है। जब बच्चों को माता-पिता से स्नेह, संस्कार एवं उचित देख-रेख नहीं मिलती, तब अतृप्त व असहिष्णु किशोर बनता है।

आज समाज में खुलापन भी बढ़ रहा है। अधिकांश फिल्मों, दूरदर्शन चैनलों एवं विभिन्न समाचार माध्यमों के द्वारा विश्व को एक बाजार मानते हुए महिलाओं को भोग की वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। कम्प्यूटर, इन्टरनेट में हर प्रकार की अश्लील सामग्री उपलब्ध है। इस प्रकार उपर्युक्त समस्या का दूसरा सबसे बड़ा कारण बाजारवाद है। इस परिस्थिति में बच्चों को अधिक संस्कारों एवं समझदारी की आवश्यकता है। इसका माध्यम है-माता पिता का बालकों के प्रति स्नेह, संवाद का व्यवहार। यदि इस दिशा में प्रयास किया जाये तो समस्या का समाधान सम्भव है। इस विषय में **सत्यार्थ प्रकाश** के द्वितीय समुल्लास में **स्वामी दयानन्द** लिखते हैं कि-***बालकों को माता सदा उत्तम शिक्षा करे, जिससे सन्तान सभ्य हों और किसी अंग से कुचेष्टा न करने पावें।***

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

....जैसे सन्तान जितेन्द्रिय, विद्याप्रिय और सत्संग में रुचि करें, वैसा प्रयत्न करते रहें। .....उपस्थेन्द्रिय के स्पर्श और मर्दन से क्षीणता, नपुंसकता होती है...इससे उसका स्पर्श न करें।....आदि गुणों की प्राप्ति जिस प्रकार हो, करावें।' माता-पिता के द्वारा बाल्यावस्था में ही *'वीर्य की रक्षा में आनन्द और नाश करने में दुःख प्राप्ति भी जना देनी चाहिये। जैसे देखो, जिसके शरीर में सुरक्षित वीर्य रहता है, तब उसको आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़के बहुत सुख की प्राप्ति होती है। इसके रक्षण में यह रीति है कि विषयों की कथा, विषयी लोगों का संग, विषयों का ध्यान, स्त्री का दर्शन, एकान्त सेवन, सम्भाषण और स्पर्श आदि कर्म से ब्रह्मचारी लोग पृथक् रहकर उत्तम शिक्षा और पूर्ण विद्या को प्राप्त होवें। जिसके शरीर में वीर्य नहीं होता वह नपुंसक, महाकुलक्षणी....दुर्बल, निस्तेज, निर्बुद्धि एवं उत्साह, साहस, धैर्य, बल, पराक्रम आदि गुणों से रहित होकर नष्ट होता है। ... जो तुम लोग....वीर्य की रक्षा करने में इस समय चूकोगे तो पुनः इस जन्म में तुमको यह अमूल्य समय प्राप्त नहीं हो सकेगा।'* इसी प्रसंग में मनुप्रोक्त निम्न बातों को भी माता-पिता बच्चों को बतायें-

'कि मनुष्य का यही मुख्य आचार है कि जो इन्द्रियाँ चित्त को हरण करने वाले विषयों में प्रवृत्त कराती हैं, उनको रोकने में प्रयत्न करें, जैसे घोड़े को सारथी रोककर मार्ग में चलाता है, इस प्रकार इनको अपने वश में करके अधर्म मार्ग से हटाके धर्म मार्ग में सदा चलाया करें। क्योंकि इन्द्रियों को विषयासक्ति और अधर्म में चलाने से मनुष्य निश्चित दोष को प्राप्त होता है और जब इनको जीत कर धर्म में चलाता है तभी अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त होता है। यह निश्चय है कि जैसे अग्नि में ईंधन और घी डालने से अग्नि बढ़ता जाता है, वैसे ही कामों, विषयवासनाओं के उपभोग से काम शान्त कभी नहीं होता किन्तु बढ़ता ही जाता है। इसलिये मनुष्य को विषयासक्त कभी नहीं होना चाहिये-

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम्॥

मनु० २.८८

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम्।
सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति॥

मनु० २.९३

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते॥

मनु० २.९४॥

इसी प्रकार और एक महत्त्वपूर्ण तथ्य पर हमारा ध्यान नहीं है, या उसकी चर्चा नहीं होती है। ३०-४० वर्ष पूर्व बच्चों की यौनसम्बन्धित समझदारी सोलह से अट्ठारह वर्ष के आस-पास आती थी। साधारणतः उसी उम्र में उसका विवाह भी हो जाता था। आज बच्चों की यौनसम्बन्धित समझदारी १०-१२ वर्ष की उम्र में आ जाती है और उनके विवाह की उम्र ३० वर्ष के आस-पास हो गयी है। इतने समय वे युवा संयम के साथ कैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बितायें। यह बड़ा प्रश्न है। संयमहीनता ही वह कमजोरी है जिसका बाजारवाद कामोत्तेजित वस्तुओं के विज्ञापनों के द्वारा फायदा उठाता है, चाहे आने वाली पीढ़ी बर्बाद हो जाये, इससे उसे कोई मतलब नहीं है। इसको स्पष्ट करते हुए प्रो० धर्मवीर जी ने परोपकारी, अप्रैल प्रथम २०१३ के सम्पादकीय में लिखा है- *'जो प्रमुख बात है वह है बाजार, हमारी सरकार के निर्णय समाज व्यक्ति देश के हानि-लाभ को देखकर नहीं होते। सरकार के निर्णय बाजार के हित-अहित की चिन्ता करते दिखायी देते हैं। आजकल सत्ता, सरकार में सामर्थ्य नहीं है। आज वास्तविक सत्ता बाजार में निहित है। बाजार की उपस्थिति इच्छाओं पर आधारित है। मनुष्य में इच्छा उत्पन्न होती है, उससे बाजार उत्पन्न होता है। स्वाभाविक प्रक्रिया तो इच्छा उत्पन्न होना और उसके लिये बाजार उत्पन्न होना है, परन्तु आज इसके विपरीत होता दिख रहा है। मनुष्य में बाजार इच्छाओं को उत्पन्न कर रहा है, उन्हें बढ़ा रहा है। बाजार के मालिक मनुष्यों की इच्छाओं को बढ़ाकर बाजार को सफल बना रहे हैं। आपको क्या खाना है, आपकी इच्छा, आपकी आवश्यकता से नहीं, बाजार के निर्देश से जुड़ी है। पिज्ञा खाना है, नूडल्स, मांस खाना है, चूजा खाना है या कुछ और यह बाजार बतलाता है। आपको कपड़ा कैसा, कौनसा पहनना है? इसका निर्णय बाजार करता है। क्या देखना अच्छा लगता है, बाजार बताता है। बाजार इच्छा को अच्छा लगने से जोड़ देता है, जैसे खाना, पीना, पहनना, देखना, सुनना, सूंघना-सब कुछ बाजार निर्धारित करता है। इनकी इच्छा बढ़ने से बाजार बढ़ता है, उसी प्रकार कामभावना का भी बड़ा बाजार है। भोजन के बाद यदि कोई सबसे बड़ा बाजार है तो वासना का बाजार है। वासना तो है, उसकी पूर्ति में सुख अनुभव भी होता है, तो अधिक सुख के लिये अधिक इच्छा और अधिक साधन यह बाजार का खेल है। इसमें वासना की भूख बढ़ती है, तो इसमें और जो शरीर की आवश्यकता है, काम की भावनाओं से अन्य इच्छाओं में अन्तर है। और अन्य इच्छा में इच्छापूर्ति का साधन जड़ है। हम उसे कैसे भी प्रयोग कर सकते हैं। हम क्या देखें, कुछ भी देखें, कुछ भी सुनें, कुछ भी खायें, कुछ भी सूंघें, इससे जिसका उपयोग किया जा रहा है, उसको कोई हानि-लाभ नहीं हो रहा है, परन्तु स्पर्श सुख में ऐसा नहीं है, उस इच्छा की पूर्ति का सम्बन्ध चेतन से है। अतः इसका हानि व लाभ दोनों पर होता है। अतः विवाह सम्बन्ध की कल्पना की गयी है। जड़ वस्तुओं से विवाह नहीं किया जाता, उनसे सहमति नहीं ली जाती, क्योंकि उन वस्तुओं को आपके साथ आने न आने की कोई इच्छा नहीं, आपका उन पर अधिकार होता है। आप उनका कैसे भी प्रयोग कर सकते हैं। वे सर्वथा आपके आधीन हैं। परन्तु वासना की तृप्ति का सम्बन्ध चेतन से है, समाज से है। अतः सहमति की आवश्यकता है।*

कामभावना अन्य भावनाओं के साथ तृप्ति के साथ वहीं समाप्त नहीं हो जाती, अपितु उसका परिणाम सन्तान होता है। बाजार भावना को बढ़ाना चाहता है। आने वाली सन्तान बाजार में बाधक बनती है। यदि काम का भाव केवल सन्तान हो तो बाजार की आवश्यकता समाप्त हो जाती है। अतः बाजार ने इसमें अपना स्थान बनाया है। कामभाव बढ़ाने वाली औषधियों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाजार में भरमार है। इसके साथ इस इच्छापूर्ति में बाधक कारणों को भी दूर करना होगा। इन कामसम्बन्धों में सबसे बड़ी बाधा रोग है, उसके लिये एन्टीबॉयोटिक्स का आविष्कार हुआ। आज उसके भी असफल होने पर अन्य उपाय खोजे जा रहे हैं। दूसरी और सन्तान की बाधा दूर करने के उपायों की एक बहुत बड़ी शृंखला बाजार में है, उनका उपयोग कर लोग अपने को सन्तान के उत्तरदायित्व से मुक्त रख सकते हैं। आज मुख्य रूप से यह बाजार सरकार पर हावी है। यह बाजार भारत में उत्पन्न होने वाले हर बच्चे को अपना ग्राहक समझता है, वह इसको अपने बाजार के लिये उपयोगी मानता है, उसका पूरा उपयोग करना चाहता है। अच्छा विज्ञापन देकर खाने के लिये प्रेरित किया जा सकता है, उसी प्रकार काम व्यापार के लिये व्यक्ति को उत्तेजित किया जा सकता है।' प्रो० धर्मवीर के उपर्युक्त वक्तव्य के आधार पर हम कह सकते हैं कि उत्तेजित व्यक्ति शराब आदि का सेवन करके असंयमी हो जाता है, जिसको उचित-अनुचित का कुछ भी ध्यान नहीं रहता और वह उन सब अमानुषिक एवं पाश्विक कृत्यों को कर बैठता है, जिसकी ध्वनि दिसम्बर २०१२ में दिल्ली में सुनायी दी। वेद कहता है कि संयम की साधना आंख और कान से होती है। कानों द्वारा भद्र वचनों को सुनें और आंखों के द्वारा हम भद्र दृश्यों को देखें-**भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिः**-ऋग्०१.८९.८। आज बाजारवाद ने संयम की साधना के दोनों सोपानों को ही भयंकर रूप से प्रदूषित कर रखा है। सर्वत्र वातावरण चाहे रूप विषय का हो या श्रवणेन्द्रिय से कर्णगोचरी होने वाले विषय का उत्तेजित और जीवन को वैचारिक रूप से गन्दा करने वाला है। समाज को **कोकयातु** और **शिश्नदेव** बनानेवाला है। इस हेतु आज बच्चों में संस्कार एवं समझदारी लाने के लिये अधिक मात्रा में प्रयास और संवाद की आवश्यकता है।

जिस देश की शिक्षा में मूल्यों, नैतिकता, आध्यात्मिकता का निरन्तर अभाव होगा, वहाँ युवाओं में अनैतिकता पनपने की पूरी सम्भावनाएं होती हैं। शिक्षा से तीन बातें फलित होनी चाहियें

१. व्यक्तित्व का समग्र विकास एवं चरित्र निर्माण,
२. देश व समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति और
३. राष्ट्रिय और अन्ताराष्ट्रिय चुनौतियों का समाधान।

देश की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था से एक भी बात सिद्ध नहीं हो पा रही है। इस हेतु स्वतन्त्र भारत में केन्द्र सरकार द्वारा गठित आयोगों ने मूल्यपरक शिक्षा हेतु अनुशंसाएं दी, परन्तु देश की शिक्षा में आज तक उन मूल्यों का समावेश नहीं किया गया। सामाजिक स्तर पर जहाँ-जहाँ वर्तमान शिक्षा के साथ अतिरिक्त प्रयास के द्वारा मूल्यों या नैतिक शिक्षा देने का प्रयास हुआ, वहां-वहां उनके अच्छे परिणाम देखने को मिलते हैं। यदि सरकारों ने संकल्प लिया कि वे मूल्यपरक शिक्षा देंगे, परिवार ने संकल्प लिया कि वे अपने बच्चों को संस्कारक्षम वातावरण देंगे और समाज ने संकल्प लिया कि उच्छृंखल खुलापन और महिलाओं को सिर्फ उपभोग की वस्तु बताने वाले विज्ञापनों, कार्यक्रमों, मादक पदार्थों एवं भोगेच्छावर्धक सामग्री व दृश्यों का बहिष्कार करेंगे तथा विश्व को बाजार न मानते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए कुटुम्ब के रूप में (वसुधैव कुटुम्बकम्) स्वीकार करेंगे तो निश्चित रूप से मातृशक्ति के प्रति बढ़ते **कोकयातु** और **शिश्नदेवों** के अपराधों में कमी आएगी और माताएं, बहनें एवं बेटियाँ अधिक सुरक्षित होंगी।

(ii) A Report on Prof. Bajaj & Prof. Shastri's Lectures

Prof. Madan Mohan Bajaj, Former Professor of Physics, University of Delhi & Chancellor International Kāmadhenu Ahimsa University, a role model himself & one man army, delivered a special lecture on पशुवध एवं प्राकृतिक आपदाएं : एक वैदिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Terrestrial Problems, Bio-Medical Consequences, Cosmic Catastrophies : Latest results on BIS processes-with special reference to vedas) at Department of Vedic Studies, Gurukul Kangri Vishwavidyalaya, Haridwar on 30.03.2013.

In his lecture he echoed the always present Vedic Literature when he quoted the references from Atharvaveda :

माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः (१२.१.१२)

सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन विराधिषि (१.१.४)

Further, he warned the nations by reminding us Maxmuller that the nation, that spoils the pride of its past also spoils, its foundation. He explained Dresden 2008 resolution. While detailing it Prof. Bajaj made every listener spell bound when he talked about a new subject of Human Science with the title of BISOLOGY which is actually already present in Vedas and defined it as the Science which divides our 1/1 wc = Z BIS and elaborated BIS as breakdown of Integrated System and introduces four dimensional word XYZT. He further emphasized that today they are hopeful for the ten dimensional thought of \ Vedas. Here he brought some novel and alarming issues before us that no country of the world at any time & situation should slaughter its living creatures. This universe is threatened by-chaos which has been called Karma Phala in Vedas whenever Anachar which can be in form of animal killing. That, when the animals are killed in the butcher houses there emerges Hill Boso Particle or electromagnetic current which varies animal to animal. These activities result into natural disasters like volcanoes, cyclones and earthquakes etc.

So, this is the high time when we all should try to overcome these violences. These maltreatments increase the BIS effect upon the person concerned. As far as this BIS effect will be increased aggressive it will be increased and the chances of casualty are much more than the person who is much

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

more *Satvik.* Thus the BIS Effect will be decreased and all catastrophes can be checked by controlling this effect through behavioural science. He also cited the examples to prove the probability of death or disaster due to BIS Effect upon the concerned fellow. He gave the example Princess Dianna. wife of Prince Charles, England. The Princess died on the spot in an accident, as the BIS Effect upon the casualties was much more than the persons alive, on the other hand, the driver was safely alive.

Secondly, he said that the IInd World War millions of people died but after the war was over, due to the non veg. people, 30 million died there as the epidemic was the post-effect.

He also talked about the promising hand of BISOLOGY mentioning that 300 diseases can be cured by being purely vegetarian and this is how world's 70% health Budget can be economized. This science can also control the formation of Black holes, & three diseases like cancer, Elzgibities (Memory lapse) and heart disease.

Dr. Bajaj also said that their team is working on the, task of bringing **kāmadhenu/cow** on the moon. Prof. Bajaj said that 5000 yrs back Pythagoras mentioned that even lion, mosquito etc. non vegetarian animals can be vegetarian if they are trained. He also informed about the efforts made by countries like Germany that celebrated the completion of 100 years of Plant Based Diet.

Drinking alkohal, meat eating raping anger etc. Then sir Bajaj drew the attention of the world to the issue of the animal killing.

Our holy scriptures also have the massages of non-violence. For example 10th Chapter of **Satyarth Prakash** by Swami Dayananda Saraswati. Over Vedic Scriptures also prohibits 500 to 700 places meat eating or eatables or non-eatables.

Thus both the BISOLOGY & Holy Scriptures give a call back to ओं विश्वानि देव (यजु०३०.३) .....and the immediate denial of Hinsa, Anachar and Kumati Only then the forth coming ages will be able to have the vision of Ramneeya Phala. We can summrize to Prof. Bajaj's Lecture in Hindi poetry as following written by Dr. Bharti Sharma :

जिस जगह कत्ल किये जाते हैं,

उस जगह बहुत से घातक

परिणाम रह जाते हैं,

वहां जाकर सहृदय आत्मसात् हो जाते हैं

अनगिनत वर्षों के अन्तरालों के पश्चात्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुण्डों की माला के दर्शन के साथ
स्मरण हो आया मेरे संवैधानिक पूर्वजों
के आहवान पर
आहवान है चांद पर गाय माता
कामधेनु को उतार लाने का
वेदों ने गो-वध को जघन्य दर्शाया है
नौजवान युवकों व बहनों की शहादत और
आचार व्यवहार के बावजूद भी
आ जाते हैं जलजले
आज दृढ़ संकल्प है अहिंसा की बात
को जमीं पर उतारने का
ओ३म् विश्वानि देव को सदा
आचार में विहारने का
आओ हम सब संकल्प लें
तत्काल ही हिंसा अनाचार व कुमति
को नकारने का
अपने ही अपूर्व साक्ष्यों वेद पुराण व इतिहास
के रमणीय फल को निहारने का।

As panel speaker Prof. Dinesh Chandra Shastri, Head of the Department of Vedic Studies & Chief Editor of ***Vaidika Vāg Jyotiḥ***, an International half yearly refereed research journal of Gurukula Kangri Vishwavidyalaya, Haridwar deleverd a concerned lecture on Eatables or Non Eatables according to Vedas {Meat (Beaf) Eating, Drinking And Vedas} as following :

This is an erroneous notion as in all the four Vedas and ancient sankrit literature the world अघ्न्या (Aghny*ā*) has been used for the cow which means, never to be slaughtered under any circumstances, In the Vedic Lexicon-*Nighantu* we find three words for cows denoting that they should never be killed, अघ्न्या, अही, अदिति. All these words which occur in the Vedas again and again prove that accoding to them cow should never be slaughtered. To kill a cow is such a heinous crime that capital punishment is percribed for a person committing that sin in the Vedas, अन्तकाय गोघातम् the Śuklayajurveda (Chap.30.18) which means that a man who kills a cow may be killed according to the law. In the Rigveda & Atharvaveda also we come across similar in injuctions in the mantras like :

यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां
शीर्षाणि हरसापि वृश्च॥ Rig १०.८७.१६

and

यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽ सो
अवीरहा॥ अथर्व० १.१६.४॥

i.e who ever kills a cow-That should never be killed, should be beheaded if he does not desist from this sinful act when convincingly told to do so by the wise preceptors. O sinner, if thou killest our cow or a horse, we shall kill the with the bullet made of lead. On the basis of such mantras which abound in the Vedas, it is rightly stated in the *Mahābhārata Śanti Parva* :

अघ्न्या इति गवां नाम एताभिः हन्तुमर्हति।
महच्चकाराकुशलं, वृषं गामालभेत् तु यः॥
२६२.४७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

meaning that in the Vedas. the cow referred to as अघ्न्या i.e. never to be killed. as such who can even think of killing a cow? He who kills a cow or a bull commits a great sin.

It is noteworthy that for the bull also the world अघ्न्य (Aghnya) has been used in the mantras like :

विमुच्यध्वमघ्न्या देवयाना अगन्म तमसस्पारमस्य

(YV. 12.73)

Here all commentators have interpreted Aghnyah as

अहन्तव्याः गावो बलीवर्दाः (गौ as plural)

गवां यः पतिरघ्न्यः (Ath. V. 9.4.17)

i.e. the bull that is never to be slain. In this connection, it is remarkable that even macdonnel in his –"Vedic Reader for Students" Vocabulary explains-अघ्न्या (*Aghnyā* as cow Ṛg V.83.8 not to be slain from han slay p.222)

As a matter of fact, the Vedas probhit the flesh not only of the cow and the bull but all the animal saying :

यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः। यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च॥ Ṛg. 10.87.16

which means - one who partakes of human flesh, the flesh of a horse or of another animal and deprives others of the milk slaughtering cows. O king if such a find does not desist by other means, then even cut off his head by your power. This is the ultimate punishment which can be inflicted upon him.

Even taking eggs is forbidden :

य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च ये क्रविः।
गर्भान् खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि॥

Ath.V.8.6.23

It means that these who eat uncooked flesh, who eat meat cooked by men, who eat eggs that are embryos, do away with this evil addiction of theirs.

Sometimes it is said that the ancient Āryans used to kill cows and other animals in the Yajñas (Sacrifices) to please the Gods. But this is a very wrong conception of the Vedic Yajñas. the synonymous term for the Yajñas in the Vedic Lexicon called *Nighantu* is अध्वर (Adhvara) which has been explained by Maharshi Yāskāchārya-an ancient Vedic etymologist as :

अध्वर इति यज्ञनाम ध्वरति,

हिंसाकर्म तत्प्रतिषेधः (Nirkuta 1.7)

अध्वर means where there is no violence of any king or perfectly non violent. This word अध्वर has been used in all the four Vedas hundreds of times clearly proving that the Vedas do not sanction animal sacrifices. But they tell us quite un-ambiguously :

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि।
स इद् देवेषु गच्छति॥ Ṛg V.1.1.42

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

That only non-violent noble sacrifices are acceptable to God and his devotees.

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्०

Ṛg V.1.1.8

Meaning that it is only in the non-violent sacrifices that God shines.

In the Yajurveda which mainly deals with the Yajñas, we are asked to look upon all being on earth as our friends-

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥ Y.V.36.18

द्विपादव चतुष्पात् पाहि Y.V.14.8

i.e. protect all bipeds and quadrapeds. Never kill a cow but treat her as mother-गां मा हिंसीरदिति विराजम (११)

In the Samveda it is clearly stated :

न कि देवा इनीमसि न क्या योपयामसि।
मन्त्रश्रुत्यं चरामसि॥ १७६

i.e. we act according to the injection, contained in the Vedic hymns. We, therefore, never resort to the slaughter of human or other beings and we never tempt anyone to go against his duties.

Such being the case, it is clear that animals sacrifices are not sanctioned by the Vedas and they are opposed to their very spirit. Who then introduced them? Let us listen to the answer given in the Mahābhārata by such renowned scholar as *Bhiṣma Pitāmaha* in reply to *Yudhiṣthira's* question on the subject. There we are expressly told :

सुरा मत्स्याः पशोर्मांसम् आसवं कृशरौदनम्।
धूर्तैर्प्रवर्तितं यज्ञे, नैतद् वेदेषु विद्यते॥

M.B.Śā.Par.261.9

i.e taking wine, fish and flesh of animals, intoxicant drinks of various kinds etc. is not sanctioned by the Vedas at all. It is wicked people that have introduced such ignoble practices.

It is further stated :

लुब्धैर्वित्तपरैब्रह्मन्, नास्तिकैः संप्रवर्तितम्।
वेदवादानविज्ञाय, सत्याभासानिवानृतम्।
सतां वर्त्मानुवर्तन्ते, यजन्तेत्वविहिंसया॥

M.B.Śā.Par. Ch. 363/6-7

i.e. It is greedy atheistic people hankering after wealth that have introduced the slaughter of animals in the Yajñas which sometimes looks apparently sanctioned by the Vedas but which really speaking is intiely false. They have done so being ignorant of the real meaning of the mantras. Righteous people perform Yajñas non-violently, following into the footsteps of the noble persons.

The real nature of such wicked persons who introduced diabolical practice of animal sacrifices is stated further as :

अव्यवस्थितमर्यादैर्विमूढैर्नास्तिकैर्नरैः।
संशयात्मभिरव्यक्तैर्हिंसा समनुवर्णिता॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

i.e. only such absolutely foolish people (विमूढैः) who do not know the real import and tradition of the ancient dharma who are atheists (नास्तिकैः) and who are sceptics (संशयात्मभिः) that have mentioned slaugher of animals.

It is thus clear that the Vedas do not at all sanction the slaughter of the cows other animals either for Yajñas or for the purpose of eating.

Regarding drinking wine, it should be borne in mind that in the Vedas and other ancient literature drinking is considered to be a great sin as it leads to many evils.

In the well-known Mantra :

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदुभ्यंहुरो गात । आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीळे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ॥ **Ṛg.10.5.6**

where seven great sins have been referred to सुरापानम् or drinking wine is one of the along with theft, adultery and falsehood etc.

In another mantra of the Rigveda, enumeratin seven causes leading to sins, सुरा or drinking wine has been mentioned as the second following anger, gambling and ignorance etc:

न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः। Ṛg 7.86.6

Sh. Madan Mohan Seth. M.A., L.L.B. Retired Session Judge has rightly remarked while quoting this that drinking is condemned as leading to quarrels and as seducing men from the path dicing and meat eating.

Pointing out of the pernicious effect of drinking wing the Ṛgveda says:

हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम्।
ऊधर्न नग्ना जरन्ते॥ Ṛg 8.2.12

i.e. After drinking wine drunkards fight among themselves. As their physical strength weakned on account of drinking, they soon become prematurely old. They lie naked on the roads at night.

In the Atharvaveda it is stated that :

यथा मांसं यथा सुरा यथाक्षा अधिदेवने। यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः। ६.७०.१

i.e. here it is said flesh eating, drinking, gambling and dultery, all destroy and mar the mental faculties of a man.

It should be remembered that there is world of difference between सोम (Soma) and Wine, as Soma is promoter of the divine virtues, and destroyer of sins.

देवावीरघशंसहा। Ṛg 9.24.7

सुरा (wine) is promoter of sin.

सुरा अनृतस्य प्रयोता Ṛg 7.80.6

In the Brahmanas-expositions of the Vedas it is clearly stated about सुरा (wine)

CC-0. In Public Domain.,Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनृतं पाप्मा तमः सुरा। Śat.5.1.2.10

i.e. wine is a great sin, leading to falsehood and drankness of ignorance.

अभिमाद्यन्निव हि सुरां पीत्वा भवति।

Śat.1.6.34/5.5.45

A man becomes mad or behaves madly after drinking wine.

तस्मात् सुरां पीत्वा रौद्रमनाः।

Śat.12.7.3.20

A man becomes cruel hearted after drinking wine.

In the Smritis or Dharma Śastras, Upaniṣads and Mahābhārata etc. also drinking wine has been strongly condemned and enumerated among the great sins.

So, Dr. Shastri strongly said that it is wrong to say that meat eating and drinking are in any way sanctioned by the Vedas and other ancient books. Both are very strongly condemned and are absolutely against the Indian culture.

-प्रो० दिनेशचन्द्र शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotiḥ
ISSN 2277-4351

Vol.1, No.2 (1-8) Jan-jun 2013

वैदिक याग, पशुहिंसा और दयानन्ददृष्टि

वीरन्द्र कुमार अलंकार

प्रोफेसर, संस्कृतविभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ (पंजाब)

महाभारत के पश्चात् वेदाध्ययन की परम्परा घटती चली गयी। वेदार्थ का तात्पर्य कर्मकाण्ड तक सीमित हो गया। तात्पर्यार्थ की अपेक्षा शब्दार्थ प्रधान हो गया। जिससे वेदार्थ का मूलतत्त्व प्रायः लुप्त हो गया। यह सच है कि आज भी वेद का अर्थवाद तो बहुत है, किन्तु अध्ययन-अध्यापन की परम्परा अत्यन्त क्षीण है। आज चार वेदों के किसी एक अध्येता को ढूंढ़ना भी बड़ा श्रमसाध्य कार्य है, जिसके पास आर्षदृष्टि हो, ब्राह्मणों और गृह्यसूत्रों के अध्येता का तो कहना ही क्या? किन्तु यह भी सच है कि यह वैदिक अर्थवाद महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा उत्पन्न हुआ है। उनके प्रयास का ही फल है कि आज चारों वेदों के भाष्य हिन्दीं में उपलब्ध हैं तथा वेदाध्ययन कर्मकाण्ड की संकीर्ण मानसिकता से बाहर आ गया है। दयानन्ददृष्टि के खण्डनकर्त्ता भी आज विज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र, गणित आदि विषयों को वेदों में खोज रहे हैं। दयानन्द सरस्वती ने वेदार्थ को जो नया रूप दिया, वह यास्कादि प्राचीन आचार्यों, ब्राह्मणग्रन्थों व गृह्यसूत्रों, श्रौतसूत्रों से पूरी तरह समर्थित है। ब्राह्मणों और गृह्यसूत्रों की आख्यान-शैली को मानवीय इतिहास मानने से वेदार्थ प्रायः अनुपयोगी हो गया था। इसी के आधार पर जो भाष्य लिखे गये, वे अनेक स्थानों पर अत्यधिक अश्लील हो गये और अनेक स्थलों पर हिंसात्मक भी दिखायी देते हैं। वेद अपनी सार्वभौमिकता खोकर दैशिक, कालिक और वर्गीय सीमाओं में बन्ध गये। यह परम्परा पश्चाद्वर्ती साहित्य में दिनों दिन बढ़ती दिखायी देती है। वेदार्थ को इन सीमाओं से बाहर निकालने के लिये महर्षि दयानन्द ने जिस पद्धति को अपनाया, उसका नाम है-आर्षपद्धति।

आर्षदृष्टि में परमाप्त हैं-वेद अर्थात् मन्त्रभाग का स्वतःप्रामाण्य। वेदप्रतिकूल किसी भी ग्रन्थ का कथन अमान्य माना जाये। कोई भी कथन वा सिद्धान्त चाहे वह स्मृति, ब्राह्मण, श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, दर्शन या पुराण में ही वर्णित हो, यदि उसकी वेदानुकूलता है, तो मान्य हो, प्रतिकूलता हो, तो अमान्य है। इस दृष्टि से अनेक दार्शनिक, सामाजिक और धार्मिक समस्याओं का समाधान कर दिया है। भारतीय शास्त्रों का तत्त्वार्थ आर्षदृष्टि के बिना नहीं समझा जा सकता-यह स्वामी जी की दृढ़ मान्यता थी। मांसभक्षण या जीवहिंसा से पाप होता है तो अन्न या वनस्पतियों के सेवन से पाप क्यों नहीं? इसका समाधान यह वेदमन्त्रांश है- **पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात्**[1] इससे यह अर्थापत्ति होती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मांस मनुष्य का आहार नहीं है। पशुहिंसा कथमपि धर्म का अंश नहीं है। इस दृष्टि को केन्द्र में रखकर ब्राह्मणों और गृह्यसूत्रों का अर्थविश्लेषण किया जायेगा, तो वेदार्थ की संगति लगेगी, नहीं तो वेदार्थ का कोई महत्त्व नहीं है।

कुछ व्याख्याताओं ने तो वेद में नरमेध तक की स्थापना कर दी है। शुनःशेप की कथा इसका एक प्रमाण है, किन्तु महर्षि दयानन्द की दृष्टि से अध्ययन करने वाले विद्वान् मानते हैं कि शुनःशेप, वशिष्ठ, भारद्वाज, अङ्गिरस् आदि व्यक्तिविशेष के नाम न होकर प्राणों के वाचक हैं।[२] च्यवन किसी व्यक्ति का नाम न होकर पतितावस्था से उभरने का नाम है। यही है च्यवन की युवावस्था एवं सम्पत्ति, विद्याप्राप्ति, यशप्राप्ति आदि ही च्यवन का कन्याओं से विवाह है। अन्यथा अश्विदेवों के निर्देश पर च्यवन का सरोवर में डुबकी लगाने से युवा हो जाना और फिर विवाह कर लेना आदि बेसिर पैर की कल्पनाएं हास्यास्पद ही प्रतीत होंगी। ऐसा वेदभाष्य किस काम का? इसलिये वेदार्थ की कुंजी दयानन्द सरस्वती के पास है, उसी से यह ताला खोला जा सकता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती वेदार्थ में यौगिकार्थ और निरुक्ति को बहुत महत्त्व देते हैं। यज्ञ के पर्यायों में 'अध्वर' शब्द भी पठित है। इसका निरुक्त्यर्थ है-**ध्वरति हिंसाकर्मा, तत्प्रतिषेधः।**[३] इसलिये यज्ञ और हिंसा की समन्विति नहीं बैठ सकती। श्री राजेन्द्र लाल मिश्र[४] ने यह स्थापित किया है कि वैदिककाल में गोमांस का प्रचलन था। भूमानन्द[५] भी इसी का समर्थन करते हैं। मैक्डॉनल, कीथ आदि भी पशुवधविधान को वैदिक मानते हैं। ऋग्वेद के **साध्वर्या अतिथिनीरिषिराः स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः। बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः**[६] शब्दों को देखकर विनायक महादेव ने भी पशुबलि को वेदसमर्थित माना है।[७] जबकि सायण ने इसका अर्थ हिंसापरक नहीं किया है, किन्तु एक अन्य मन्त्र (ऋग्०२.७.५) में स्वयं सायण ने भी *वशाभिः...अष्टा* पदीभिराहुतः का अर्थ किया है- *वन्ध्याभिः गोभिः....अष्टपदीभिः गर्भिणीभिः आहुतः आराधितः* कहकर पशु हिंसा की बात कही है। स्मरणीय यह है कि इससे पूर्वमन्त्र में हिंसा जैसा कोई प्रसंग ही नहीं है। दयानन्द इसी का यह योगार्थ प्रधान अर्थ करते हैं कि- *वशाभिः कमनीयाभिः ....अष्टापदीभिः अष्टौ पदानि यासां ताभिर्वाग्भिः।* अर्थात् कमनीय आठपदों वाली वाणी से आराधित। सायणभाष्य में यह भ्रान्ति अनेक स्थानों पर दिखायी देती है।[८] सी०कुन्हन् राजा ने भी वैदिक यज्ञों में पशुबलि का उल्लेख किया है। ऋग्वेद ६.१.३ में वपावन्तम् का अर्थ मांसयुक्त (आहुति) किया है।[९] जबकि सायण ने यहाँ मांस अर्थ नहीं माना है। यहाँ 'वपा' शब्द आर्द्रात्मक है। इसलिये घृत वा तक्रादि अर्थ यहां अभिप्रेत है। किन्तु फिर भी एक अन्य मन्त्र में *पीवानं मेषमपचन्त वीराः* (ऋग्०१०.२७.१७) में सायण ने अर्थ कर दिया कि *प्रजापतेः पुत्रा अङ्गिरसाः स्थूल मेदोमांसादियुक्तमित्यर्थो मेषम् अजम् अपचन्त।* जबकि महाभारत के अनुसार अज. नामक बीजों से यजन का निर्देश है-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजैर्यज्ञेषु यष्टव्यमिति वै वैदिकी श्रुतिः। अजसंज्ञानि बीजानि छागान्नो हन्तुमर्हथा॥ [१०]

सायण का अनुसरण कुन्हन् राजा ने भी किया और बल दिया कि The heros cooked a fat goat.[११] इसलिये जहां-जहां वेद में किसी पशु का नाम आया, वहाँ अनुसन्धाता सामान्यार्थ गृहीत करेगा, तो वह वेद बहुत उपयोगी नहीं है। उसे यह याद रखना चाहिये कि-**पशवो वै पुरोडाशः** (तैत्ति०ब्राह्मण १.८.३.३), **राष्ट्रं वा अश्वमेधः** (शत०ब्रा०१.८.३.३), **उषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरः, साश्चिक्षुर्वातः प्राणः** (बृहदारण्यकोपनिषद् १.१.१) आदि। पं० युधिष्ठिर मीमांसक का यह वचन सदा स्मरणीय है कि सब वैदिक यज्ञ सृष्टियज्ञ हैं और पशुयज्ञ आसुर यज्ञ।[१२] वेदार्थ तात्पर्य को आर्षीदृष्टि से ही समझा जा सकता है, यह स्वामी दयानन्द सरस्वती का मन्तव्य है। आर्षी दृष्टि से ही सन्दिग्ध स्थलों से परत उठेगी। यहाँ गृह्यसूत्रोक्त केवल तीन यज्ञों पर ही विचार किया जा रहा है।

(क) पशु याग-मैत्रायणी संहिता, मानव श्रौतसूत्र, मानव गृह्यसूत्र में पशुयाग का उल्लेख हुआ है। **अपनी कामना की पूर्ति के लिये जिस देवता के निमित्त अज आदि पशुओं से यज्ञ किया जाता है, उसे पशुयाग कहा गया है।** पशुयाग की इस व्याख्या ने भारतवर्ष में घिनौनी और क्रूर भूमिका निभायी है। यही व्यथा महात्मा बुद्ध की थी। निरीह प्राणियों को कर्मकाण्ड के नाम पर कई शताब्दियों तक मारा गया। अध्वर की व्याख्या इन पापाचार्यों को दिखाई नहीं दी। यदि पशुयाग का अर्थ पशुओं की हिंसा है, तो अतिथियाग और पितृयाग का अर्थ अतिथि और माता-पिता की बलि चढ़ाना अर्थ करेंगे। देवयाग और ब्रह्मयज्ञ की व्याख्या कैसे हो पायेगी। यह आश्चर्य ही तो है कि पशुयाग का अर्थ पशुओं की बलि और पितृयाग का अर्थ माता-पिता की पूजा किया जा रहा है।

पशुयाग में पशु-आलभन किया जाता है। कदाचित् यहीं से समस्या आरम्भ हुई है। आलभन का अर्थ-पशु को बांधना कैसे हुआ, यह समझ से बाहर है। वस्तुतः आलभन का अर्थ पशु का स्पर्श है। लभ धातु प्राप्त्यर्थक है-डुलभष् प्राप्तौ (भ्वादि-९७५)। अतः आलभन का अर्थ है-स्पर्शपूर्वक प्राप्ति। सायण ने **'अक्षान् यद् बभ्रूनालभे** (अथर्व०७.११४.७) का भाष्य करते हुए कहा है कि ***बभ्रूवर्णान्...अक्षान् देवनं साधनभूतान् आलभे देवितुं स्पृशामीति।*** महर्षि दयानन्द भी यही अर्थ कर रहे हैं-***आलभते समन्तात् प्राप्नोति*** (यजुर्भाष्य ३०.२२)। विवाहसंस्कार में भी 'हृदयमालभे' का अर्थ हृदय का र्स्पश है। यही अर्थ पशु-आलभन में पशु को बाँधना या मारना कैसा हो गया। वस्तुतः वैदिक साहित्य में आ √लभ् स्पर्शार्थक और आ √लम्भ मारणार्थक प्रसिद्ध है। इनसे क्रमशः आलभन और आलम्भन शब्द व्युत्पन्न होते हैं। यह ध्यातव्य है कि पशुयाग में आलभन कहा गया है, आलम्भन नहीं। चरकसंहिता (चिकित्सास्थान १९.४) का वक्तव्य देखिये-

आदिकाले खलु यज्ञेषु पशवः समालभनीयाः बभूवुः, नालम्भाय प्रक्रियन्ते स्म। अर्थात् प्राचीनकाल में यज्ञों में पशुओं का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलभन (स्पर्श/उपस्थापन) किया जाता था, आलम्भ (मारण) नहीं। मानवगृह्यसूत्र में उल्लेख है कि पशु को स्नान कराकर, पानी पिलाकर यज्ञ के निमित्त उसका संज्ञपन किया जाता है। फिर यज्ञीय द्रव्य को पकाकर **'जातवेदो वपयागच्छ देवांस्तव हि होता प्रथमो बभूव। घृतस्याग्ने तन्वासम्भव सत्या: सन्तु यजमानस्य कामा:'** मन्त्र से होम किया जाता है। यज्ञीय द्रव्य से पहले 'स्वाहा देवेभ्य:' मन्त्र से और बाद में 'विश्वेभ्यो देवेभ्य: स्वाहा' मन्त्र द्वारा घी से हवन किया जाता है।[१३]

ऐसा प्रतीत होता है कि 'आलभन' की तरह 'संज्ञपन' शब्द ने भी भ्रमित किया है। अत: 'संज्ञपन' शब्द का अर्थ यहाँ विचारणीय है। पाणिनीय धातुपाठ में 'ज्ञा' धातु तीन बार पठित है-१. ज्ञा मारणतोषणनिशमनेषु (भ्वादि०८११), २. ज्ञा अवबोधने (क्र्यादि-१५०५) तथा ३. ज्ञा नियोगे (चुरादि०१७३३)। चुरादिगण की ज्ञप ज्ञाने ज्ञापने च (१६२५) धातु से भी संज्ञपन शब्द व्युत्पन्न हो सकता है। यहाँ भी हिंसा सिद्ध करने के लिये अनुसन्धाताओं को केवल मारण अर्थ ही दिखाई दिया; तोषण, निशामन (चाक्षुष ज्ञान या ज्ञापन या तीक्ष्ण), अवबोधन, नियोजन या ज्ञान अर्थ नहीं। इसका एक कारण कदाचित् बालमनोरमाकार का यह वाक्यांश है कि- **अक्षतस्य मारणे संपूर्वकस्यैव ज्ञाधातो: प्रयोग:।**[१४] यद्यपि बालमनोरमाकार से तो सहस्रों वर्ष पूर्व पशुहिंसा का प्रचलन हो चुका था। सायण ने संज्ञपन का अर्थ **'सम्यक् ज्ञानजननं येन कर्मणा भवति तत्कर्म'**[१५] किया है। सायण का यदि यह अर्थ ले लिया जाए, तो पशु के महत्त्व को समझना ही उसका संज्ञपन हुआ, वध नहीं। यही अभिप्राय दयानन्दभाष्य में स्थाने-स्थाने दिखायी देता है कि गोमेध का अर्थ गोपूजा, अश्वमेध का अर्थ अश्व की पूजा अजमेध का अर्थ अज की पूजा लिया जाना चाहिये।

मानवगृह्यसूत्र में पशुयाग का एक अर्थ यह भी निर्दिष्ट हुआ है कि जिस पशु को उपलक्षित कर यजन किया जाता है, वही पशु दान में दिया जाता है, इसलिये इसे पशुयाग कहते हैं-**पशो: पशुरेव दक्षिणा अथवा पूर्णपात्रं दक्षिणा।**[१६]

ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे घर में जो सबसे उपयोगी पशु है, उसका दान करना भी पशुयाग है और पशुरक्षा का संकल्पात्मक व्रत भी पशुयज्ञ है। किन्तु गृह्यसूत्रों के व्याख्याकार इस प्रकार के प्रसंगों में स्पष्ट नहीं हैं, उन्होंने शब्दार्थमात्र दिये हैं, जिससे समस्या और उलझ गयी है।

(ख) शूलगव-

गृह्यसूत्र में 'शूलगव' नामक याग का भी उल्लेख है। मानवगृह्यसूत्र के व्याख्याकार कहते हैं कि शूल से गाय का वध करना, उसे अग्नि में पकाना 'शूलगव' है। सूत्रकार की भाषा भी इसी ओर संकेत दे रही है। किन्तु दयानन्द दर्शन का अध्येता होने के कारण यह बात मन-मस्तिष्क को स्वीकार्य नहीं हो सकती। ऐसे प्रसंग या तो त्याज्य हैं या अनुसन्धेय। यदि गाय के अवयवों को लौहशलाका पर पकाना ही शूलगव है, तो फिर वह 'अध्वर' कैसा हुआ। यूं भी भारतीय समाज में 'गौ' को उत्कृष्ट व पूजित पशु माना गया है तो क्या गृह्यसूत्रों में ये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसंग अनर्थकारी हैं। बहुत विचार करने के पश्चात् यह समझ में आया कि यहाँ 'गौ' का अर्थ गाय पशु नहीं होना चाहिये। वैदिक शब्दकोश में 'गौ' का अर्थ पृथिवी भी है। अत: कृषिकर्म ही यहाँ शूलगव है। शूल अर्थात् हल आदि से गौ (पृथिवी) को चीरना, खनन करना ही शूलगव याग है। यह प्राय: शरद काल में किया जाता है। लगता है राष्ट्र के निमित्त गेहूं के लिये पृथिवी को जोतना, अन्न पैदा करना ही शूलगव है। तभी तो कहा गया है कि-रौद्र: शरदि शूलगव:।[१७] यदि 'गौ' का अर्थ 'गाय' करके उसके अवयवों को अग्नि पर पकाना अर्थ करेंगे, तो फिर अथर्ववेद में 'ब्रह्मगवी' सूक्त में जो गोरक्षा की प्रार्थना और कामना है, वह निरर्थक हो जायेगी। वेद में 'गौ' शब्द गाय, वेद, ब्रह्म, पृथिवी, वाणी, सूर्यादि नक्षत्र, विद्वान् की वाणी, ज्ञान आदि का वाचक है।

'शूलगव' याग के प्रसंग में यह भी कहा गया है कि गाय आदि पालतू पशुओं को मालपुए खिलाना भी शूलगव है और यह पशुयाग ही है-**अपूपानेके पाकयज्ञपशूनाहु:**[१८]। अब भला पशुओं को घर में बनी चीजें खिलाना 'शूलगव' है तो उनके अवयवों को लोहे की छड़ से अग्नि में पकाना 'शूलगव' कैसे हो सकता है? इन दोनों की संगति तभी लग सकेंगी जब कृषिकर्म से अन्न उत्पन्न करना अथवा उत्पन्न अन्न को गाय आदि को खिलाना अर्थ किया जाए। पर, व्याख्याकार क्यों मौन हैं? इसका कारण आर्षी दृष्टि का विस्खलन नहीं तो और क्या है?

इस यज्ञ में यजुर्वेद के आठ मन्त्रों (१६.१-८) से आहुति दी जाती है।[१९] इनमें किसी एक मन्त्र में भी हिंसा वर्णित नहीं है, बल्कि अन्नप्राप्ति, सुशासन और समृद्धि की ही प्रार्थना है।

यह ध्यातव्य है कि कौषीतकि-गृह्यसूत्र (३.५.४) और शांखायन गृह्यसूत्र (३.९.१) में गोष्ठ कर्म का विधान है। इसमें गौओं के कल्याण एवं सुरक्षा की अभिलाषा की जाती है। सद्य: प्रसूता गाय के दूध से यज्ञ किया जाए-यह कौषीतकि गृह्यसूत्र (३.५.८) का विधान है।

अब यदि शूलगव का अर्थ गाय के अंगों को अग्नि में पकाना होगा तो शांखायन और कौषीतकि गृह्यसूत्र में उसकी संगति कैसे लगेगी। इसलिये स्मरण रहे दयानन्दोक्त आर्षदृष्टि का एक फल यह है कि सम्पूर्ण वेदार्थ में एकान्विति मानी जाए। यही एकान्विति स्वामी जी ने छह दर्शनों में भी मानकर उनके अविरोध की बड़ी तार्किक मीमांसा की है।[२०]

(ग) सर्पबलि या सर्पयाग-

यह बड़े सन्तोष की बात है कि व्याख्याकारों या अनुसन्धाताओं ने जहाँ पशुयाग और शूलगव का अर्थ पशु हिंसा और गाय को आग में पकाना कर दिया, वहाँ सर्पबलि या सर्पयाग का अर्थ सांपों को मारना नहीं किया। गृह्यसूत्रकारों का कहना है कि सर्पों के भय से रक्षा की याचना ही सर्पयाग है-**सर्पेभ्यो बिभ्यत् श्रावण्यां तूर्ष्णीं भौममेककपालं श्रपयित्वाऽक्षतसक्तून् पिष्ट्वा...जुहोति।**[२१] इसे श्रावणा कर्म[२२] भी कहा गया है। व्याख्याकारों ने इसे सर्पमय शान्ति[२३] कहा है। किन्तु क्या भयभीत होकर यज्ञविशेष करने से सांप भाग जायेंगे? यदि पूजाविधि से सर्पभय समाप्त हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है तो फिर पूजा से शत्रु भी भाग सकते हैं, क्या यह सम्भव है। ऐसा अर्थ क्लीबता को जन्म देता है। फिर इनकी क्या उपयोगिता है ?

ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का अध्ययन करने के उपरान्त यह धारणा बनती है कि ये कृत्य संकल्पात्मक होते हैं। जैसे प्रायश्चित्तीय विधि का अभिप्राय है पुनः वही दुष्कर्म या पाप कर्म न करने का संकल्प। प्रत्येक सूत्रकार ने सर्पबलि को श्रावण कर्म कहा है। श्रावणी पूर्णिमा को यज्ञीय कृत्य द्वारा सर्पों को अभय प्रदान करना ही सर्पबलि का लक्ष्य प्रतीत होता है। सावन में सर्पों का प्रजनन बढ़ जाता है। यह ठीक है कि सर्प भयकारी प्राणी है, पुनरपि प्रत्येक जीव इस ईश्वरीय सृष्टि का महत्त्वपूर्ण अंग है तथा यह मानवजाति के लिये हितकारी भी है। उसे शत्रु समझकर हम तुरन्त मार देते हैं। इस याग का संकल्प यही है कि यदि घर में साँप हो तो प्रथम दृष्ट्या उसे बाहर भगाने का ही प्रयास किया जाये तथा स्वयं सर्पभय से चौकन्ने रहें और यदि वन या खेत में सांप या इसी श्रेणी का कोई प्राणी हो, तो उसे एकदम मार डालने की प्रवृत्ति छोड़ दें। जीवमात्र में मैत्रीभाव रखना सर्पयाग है। ये सर्प परमात्मा की दिव्य सृष्टि हैं, तभी तो **दिव्यानां सर्पाणामधिपतये स्वाहा, दिव्येभ्यः सर्पेभ्यः स्वाहा**[२४] की आहुति दी जाती है। इससे यही ज्ञापित होता है कि सर्प आदि में द्वेष्य बुद्धि न रखी जाए। इस यज्ञ में सभी दिशाओं में भी आहुति दी जाती है, जिसका अर्थ सब और मैत्री बुद्धि रखना है।[२५] पारस्कर गृह्यसूत्र (२.१४.८) के अनुसार इस कृत्य में सर्पों के निमित्त घृतसिक्त सत्तुओं की आहुतियाँ दी जाती हैं। हिरण्यकेशि गृह्यसूत्र (२.१६.५) ने सर्पों को बलि देने का विधान किया है। इन कृत्यों का सीधा सा अभिप्राय सर्प आदि को सुरक्षा प्रदान करना ही है।

मानवगृह्यसूत्रकार ने छह मन्त्रों से आहुति का विधान किया है।[२६] जिसमें तीन मन्त्र यजुर्वेद के हैं। इनमें सर्प का अर्थ प्राणी है और उन्हें नमन का अर्थ अन्न प्रदान करना है। इसी प्रकार सर्प का अर्थ दुष्ट प्राणी भी है।

यह दयानन्दार्थ देखिए-

नमो॑ऽस्तु स॒र्पेभ्यो॒ ये के च॑ पृथि॒वीमनु॑। येऽअ॒न्तरि॑क्षे॒ ये दि॒वि तेभ्य॑: स॒र्पेभ्यो॒ नम॑:॥ यजु०१३.६

पदार्थ- जो **(के)** कोई इस जगत् में लोकलोकान्तर और प्राणी हैं **(तेभ्यः)** उन **(सर्पेभ्यः)** लोकों के जीवों के लिये **(नमः)** अन्न **(अस्तु)** हो, **(ये)** जो **(अन्तरिक्षे)** आकाश में हो। जो **(दिवि)** प्रकाशमान् सूर्य आदि लोकों में **(च)** और **(ये)** जो **(पृथिवीम्)** भूमि के **(अनु)** ऊपर चलते हैं, उन **(सर्पेभ्यः)** प्राणियों के लिये **(नमः)** अन्न प्राप्त होवे।

या॒ऽइष॑वो यातु॒धाना॑नां॒ ये वा॒ वन॒स्पतीँ॑१॥ऽरनु॑। ये वा॑व॒टेषु॒ शेर॑ते॒ तेभ्य॑: स॒र्पेभ्यो॒ नम॑:॥ यजु०१३.७

पदार्थ-हे मनुष्यो! तुम लोग **(याः)** जो **(यातुधानाम्)** पराये पदार्थों को प्राप्त होके धारण करने वाले जनों की **(इषवः)** गति हैं **(वा)** अथवा **(ये)** जो **(वनस्पतीन्)** वट आदि वनस्पतियों के **(अनु)** आश्रित रहते हैं, और **(ये)** जो **(वा)** अथवा **(अवटेषु)** गुप्त मार्गों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(शेरते) सोते हैं **(तेभ्य:)** उन **(सर्पेभ्य:)** चञ्चल दुष्ट प्राणियों के लिये **(नम:)** वज्र चलाओ॥

ये वामी रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु। येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्य: सर्पेभ्यो नम:॥ यजु०१३.८

पदार्थ-हे मनुष्यो! **(ये)** जो **(अमी)** वे परोक्ष रहने वाले **(दिव:)** बिजुली के **(रोचने)** प्रकाश में **(वा)** अथवा **(ये)** जो **(सूर्यस्य)** सूर्य की **(रश्मिषु)** किरणों में **(वा)** अथवा **(येषाम्)** जिनका **(अप्सु)** जलों में **(सद:)** स्थान **(कृतम्)** बना है **(तेभ्य:)** उन **(सर्पेभ्य:)** दुष्ट-प्राणियों को **(नम:)** वज्र से मारो॥

स्वामी जी द्वारा यहाँ प्राणिमात्र के लिये अन्नप्राप्ति और दुष्टों के लिये दण्ड देने की प्रार्थना की गयी है। अन्य तीन मन्त्रों में भी सांपों के भय की बात नहीं है।

इन विनियुक्त मन्त्रों के अर्थ से यह भासित होता है कि सर्प का अर्थ दुष्ट प्राणी भी है। दुष्टों से बचने का उपाय सर्पयाग माना जा सकता है।

उपसंहार- गृह्यसूत्रों में हुए यज्ञविवेचन को 'अध्वर' की निरुक्ति के आधार पर देखा जाना चाहिये। यह मानना चाहिये कि गृह्यसूत्र अर्थवाद प्रधान ग्रन्थ हैं। इसलिये इनमें प्रतिपादित सिद्धान्तों को उसी रूप में सम्पादित करना न तो व्यावहारिक ही है और न ही तर्कसंगत तात्पर्यार्थ को प्रधान मानकर ही इन कृत्यों की व्याख्या सम्भव है। कई स्त्रहस्त्राब्दी पूर्व 'पशुयज्ञ' का रूप पशुहिंसा हो गया था। किन्तु वैदिककाल में निश्चयेन पशुयाग का तात्पर्य पशुपूजा ही था। श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र साहित्य को भी पशुहिंसा ने प्रभावित किया है। उस साहित्य में कितना मूल और कितनी मिलावट है, कहा नहीं जा सकता। इनका कर्मकाण्डीय पक्ष इतनी औपचारिकताओं से भरा है कि लगता है जीवन का उद्देश्य कोरे कर्मकाण्ड का अनुष्ठान ही हो। इसलिये इस साहित्य में अनेकत्र अर्थवाद है, उस अर्थवाद का उद्देश्य जीवन को संवेदनशील बनाना है, यही इन गृह्यसूत्रों की उपयोगिता है। यह संवेदना है सम्पूर्ण प्राणिजगत् के लिये, न कि किसी हिंसा के लिये। यदि हिंसा के लिये होता तो 'भूतयज्ञ' या 'बलिवैश्वदेवयज्ञ' का क्या औचित्य था। 'आश्वयुजी' कृत्य में पशुओं का हित है। इस कृत्य में गाय आदि पशु तथा उनके बछड़ों को भी भोज दिया जाता है। व्यवहार और तर्क का समन्वय करके ही इन गृह्यसूत्रों को समझा जा सकता है। साथ ही इनकी नए सन्दर्भ में व्याख्या भी अपेक्षित है। मिथ्या स्तुति से शास्त्रहानि ही होती है।

पाद-टिप्पणियां-

१ अथर्व०१९.३१.५

२ द्र० वैदिक इतिहासार्थ निर्णय-शिवशंकरकाव्यतीर्थ

३ निरुक्त १.७

४ Beef in Ancient India (Br.up.6.4,18)

५ Introduction to Beef in Ancient India.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६ ऋग्०१०.६८.३

७ Vedic Age, p.313

८ ऋग्०१०.८६.१४

९ The Quintessence of the Ṛgveda, p.120

१० महाभारत (शान्तिपर्व) ३३७.४

११ The Quintessence of the Ṛgveda, p.122

१२ वैदिक सिद्धान्तमीमांसा, पृ०३६२

१३ मानवगृह्यसूत्र २.४.१.३,५-६

१४ वैयाकरणसिद्धान्त कौमुदी (भाग-३) बालमनोरमा, पृ०१८६, माधवमत में सम पूर्वक ज्ञप (चुरादि०) ही मारणार्थक है। द्र०वही।

१५ अथर्ववेद ६.१७४.२

१६ मानवगृह्यसूत्र २.४.१३

१७ मानवगृह्यसूत्र २.५.१

१८ मानवगृह्यसूत्र २.५.६

१९ मानवगृह्यसूत्र २.५.३

२० सत्यार्थप्रकाश

२१ मानवगृह्यसूत्र २.१६.१

२२ शांखायन गृह्यसूत्र ४.१५; पारस्कर गृह्यसूत्र २.१४; आश्वलायन गृह्यसूत्र २.१.१.१५

२३ मानवगृह्यसूत्र (व्याख्यान अष्टावक्र) २.१६

२४ गोभिल ३.७.१३-१५; मानवगृह्यसूत्र २.१६.३

२५ मानव गृह्यसूत्र २.१६.३

२६ कौषीतकि गृह्यसूत्र ४.३.२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotiḥ Vol.1, No.2 (9-14) Jan-jun 2013
ISSN 2277-4351

वशा और उसका स्वरूप

बद्रीप्रसाद जी पंचोली, किशनगढ़-राजस्थान

अथर्ववेद में वशा के दो सूक्त मिलते हैं। ऋग्वेद में भी वशा का उल्लेख हुआ है। वेदों में सायणादि भाष्यकारों ने वशा को वन्ध्या गौ माना है। अथर्ववेद में वशा के दुग्धादि का वर्णन भी मिलता है। अत: वशा को वन्ध्या गौ मानना उचित नहीं जान पड़ता। इसके विपरीत पं०सातवलेकर ने तो वशा को दुधारू गाय माना है।

वशा शब्द वश-कान्तौ धातु से निष्पन्न है। इस प्रकार इस शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है- कान्तियुक्त अथवा अभिलषणीय।

ऋग्वेद के एक मन्त्र के अनुसार हृदय से तष्ट, अग्नि के लिये हवि रूप में समर्पित ऋचा ही उक्ष और वशा का रूप धारण कर लेती है-

आ ते॑ अग्न ऋ॒चा ह॒विर्हृ॒दा त॒ष्टं भ॑रामसि।
ते ते॑ भवन्तू॒क्षण॑ ऋष॒भासो॑ व॒शा उ॒त ॥[1]

वशा के ऋण का उल्लेख मिलता है जिसे ब्रह्मणस्पति प्राप्त करता है (ऋग्०२.२४.२३) सम्भवत: वशा का ऋणवशा से प्राप्त घृत दुग्धादि अन्न हों, जिनकी आहुति दी जाती है। वशान्न अग्नि के लिये समर्पित किया भी जाता है (ऋग्०८.४३.११)। वशा (वशा द्वारा प्राप्त अन्न) से अग्नि को आहुत करने का भी यही भाव ज्ञात होता है। (ऋग्०२.७.५)। यज्ञ में उपकल्पित वशा धेनु को अश्व, ऋषभ आदि के साथ ही छोड़ दिया जाता है (ऋग्०१०.९१.१४)। इन प्रसंगों में वशा गौ या उससे प्राप्त अभिलषणीय अन्न है।

ऋग्वेद में कुछ अन्य मन्त्रों में वशा का रहस्यात्मक रूप भी मिलता है। एक मन्त्र में दश वशाओं का उल्लेख है (ऋग्०६.६३.९)। कदाचित् जिन वशाओं का अनुगमन करता हुआ अश्विन्-द्वय में से एक का रथ यज्ञ में प्रवेश करता है (ऋग्०१.१८१.५), ये वे ही वशाएं हैं। स्तुत होकर इन्द्र भी इन वशाओं का अनुगमन करता है (ऋग्०१.८२.३)। ऐसा करता हुआ वह सोमपान करता व अतीव तेजस्वी हो जाता है (ऋग्०८.४.१०)। आप: के न्ययन और समुद्र के निवेशन से अन्य मार्ग का अवलम्बन लेकर अग्नि भी इन वशाओं का अनुगमन करता है (ऋग्०१०.१४२.७)। यहां आप: का न्ययन सृष्टि की पूर्वावस्था-सलिलावस्था ज्ञात होती है और वशाओं का इन देवताओं द्वारा अनुगमन सृजन में प्रवृत्त वशा के कार्य में योगदान माना जा सकता है। दस वशाएं विराट् (दशाक्षरा) से अभिन्न ज्ञात होती है। सृजन-प्रक्रिया को रोकने वाली आसुरी शक्तियां दशधा विभक्त थीं, जिन्हें 'दश वृत्राणि' कहा गया है (अवे०२०.२१.५)। इन्द्र अपने सहस्र-वीर्यों से इन वृत्रों का वध कर देता है। उसका यह कार्य दस आसुरी शक्तियां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को पराजित करके दशधा विभक्त होकर सृजन में प्रवृत्त होने वाली वशा का अनुगमन ही माना जाना उचित है। निर्माण कार्य में कुशल ऋभु भी इन्द्र के साथ रथारोही होकर वशाओं की श्री के साथ होते हैं। अर्थात् सृजन में प्रवृत्त वशाओं की श्री के साथ होते हैं। अर्थात् सृजन में प्रवृत्त वशाओं की तरह शोभान्वित होते हैं (ऋग्०३.६०.४)। वशा के समान गृहनिर्माण में प्रवृत्त होने वाली नववधू को वशिनी कहा गया है (ऋग्०१०.८५.२६)। इससे स्पष्ट है कि **वशा सृजनकार्य में प्रवृत्त प्रकृति को कहा गया** है। डॉ० फतेहसिंह ने 'वैदिक समाजशास्त्र में यज्ञ की कल्पना' पुस्तिका में प्रकृति को अथर्ववेद की साक्षी से वशा से गाय माना है, जिसमें वशी नामक यक्ष या योद्धा व्याप्त है तथा जिसके चार भाग हैं-१. व्यापकतत्त्व, २. अमृत-तत्त्व, ३. यज्ञतत्त्व और ४. मूर्ततत्त्व।

ऋग्वेद के देवताओं के कर्मों में एक 'अप्रसूता गौ को पुष्ट व प्रसूता बनाना' भी उल्लिखित है : अधेनुं स्तर्यम् अपिन्वतं गाम् (ऋग्०१.११७.२०) कदाचित् प्रकृति की साम्यावस्था को अप्रसूता गो कहा गया हो और वशा शब्द उसके उस रूप को भी संकेतित करता हो। सायणादि ने वशा को वन्ध्या गो इस रूप में माना हो तब तो वशा के वर्णन से उनकी मान्यता का विरोध नहीं रह जाता। कबीर की भी मान्यता है-

जो ब्यावे तो दूध न देई, ग्याभण अमृत सरवै।

यह गो (कामधेनु-कबीरदास) गर्भिणी होने की दशा में ही अमृत बरसाती है, प्रसूता होने पर दूध देना बन्द कर देती है।

कुछ भी हो वन्ध्या शब्द के अर्थ से तो वशा का स्वरूप भिन्न है। प्रकृति सृजन में प्रवृत्ति होने व इस प्रकार जगत् को अपने गर्भ में धारण करने पर ही वशा कही जाती है।

शतपथब्राह्मण के अनुसार जब कोई रस परिशिष्ट नहीं रहा तो वह मैत्रायणी वशा हो गयी। इसलिये वह प्रजनन नहीं करती। इससे ही रेतस् उत्पन्न होता है और रेतस् से पशु होते हैं। यह तो अपने में एक ही होती है, अतः अन्तर में ही यज्ञ का अनुवर्त्तन करती है (४.५.१.९)।

यहाँ पर स्पष्ट हो जाता है कि वशा सारी सृष्टि को अपने में ही धारण करती है और ऐसे किसी रस का पता नहीं चलता जिससे वशा व सृष्टि में भेद का आभास हो। इसीलिये उसको प्रसूता नहीं माना जाता।

इसे पृथिवी रूप वशा पृश्नि भी कहा गया है (शत०ब्रा०१.८.३.१५ व ५.१.३.३) पृथिवी सृजन कार्य के लिये प्रयत्नशीला प्रकृति का ही नाम है।

ऐतरेयब्राह्मण के द्वारा जो 'वश' स्रवित हुआ वही वशा हो गया (ऐत०ब्रा०३.२६)। वश शब्द के इच्छा, संकल्प, शक्ति, उत्पत्ति आदि अर्थ हैं। प्रजापति के काम (संकल्प-सृजनेच्छा) का दोहन करने के कारण प्रकृति को 'कामदुघा' कहा जाता है। 'वश' से वशा का होना भी इसी भाव का द्योतक ज्ञात होता है। इच्छा या संकल्प शक्ति के प्रवर्तक शक्तिमान् को ही वशी कहा गया है। ऋग्वेद में इन्द्र का नाम 'वशी' है (ऋग्०१.१०१.३, ८.१३.९, ८.६७.८, १०.१५२.२)। उसे संस्रष्टा या संसृष्टजित कहकर (ऋग्०१०.१०३.३)। उसको सृजन कार्य से संयुक्त माना गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थावर और जंगम के आधार तथा उनके सृजन सविता देव को भी वशी कहा है (ऋग्०४.५३.६)।

ऋग्वेद की सृष्टि का व्याख्यान करने वाले एक सूक्त (ऋग्०१०.१९०) के अनुसार अर्णव समुद्र (प्रकृति की सलिलावस्था) से संवत्सर अर्थात् कालात्मक प्रजापति उत्पन्न हुआ, जिसने अहोरात्र को धारण किया। उनको व्याप्त करता हुआ विश्वोत्पादन में हिरण्यगर्भ (वशी) उत्पन्न हुआ (ऋग्०१०.१९०.२)। इस धाता ने सूर्य, चन्द्र, द्युलोक, पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग को यथा पूर्व बनाया (ऋग्०१०.१९९.३)।

अथर्ववेद में वशा के स्वरूप पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। राजा वरुण की सत्यावशा का उल्लेख भी मिलता है (अथर्व०१.१०.१)। वरुण के द्वारा अथर्वन् को दी गयी सुदुघापृश्नि-धेनु से यह अभिन्न ज्ञात होती है, इसे नित्यवत्सा और शक्ति के अनुकूल शरीर धारण करने वाली कहा गया है : **यथावशं तन्वः कल्पयाति** (अ०७.१०४.१)। नित्यवत्सा विशेषण वशा के उपर्युक्त स्वरूप कि वह सदा गर्भिणी रहती है और कभी प्रसूता नहीं होती, अतः इस रूप में वन्ध्या है, की ओर संकेत करता है। वह अपने इसी रूप से सृष्टिकार्य में प्रवृत्त होती है और प्राणियों के लिये पोषक अन्न प्रदान करती है।

अथर्ववेद में भी दशमी वशा का उल्लेख है (अथर्व०३.४.७), जिसकी समानता ऋग्वेद की दश वशाओं में खोजी जा सकती है।

वरुण के साथ वशा के सम्बन्ध का उल्लेख ऊपर किया गया है। अथर्ववेद में वरुण की पृश्नि के विषय में एक रोचक संवाद मिलता है। वरुण ने उसे अथर्वन् को दे दिया, परन्तु उसकी योग्यता के विषय में सन्देह होने से उसे वापस मांगा। अथर्वन् ने पूछा भी-कि दक्षिणा में देकर पृश्नि को वापस लेने की क्यों अभिलाषा करते हो। वरुण ने कहा-कि कामनावश पृश्नि को वापस नहीं मांगा जा रहा है। मांगने का कारण यह है कि वह केवल ध्यान करने वाले और इस प्रकार अपने को अधिकारी प्रमाणित करने वाले को ही दी जाती है। अथर्वा बोला-वरुण, सत्य कहता हूं मैं ज्ञान द्वारा आत्मस्वरूप हूँ। सहज बोध्र के कारण मैं जातवेदा हूँ। जिस व्रत को मैं धारण करता हूं, उसे दास या आर्य हिंसित नहीं कर सकते। वरुण अथर्वा की इस योग्यता से प्रभावित हुआ। उसने अथर्वा का लोकों से ऊपर उनमें व्याप्त रहने वाले एक तत्त्व से परिचय कराया और पृश्नि अथर्वा के पास ही रहने दी (अथर्व०५.११)।

डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने **उरुज्योति** में इस पृश्नि को प्रकृति माना है। क्रान्तदर्शिनी प्रज्ञा वाला अथर्वन् जैसा मानव ही इस प्रकृति रूपी गो का स्वामी होने व उसके स्तन्यपान करने की योग्यता रखता है।

अथर्ववेद में दो सूक्त वशा के हैं। इस सूक्त (अथर्व०१०.१०) में उसे वन्दनीया व अघ्न्या कहा गया है (मन्त्र १)। 'सप्तप्रवृत' और 'सप्तपरावत' और यज्ञ के शिर को जानने वाला ही वशा को ग्रहण कर सकता है (मं०२)। इनमें से प्रथम का सम्बन्ध वशा के व्याप्त तत्त्व से, द्वितीय का अमृत से और तृतीय का यज्ञतत्त्व से ज्ञात होता है। इन तीन रूपों से वशा इस स्थूल जगत् का संचालन व धारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किये हुए है। प्रकृति इस अन्तिम रूप में जड़ तत्त्व है।

द्युलोक, पृथिवीलोक और आपः को सुरक्षित करती हुई वशा सहस्र धाराओं में दुग्ध प्रदान करने वाली है (मन्त्र ४)। सौ कांस्यपात्र लेकर, सौ दुहने वालों से युक्त तथा सौ रक्षकों से रक्षित इस गौ को वे ही देवता जानते हैं जो गौ में प्राणधारण करते हैं (मं०५)। देवों के निकट गमन करने वाली वशा यज्ञपदी, अन्नप्रदात्री, स्वधा-प्राण, पर्जन्यपत्नी और पृथिवी के समान पोषिका है (मं०६)।

यह वशा विश्वरूपिणी है। पर्जन्य इसका ऊधस् है और विद्युत् स्तन है। देवगण इस पर आश्रित हैं (मं०७)। यह राष्ट्र का पोषण करती है (मं०८)। ऋतावरी वशा को इन्द्र ने सहस्र पात्र भरकर सोमरस पिलाया (मं०९)। इन्द्र से वियुक्त होकर जब यह (वृत्र रूपी) ऋषभ से संयुक्त हो जाती है तो इन्द्र इस पर क्रोध करता है (मं०१०)। क्रोध में वह वशा के दूध को ले लेता है जिसे स्वर्ग तीन पात्रों में रखा लेता है (मं०११)। सोमरूपी दुग्ध को वशा तीन पात्रों में रख लेती है (मं०१२)। सोम से संगत वशा प्राणियों के लिये मिलकर समुद्र (जगत्) में अधिष्ठित होती है (मं०१३), ऋचा और सामों को धारण करती हुई समुद्र पर नृत्य करने लगती है (मं०२४), कालरूप अश्व समुद्र होकर वशा के ऊपर आरूढ़ हो गया (मं०१६)।

यह वशा देवताओं की (संभवतः समस्त शक्ति तत्त्वों की) माता है। यज्ञ ही उसका आयुध है। चित्त उसी यज्ञ से उत्पन्न होता है (मन्त्र १८)। ब्रह्म के ऊर्ध्वभाग से एक बिन्दु ऊपर चला गया। वशा उसी से उत्पन्न हुई (मन्त्र १९)। गाथा, बल, यज्ञ-रश्मियां, गति, भक्षण-शक्ति, ओषधियां आदि वशा से उत्पन्न हुए (मन्त्र २०-२१)।

वशा वरुण के उदर में प्रविष्ट है। ब्रह्मा से आहूत होकर, उसके मार्गदर्शन में वशा अप्रसूता होने पर भी सृजन में प्रवृत्त हुई। सृष्टि का यह परिवृद्ध (ब्रह्म) रूप वशा का बन्धु हुआ (मं०२२-२३)।

वशा का स्वामी-वशी योद्धाओं को : संम्भवतः सत्य-असत्य, देव-असुर, पाप-पुण्य, द्यावापृथिवी, अग्नि-सोम आदि द्वन्द्व, जिनका संघर्ष सृष्टि का आधार है : प्रेरित करता है। यज्ञ उसी का सामर्थ्य है और वशा उन सामर्थ्यों की आंख (मन्त्र २४)।

वशा यज्ञ को ग्रहण करती और सूर्य को धारण करती है। ब्रह्म के साथ ओदन वशा में प्रविष्ट है (मन्त्र १५)। वैदिक सृष्टि विज्ञान के अनुसार सारा ब्रह्माण्ड धर्मपात्र के समान है, जिसमें ब्रह्मोदन पक रहा है। वशा में ही ब्रह्मोदन-पाक प्रतिष्ठित हो रहा है।

वशा अपने अमृतत्व से अमृतस्वरूपा है और मूर्तरूप में मर्त्यधर्मादिव, मनुष्य, असुर, पितर और ऋषि तत्त्वों से बना हुआ यह जगत् (इदं सर्वम्) वशा ही है (मन्त्र २६)।

वरुण की तीन जिह्वाओं में से मध्य में विराजने वाली एक वशा है (मन्त्र २८)। वरुण की एक जिह्वा (वाक् जिह्वा निघण्टु १.११ में वाक् का नाम है।) का निष्क्रिय रूप है और तीसरा रौद्र रूप (जिससे सृष्टि में प्रलय होता है) मध्यमा राष्ट्री (प्रकाशमाना-मन्त्र के 'मध्ये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजति' से तुलनीय) वाक् ही सृजन में योग देती है। वशा भी सृजकशक्ति है। इन तीनों का संयुक्त रूप कदाचित् पृश्नि हो और उसके विविध वर्ण त्रिविध शक्तियां हों। वशा के कर्मसामर्थ्य : वीर्य : को वसुधा भी कहा गया है-आप : व्याप्तिधर्मा : अमृत : पोषणधर्मा : यज्ञ : सृजक और पशु : क्षरतत्त्व मूर्ततत्त्व।

वशा द्यौः, पृथिवी, विष्णु और प्रजापति है (मन्त्र ३०)। अतः व्याप्तिधर्मा है। साध्यदेव वसु आदि उसके दुग्ध को पीकर स्वर्गधाम में भी दूध का ही वर्णन करते हैं। इस प्रकार वशा का पोषण कर्मसामर्थ्य का उल्लेख है। कोई उससे सोमरस निकाल लेता है और कोई घृत की उपासना करते हैं। सोम और घृत आनन्द और प्रकाश के वाचक हैं और यज्ञ में प्रवृत्ति के कारण हैं। यज्ञरत रहने वाले विद्वान् को गो देने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है (मन्त्र ३२)। इस वशा में सत्य, यज्ञ, ज्ञान, वेद और तप विद्यमान हैं (मन्त्र ३३)। देवता और मनुष्य की उपजीव्या है। जहाँ तक सूर्य चमकता है वहां विस्तृत यह भौतिक जगत् वशा ही है (मन्त्र ३४)।

इस सूक्त में विविध देवशक्तियों से मिलकर सृष्टिकार्य में प्रवृत्त होने वाली और चार प्रकार से स्वयं को सृष्टि में परिवर्तित कर देने वाली प्रकृति का विश्वरूपिणी गो के रूप में वर्णन है।

दूसरे वशा सूक्त (अथर्व०१२.४) में वशा को कामनाओं का दोहन करने वाली (मं०३२,३६) व अनेक प्रकार से सृजन में प्रवृत होकर विविध पदार्थों के रूपों का निर्माण करने वाली (मं०२९), यज्ञ से निर्मित (मं०४१), स्वधाकार से पितरों को व यज्ञ से देवताओं का भाग (मं०२१) देवताओं की निधि (मं०१७) तथा देवों की गो (मं०१२) कहा गया है।

मित्रावरुण के साथ वशा का सम्बन्ध ऊपर बताया गया है। इस रूप में यह सांख्य की महत्प्रकृति के तुल्य है। इसका पिण्डगत रूप बुद्धि और उसकी वृत्तियां हैं। भक्त कवि सूरदास ने अपनी इच्छाशक्ति को गो मानकर गो-चारण-दक्ष कृष्ण से चराने की प्रार्थना की है-

माधौ जू यह मेरी इक गाय।

हित करि मिलै लेहु गोकुलपति अपने गोधन माह।

अथर्ववेद में इसी प्रकार पिण्डगत वशा को देवों व उनसे प्रेरित कर्मों के लिये समर्पित करने की प्रेरणा दी गयी है (सूक्त १२.४)। आपाततः मन्त्रों से गो दान में प्रवृत्त होने की प्रेरणा मिलती है, परन्तु इससे भी अधिक महत्त्व इन मन्त्रों का आत्मनिवेदन के लिये मनुष्य को तैयार करना है। इस प्रसंग में ब्राह्मण की याचना का तात्पर्य अन्तरात्मा की पुकार से हो सकता है। यहाँ संकल्प रूपी गो को हिंसित करने की अपेक्षा उसके उदात्तीकरण (Sublimation) को महत्त्व दिया गया है। ऐसी समर्पित गो के विषय में देवता भी कहते हैं कि यह विद्वान् की गौ है (मं०२५)।

एक मन्त्र (सं०२८) के अनुसार ऋचाओं को सुनकर जो गोपति अपनी गो को अन्यत्र दूसरी गोओं के साथ विचरने देता है, उसकी आयु व ऐश्वर्य नष्ट हो जाते हैं और देवता क्रोध करके उसे काट डालते हैं (मं०२८)। एक मन्त्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अनुसार जो मन से संकल्प किया जाता है वह अन्य देवों के पास जाता है और तब संकल्प (वशा) को प्रेरित करने के लिये हृदय की पुकार सुनाई पड़ती है (मं०३१)। अन्य गौओं के साथ जब यह गो (अभिलषणीय वशा) विचरण करती है तो बड़ी सन्तप्त होती है और गोपति के लिये विष ही दूहती है (मं०३९)। ऐतरेय उपनिषद् में वश प्रज्ञान का नाम है (मं०३२)। अत: मनस्तत्त्व का बोधक है। यहाँ ऐतरेय उपनिषद् की साक्षी से इन वशा के तीन प्रकारों (मं०४४,४६,४७) विलिप्ती (विशेष प्रकार से विषयों में लिप्त-भीमतया) सूतवशा (इच्छानुसार जन्म लेने वाली) और वशा (सामान्य इच्छाएं) ये तीन प्रकार की उल्लिखित हैं। मन्त्रों में मेधा को वशा का पर्याय माना जा सकता है। मेधा शक्ति को देवार्पित करके तदनुकूल कार्यों से दत्तचित्त हो जाना ही ऐसे मन्त्रों का अभिप्रेत भाव ज्ञात होता है।

इस प्रकार ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में **ब्रह्म की सृजनशक्ति का वशा के नाम से वर्णन किया गया है। उसका पिण्डगत रूप ज्ञानेन्द्रियों की प्रेरक मेधा या मति है।** जिस तरह वशा विविध देवशक्तियों से संयुक्त होकर सृजन में प्रवृत्त रहती है, उसी प्रकार संकल्पशक्ति को देवार्पित करके कर्मरत हो जाने की प्रेरणा वशा वर्णन में वेदों का लक्ष्य ज्ञात होता है।

पाद-टिप्पणी-

१ ऋग्०६.१६.४७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotiḥ
ISSN 2277-4351

Vol.1, No.2 (15-24) Jan-jun 2013

मंगलीक योग एवं गुणमेलापक-वेदोक्त यथार्थता की कसौटी पर

(वेदप्रकाश शास्त्री, 4-E, कैलाश नगर, फाजिलका, पंजाब)

(ज्योतिष् निश्चित रूप से विज्ञान है, लेकिन विज्ञान की तरह इसकी भी सीमाएं हैं। विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में लगातार अनुसन्धान चल रहे हैं। जबकि ज्योतिष् में ऐसा नहीं है। ज्योतिषी अनुसन्धान करने की बजाए इसे धन कमाने का साधन बनाये हुए हैं। इसे अन्धविश्वासों से जोड़कर दुःख दूर करने के उपायों के नाम पर लोगों को लूटा जाता है। इससे इस पवित्र विद्या के प्रति लोगों का विश्वास शिथिल होता जा रहा है। जहाँ तक एक ही कुण्डली या घटना पर विद्वान् ज्योतिषियों की अलग-अलग भविष्यवाणियाँ होती हैं, तो कोई गलत नहीं है। एक रोगी के बारे में डॉक्टरों की राय भी तो अलग-अलग होती है। पृथिवी से लाखों किलोमीटर दूर ग्रहों-नक्षत्रों के प्रभाव के बारे में कहना है कि 'ग्रह' का अर्थ है-पकड़ना। इसका मतलब है कि फल देने के लिये मानव के कर्म कई जन्मों तक उसका पीछा करते हैं और प्रत्येक व्यक्ति को उसके कर्मों का फल अवश्य मिलता है। व्यक्ति का प्रारब्ध या नियति उसके संचित कर्मों के अनुसार बनती है। पिछले जन्मों में किये कर्म व्यक्ति को भोगने ही पड़ते हैं। महाभारत में कहा गया है कि जिस प्रकार गायों के झुण्ड में वछड़ा अपनी मां को पहचान लेता है, उसी प्रकार विगत जन्मों में किये गये कर्म अपने कर्त्ता को पहचान कर उस तक पहुंच जाते हैं। ज्योतिष् को सनसनीखेज बनाने के कारण इसकी महत्ता और वास्तविक उपयोगिता दोनों को नुकसान पहुंच रहा है। वो कहते हैं कि ज्योतिषी 'कालसर्प', 'शनि की ढइया', 'शनि की साढ़े साती' से डराकर और 'मांगलिक दोष' दूर करने के उपायों का नाम लेकर परेशान लोगों से हजारों रुपये ऐंठ लेते हैं। श्री के०एन०राव ने लिखा है कि मुझे कहीं ज्योतिष्-ग्रन्थों में कालसर्प का जिक्र नहीं मिला। मैं प्रसिद्ध तिरुपति मन्दिर से लगभग पचास किलोमीटर दूर काल हस्ती शिव मन्दिर भी गया, जहाँ कालसर्प दूर करने के लिये विशेष पूजा की जाती है। वहाँ भी मैंनें उन ज्योतिषियों से उन शास्त्रों के बारे में जानना चाहा, लेकिन किसी ने नहीं बताया। यदि ज्योतिषी उपाय करके भाग्य बदल सकते होते तो वे ईश्वर ही न बन जाते। प्रस्तुत निबन्ध में श्री वेदप्रकाश शास्त्री ने 'मांगलिक दोष' से सम्बन्धित भ्रान्तियों का निराकरण वेदोक्त विचारधारा के आधार पर किया है-सम्पा०)

वर-कन्या के विवाह के समय पौराणिक मत के अनुसार मंगल और मंगलीक योग पर अत्यधिक विचार किया जाता है। अनेक बार तो ऐसा देखने को आया है कि वर-कन्या में शैक्षिक, शारीरिक, पारिवारिक, कुलीय (वंश की कुलीनता), रंग, रूप आदि गुण अति सम्यक् प्रकारेण मिल जाते हैं, परन्तु मंगलीक योग अथवा ज्योतिषीय वर्णादि अष्टकूट गुण नहीं मिलते, जिसके कारण ऐसे योग्य और महत्त्वपूर्ण विवाह नहीं हो पाते। अतः सम्पूर्ण जीवन पश्चाताप के आंसू बहाने पड़ते हैं। इसके विपरीत जिस वर-कन्या की मेलापक-सारिणी अर्थात् ज्योतिषीय गुण मिल जाते हैं, उनमें विवाह हो जाता है। फिर चाहे सारा जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेमेल विवाह के कारण पछताते रहें। अत: यह कोई बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय नहीं कहा जा सकता।

इस सम्बन्ध में डॉ० लक्ष्मण सिंह टांक, पूर्व प्राचार्य सी०सी०आर०महाविद्यालय, मुजफ्फरनगर, उ०प्र० लिखते हैं-

''आपसे यह अनुरोध है कि शादी हेतु ''मंगली राशि'' पर बड़ा विचार किया जाता है। कृपया इस पर वेदों में क्या लिखा है? इसका विस्तृत वर्णन प्रकाशित करायें, जिससे आम व्यक्ति इससे लाभान्वित हो सके।''

यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना अत्यावश्यक है कि वैदिक काल में एतादृश फलित ज्योतिष् का विचार ही नहीं है। उस समय गणितीय ज्योतिष् ही प्रचलित थी। मंगलीक और अष्टकूट गुणों पर विचार ही नहीं किया जाता था। न ही वेदों में इसका कहीं उल्लेख मिलता है। अत: यह वैदिकीय पद्धति नहीं है। जिसका महर्षि दयानन्द सरस्वती ने **सत्यार्थप्रकाश** नामक ग्रन्थ के तृतीय समुल्लास में अप्रामाणिक बताते हुए पठन-पाठन हेतु निषेध किया है।

वर्तमान समय में मुहूर्तचिन्तामणि, ज्योतिष् चिन्तामणि, सारावली, बृहज्ज्योतिष् सार, मुहूर्त मार्तण्ड, लाल किताब, भृगुज्योतिष जैसी अनके पुस्तकें उपलब्ध हैं।

आइए, सर्वप्रथम यह विचार करें कि पौराणिक मत के अनुसार मंगलीक योग क्या है? इस सम्बन्ध में 'पंचांग दिवाकर' लिखता है-

विवाह योग्य लड़के-लड़की की जन्म कुण्डली में वर्ण, वश्य, तारा, ग्रहमैत्री, नाड़ी आदि अष्टकूट सम्बन्धी गुण मिलान के पश्चात कुण्डली में मंगल एवं मंगलीक दोष पर विशेष रूप से विचार किया जाता है। मंगलीक दोष का आधार सामान्यत: निम्न श्लोक माना जाता है-

लग्ने व्यये च पाताले जामित्रे चाष्टमे कुजे।
कन्या भर्तुर्विनाशाय भर्ता कन्याविनाशक:॥ (मु०संग्रह दर्पण)

जिस कन्या की कुण्डली में १,४,७,८ या १२वें स्थान में मंगल हो, तो वह कन्या वर (पति) के लिये हानिकारक तथा इसी भांति जिस लड़के की कुण्डली में इन्हीं स्थानों में मंगल हो तो वह कन्या को हानिकारक होता है।

इसी भांति चन्द्र लग्न और कभी-कभी शुक्र की राशि से भी मंगल की उपर्युक्त स्थितियों का विचार किया जाता है।

जितना दोष जन्म लग्न से विचार में माना जाता है, उसका आधा दोष चन्द्रलग्न में और उसका आधा शुक्रलग्न से जानना चाहिये।

अपवाद-मंगल दोष वाली कन्या का विवाह मंगलीक दोष वाले वर के साथ करने से मंगल का अनिष्ट दोष नहीं होता तथा वर-वधू के मध्य दाम्पत्य सुख बढ़ता है-

कुजदोषवती देया कुजदोषवते किल।
नास्ति दोषो न चानिष्टं दाम्पत्यो: सुखवर्धनम्॥

मंगलीक वाले स्थानों में मंगल के अतिरिक्त कोई अन्य क्रूर ग्रह भी १,२,७ एवं १२वें स्थानों में हो तो वह भी पारिवारिक एवं वैवाहिक जीवन के लिये अनिष्टकारी होता है-

लग्ने क्रूरा व्यये क्रूरा धने क्रूरा: कुजस्तथा। सप्तमे भवने क्रूरा: परिवारक्षयंकरा:॥ मु०संग्रहदर्पण

सुगम ज्योतिष् प्रवेशिका, पृष्ठ २९४ के अनुसार-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सूर्यादि नौ ग्रहों में चन्द्रमा, बुध, बृहस्पति, शुक्र-मेलापक विचार में शुभ माने जाते हैं। मंगल सबसे अधिक क्रूर समझा जाता है। शनि भी क्रूर गिना जाता है। राहू और केतु भी क्रूर माने जाते हैं। सूर्य को भी क्रूर मानते हैं। जन्मकुण्डली विचार में मंगल को सबसे अधिक पापी मानने के कारण इस दोष को बोलचाल की भाषा में 'मंगलीक दोष' कहते हैं। परन्तु वास्तव में मं०, श०, रा०, के०, सू० इन पांचों का विचार करना चाहिये। मंगलीक दोष की फौज में ये पांचों ही हैं। इनका नेता मंगल है।"

गुण मेलापक विचार-

मेलापक प्रक्रिया में मंगलीक के अतिरिक्त अष्टकूट तत्त्वों का विशेष महत्त्व है क्योंकि वर-कन्या के दाम्पत्य जीवन को अधिकाधिक सुखी एवं मंगलमय बनाने के लिये उनके जन्म नक्षत्रों एवं जन्म कुण्डलियों के अनुसार मिलान करना अत्यन्त आवश्यक है।

नक्षत्र मिलान के मुख्य तत्त्व अष्टकूट हैं जिनका निर्णय वर-कन्या के जन्म नक्षत्रों से ही किया जाता है, जो निम्नलिखित हैं-

(१) वर्ण (२) वश्य (३) तारा (४) योनि (५) ग्रहमैत्री (६) गणमैत्री (७) भकूट (८) नाड़ी।

प्रत्येक कूट की क्रम संख्या अपने श्रेष्ठ गुणों की सूचक हैं। वर्णादि अष्टकूटों के गुणों का योग ३६ होता है। इसमें क्रमानुसार वर्ण का गुण, वश्य के २, तारा के ३, योनि के चार, ग्रहमैत्री के पाँच, गणमैत्री के ६, भकूट के ७ एवं नाड़ी के ८ गुण जानने चाहियें।

वर्णादि कुल ३६ गुणों के योग में से १ से १७ तक गुण मिलान तुच्छ एवं निन्दनीय (त्याज्य) माने जाते हैं। १८ से २१ तक मध्यम एवं ग्राह्य, २२ से २८ तक उत्तम तथा २९ से ३६ तक गुण सर्वोत्कृष्ट माने जाते हैं-

एकैक वृद्धितो ज्ञेया वर्णादीनां गुणाः क्रमात्। विवाहः शुभदस्तेषां गुणे त्वष्टादशाधिके॥ मुहूर्तगणपति

समीक्षा-आइए, मंगल आदि ग्रहों पर वैज्ञानिक आधार पर विचार किया जाये। वस्तुतः मंगल, सूर्य, शनि, बृहस्पति, बुध आदि समस्त ग्रह जड़ अर्थात् निर्जीव हैं, चेतन नहीं जो किसी को हानि पहुंचाएं। यथा-सूर्य हमें प्रकाश, ताप, ऊर्जा प्रदान करता है। इन्हीं के द्वारा वह हमें हानि या लाभ पहुंचा सकता है। सूर्य तप रहा है। उसकी उष्णता में यदि कई व्यक्ति एक साथ खड़े हो जाते हैं तो एक समान उष्णता देने पर भी उसका प्रभाव भिन्न-भिन्न पड़ेगा। यह व्यक्ति की शारीरिक क्षमता और सहनशक्ति पर निर्भर करेगा कि वह कहाँ तक तपन का मुकाबला कर सकता है। हो सकता है कि क्षीण या कृशकाय व्यक्ति ताप को सहन न करते हुए गिर पड़े, बेहोश हो जाये। दूसरा व्यक्ति कसमसा कर रह जाय। तीसरा व्यक्ति शान्तचित्त खड़ा रहे। सूर्य की तपन एक जैसी पर तीनों पर प्रभाव अलग-अलग।

एक अन्य उदाहरण-खेत पर काम करने वाला व्यक्ति सारा दिन धूप में खेत में काम करता रहता है, उसे कुछ नहीं होता। इसके विपरीत दफ्तर में काम करने वाले व्यक्ति को धूप में खड़ा कर दिया जाये तो वह निढाल हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जायेगा। उसके लिये धूप में खड़ा होना कठिन ही नहीं, असम्भव हो जायेगा।

यह है सूर्य का प्रभाव। चन्द्रमा शीतलता प्रदान करता है। वह व्यक्तियों को शीतलता के द्वारा प्रभावित करेगा। इसी प्रकार अन्य ग्रहों की स्थिति भी जाननी चाहिये।

ये समस्त ग्रह पृथिवी से इतनी दूर हैं कि वे चेतन जीव के सदृश किसी भी प्रकार का प्रभाव मनुष्य पर नहीं डाल सकते।

इन ग्रहों में जो अचेतन गुण हैं, उनसे ही ये प्रभावित करते हैं। यथा-सूर्य चन्द्र में आकर्षण शक्ति है, जिसके कारण समुद्र में ज्वारभाटा आता है। जो समीपवर्ती जनजीवन को प्रभावित करता है।

यह है निर्जीव ग्रहों के प्रभाव! जैसे मनुष्य में निर्दयता, क्रूरता, पाप, अत्याचार, अमानुषिकता के विचार होते हैं, वैसे ग्रहों में नहीं होते। वे हर्ष, शोक, ईर्ष्या, द्वेष, सुख, दुःख आदि का अनुभव नहीं करते। यथा- मंगल, शनि, सूर्यादि क्रूर ग्रहों की पूजा की, दान-पुण्य किया और वे प्रसन्न हो गये।

वस्तुतः इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, हर्ष, शोक, निमेष, उन्मेष, चेष्टा आदि ये जीव के गुण हैं। उन ग्रहों में यह चेतना नहीं, जिससे वे किसी पर तो प्रसन्न हो जायें अथवा किसी को पीड़ित करने लगें।

एक बात और मनुष्यों ने उनका क्या बिगाड़ा है, जो वे उन्हें पीड़ा देंगे? अथवा अन्य किसी ने उनका क्या उपकार कर दिया, जो वे उनसे प्रसन्न हो जायेंगे।

मंगल, सूर्यादि ग्रह अपनी-अपनी गति के अनुसार कार्य कर रहे हैं। उन्हें प्रेरित नहीं करना पड़ता। वे किसी के प्रति क्रूर और किसी के प्रति उदार नहीं होते। अतः विवाह में वे मंगलीक वर-कन्या पर अपना कोई प्रभाव नहीं डाल सकते। वस्तुतः इन ग्रहों का वर-कन्या के विवाह से कुछ लेना-देना नहीं। न ही इनका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी प्रकार का सम्बन्ध है। यह तो ज्योतिषियों के द्वारा फ़ैलाया गया एक ऐसा मकड़जाल है, जिसमें फंस गए तो फंसते चले गये। वे चाहते भी ऐसा ही हैं। इसी में उनकी पौ बारह है, चांदी ही चांदी है। चित है तो उनकी, पट है तो उनकी। मंगलीक या अन्य ग्रह-गृहीत व्यक्ति की स्थिति वही होती है कि आकाश में गिरे और खजूर पर अटके। मंगल से निकले तो सूर्य के चक्कर में फंस गये या शनि की चपेट में आ गये। कोई न कोई ग्रह अपनी क्रूरता दिखाएगा ही। जैसा डॉक्टर के चुंगल से निकलना मुश्किल है, वैसे ही ज्योतिषी के जाल से मुक्त होना असम्भव है।

यदि हम गम्भीरता पूर्वक विचार करें या चारों ओर नजर दौड़ाएं तो प्रतीत होता है कि इन ग्रहों के चक्कर में जितने अशिक्षित फंसे हैं, उससे कहीं अधिक शिक्षितजन जकड़े हुए हैं। विज्ञान के ज्ञाता बुद्धिजीवी भी इनके विचार के समय बुद्धि पर ताला लगा लेते हैं। बिना सोचे समझे इन अशिक्षित, अर्धशिक्षित ज्योतिषियों के जाल में फंस जाते हैं। ऐसे आंख के अन्धे और गांठ के पूरे लोगों से ज्योतिषी खूब धन ऐंठते हैं और वे प्रसन्नतापूर्वक देते चले जाते हैं। आँखें तब खुलती है, जब सब कुछ लुटा चुके होते हैं।

ग्रह, नक्षत्रों से सम्बन्धित होने के कारण अष्टकूट-वर्ण, वश्य, तारा, योनि, ग्रहमैत्री,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गणमैत्री, भकूट और नाड़ी का फल भी मंगल आदि ग्रहों के सदृश जानना चाहिये अर्थात् इनके मेल मिलाप आदि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अनेक लोगों ने बहुत अच्छी तरह विद्वान् ज्योतिषियों से मिलान करवाकर वर-कन्या के विवाह किये फिर भी उनके विवाह सफल नहीं हुए या दुर्घटनाएं हो गईं, वर मर गया अथवा कन्या दिवंगत हो गयी या दोनों ही मर गये, तलाक हो गया अथवा बिना तलाक ही पृथक्-पृथक् रहते रहे। इस सम्बन्ध में जब ज्योतिषी जी से पुनः पूछा जाता है कि आपने तो बहुत विचार करके मिलान किया था फिर ऐसा क्यों हो गया? तो उत्तर मिलता है- 'परमात्मा के आगे किसी का वश नहीं।'

देखा आपने, ज्योतिषी जी साफ बच निकले। दुष्परिणाम परमात्मा के सिर मढ़ दिया। यदि अच्छा परिणाम होता तो कहते-''देखो हमारी ज्योतिष! कैसा उत्तम फल देती है? सफलता मिलती है, कार्य सिद्ध होते हैं, भविष्यवाणी अचूक होती है। अतः ऐसे अष्टकूट और मंगलीक् दोषों के भ्रमजाल में नहीं पड़ना चाहिये।

ग्रहफल पर महर्षि दयानन्द की सम्मति-

महर्षि दयानन्द अंक, बीज एवं ज्यमितीय गणित ज्योतिष् पर विश्वास करते हैं, फलित ज्योतिष् पर नहीं। वस्तुतः फलित ज्योतिष् बहुत ही अर्वाचीन है और फल की घोषणा अनुमान पर अधिक आधारित है। इसकी घोषणाएं अंक गणित के समान अक्षरशः सत्य सिद्ध नहीं होतीं। इसलिये ऋषि ने फलित ज्योतिष् के ग्रन्थों के पठन-पाठन का निषेध किया है।

सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय समुल्लास में वे लिखते हैं-

''और जब किसी ग्रहग्रस्त, ज्योतिर्विदाभास के पास जाकर वे कहते हैं 'हे महाराज! इसको क्या है?' तब वे कहते हैं कि इस पर सूर्यादि क्रूर ग्रह चढ़े हैं। जो तुम इसकी शान्ति, पाठ, पूजा, दान कराओ तो इसको सुख हो जाये, नहीं तो बहुत पीड़ित हो और मर भी जाये तो आश्चर्य नहीं।' उत्तर-कहिए ज्योतिर्वित्! जैसी यह पृथिवी जड़ है वैसे ही सूर्यादि लोक हैं। वे ताप, ऊर्जा और प्रकाश आदि से भिन्न कुछ भी नहीं कर सकते। क्या ये चेतन हैं जो क्रोधित हो के दुःख और शान्त होके सुख दे सकें?'

जन्मपत्री के सम्बन्ध में महर्षि लिखते हैं- ''यह ग्रह तो बहुत अच्छे हैं परन्तु ये ग्रह क्रूर हैं। अर्थात् फलाने फलाने ग्रह के योग से आठ वर्ष में उसका मृत्युयोग है। इसको सुनके माता-पितादि पुत्र के जन्म के आनन्द को छोड़ के, शोक-सागर में डूबकर ज्योतिषी जी से कहते हैं कि ''महाराज जी! अब हम क्या करें? तब ज्योतिषी जी कहते हैं-''उपाय करो।'' गृहस्थ पूछे-'क्या उपाय करें?', ज्योतिषी जी प्रस्ताव करने लगते हैं कि 'ऐसा ऐसा दान करो। ग्रह के मन्त्र का जाप कराओ और नित्य ब्राह्मणों को भोजन कराओगे तो अनुमान है कि नवग्रहों के विघ्न हट जाएं। अनुमान शब्द इसलिये कि जो मर जायेगा तो कहेंगे हम क्या करें, परमेश्वर के ऊपर कोई नहीं है, हमने तो बहुत सा यत्न किया और तुमने कराया, उसके कर्म ही ऐसे थे। और जो बच जाये तो कहते हैं कि 'देखो, हमारे मन्त्र, देवता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और ब्राह्मणों की कैसी शक्ति है। तुम्हारे लड़के को बचा दिया। यहाँ पर यह बात होनी चाहिये कि जो इनके जपपाठ से कुछ न हो तो दूने, तिगुने रुपये इन धूर्तों से ले लेने चाहिए। और बच जाये तो भी ले लेने चाहिये क्योंकि जैसा ज्योतिषियों ने कहा कि 'इसके कर्म और परमेश्वर के नियम तोड़ने का सामर्थ्य किसी में नहीं? वैसे गृहस्थ भी कहें कि 'यह अपने कर्म और परमेश्वर के नियम से बचा है, तुम्हारे करने से नहीं।'

प्रश्न-तो क्या ज्योतिःशास्त्र झूठा है?

उत्तर-नहीं, जो उसमें अंक, बीज, रेखागणित विद्या है, वह सब सच्ची, जो फल की लीला है, वह सब झूठी है।''

तृतीय समुल्लास में महर्षि दयानन्द पठनीय शास्त्रों के अन्तर्गत ज्योतिष् शास्त्र सूर्यसिद्धान्तादि जिसमें बीजगणित, अंक, भूगोल, खगोल और भूगर्भ विद्या है, इसको यथावत् सीखें। परन्तु जितने ग्रह, नक्षत्र, जन्मपत्र, राशि, मुहूर्त आदि फल विधायक गन्थ हैं, उनको झूठ समझ के कभी न पढ़ें और न पढ़ावें।

परित्याग योग्य ग्रन्थों में ज्योतिष् में शीघ्र बोध, मुहूर्त चिन्तामणि आदि (ग्रन्थ जानना चाहिये)।''

एकादश समुल्लास में महर्षि दयानन्द लिखते हैं-

प्रश्न-ग्रहों का फल होता है वा नहीं?

उत्तर-जैसा पोपलीला का है वैसा नहीं। किन्तु जैसा सूर्य, चन्द्रमा का किरण द्वारा उष्णता, शीतता अथवा ऋतुकालचक्र के सम्बन्धमात्र से अपनी प्रकृति के अनुकूल-प्रतिकूल सुख-दुःख के निमित्त होते हैं परन्तु जो पोपलीला वाले कहते हैं ''सुनो, महाराज सेठ जी! यजमानो! तुम्हारे आज आठवां चन्द्र सूर्य आदि क्रूर घर में आया है। तुमको बड़ा विघ्न होगा। घर द्वार छुडाकर प्रदेश में घुमावेगा। परन्तु जो तुम ग्रहों का दान, जप, पाठ, पूजा कराओगे तो दुःख से बचोगे।'' इनसे कहना चाहिये कि सुनो पोपजी! तुम्हारे और ग्रहों का क्या सम्बन्ध है? ग्रह क्या वस्तु है?

इसकी टिप्पणी में पं० भगवद्दत्त जी लिखते हैं-

ग्रह शुभाशुभ के कारण नहीं। वे निवेदक मात्र हैं। ऐसा महाभारत, अनुशासन पर्व, अध्याय २२५ में महेश्वर का मत है-**केवलं ग्रहनक्षत्रं न करोति शुभाशुभम्। सर्वात्मकृतं कर्म लोकवादी ग्रहाः इति॥** अर्थात् अपने ही कर्म सब फल है। संसार भूल से कहता है, यह ग्रहों का फल है।

आगे महर्षि लिखते हैं-

तुमको दान देने से प्रसन्न और न देने से अप्रसन्न होते हों तो सूर्यादि ग्रहों की प्रसन्नता अप्रसन्नता प्रत्यक्ष दिखलाओ। जिसको आठवां सूर्य, चन्द्र और दूसरे को तीसरा हो, दोनों को ज्येष्ठ महीने में बिना जूते पहने तपी भूमि पर चलाओ। जिस पर प्रसन्न हैं उनके पग, शरीर न जलने और जिस पर क्रोधित हैं उनके जल जाने चाहिए। तथा पौष मास में दोनों को नंगे कर पौर्णमासी की रात्रि भर मैदान में रखें। एक को शीत लगे दूसरे को नहीं तो जानो कि ग्रह क्रूर और सौम्य दृष्टि वाले होते हैं।

सच तो यह है कि सूर्यादि लोक जड़ हैं, वे न किसी को सुख और न दुःख देने की चेष्टा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर सकते हैं। किन्तु जितने तुम ग्रहदानोपजीवी हो वे सब तुम ग्रहों की मूर्तियाँ हो। क्योंकि ग्रह शब्द का अर्थ भी तुममें ही घटित होता है। **'ये गृह्णन्ति ते ग्रहाः'** जो ग्रहण करते हैं, उनका नाम ग्रह है। जब तक तुम्हारे चरण राजा, रईस, सेठ, साहूकार और दरिद्र के पास नहीं पहुंचते, तब तक किसी को नवग्रह का स्मरण भी नहीं होता। जब तुम साक्षात् सूर्य, शनैश्चरादि मूर्तिमान् क्रूर रूप धर उन पर जा चढ़ते हो तब बिना ग्रहण उनको कभी नहीं छोड़ते।

बहुत से ज्योतिषी लोग अपने लड़के-लड़की का विवाह ग्रहों की गणित विद्या के अनुसार करते हैं पुनः उनमें विरोध वा विधवा अथवा मृतस्त्रीक पुरुष हो जाता है। जो फल सच्चा होता तो ऐसा क्यों होता? **इसलिये कर्म गति सच्ची और ग्रहों की गति, सुख-दुःख भोग में कारण नहीं।** भला ग्रह आकाश में और पृथिवी भी आकाश में बहुत दूर पर है। इनका सम्बन्ध कर्त्ता और कर्मों के साथ साक्षात् नहीं। ...जो तुम ग्रहों का फल मानों तो इसका उत्तर देओ कि जिस क्षण में एक मनुष्य का जन्म होता है जिसको तुम ध्रुवात्रुटि मानकर जन्मपत्र बनाते हो उसी समय भूगोल पर दूसरे का जन्म होता है वा नहीं? जो कहो कि नहीं तो झूठ, और जो कहो कि होता है तो एक चक्रवर्ती के सदृश भूगोल में दूसरा चक्रवर्ती राजा क्यों नहीं होता? हां, इतना तुम कह सकते हो कि यह लीला हमारे उदर भरने की है, तो कोई मान भी लेवे।

'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में 'ग्रन्थप्रामाण्याप्रमाण्यविषयः' के अन्तर्गत 'ग्रहपूजायाः मिथ्यात्वम्' में महर्षि दयानन्द लिखते हैं-

"इसी प्रकार अल्पबुद्धि मनुष्यों ने 'आकृष्णेन रजसा॰' इत्यादि मन्त्रों का सूर्यादि ग्रहपीड़ा की शान्ति के लिये ग्रहण किया है। सो उनको केवल भ्रममात्र हुआ है। मूल अर्थ से कुछ सम्बन्ध नहीं। क्योंकि उन मन्त्रों में ग्रहपीड़ा निवारण करना, यह ही नहीं है।

मंगल ग्रह का मन्त्र इस प्रकार है-

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽअयम् । अपाꣳरेताꣳसि जिन्वति ॥ यजु०३.१२॥

यह जो अग्नि संज्ञक परमेश्वर वा भौतिक है, वह प्रकाश वाले और प्रकाशरहित लोकों का पालन करने वाला तथा सब पर विराजमान, और दिशाओं के मध्य में अपनी व्यापकता से सब पदार्थों का राजा है। वही जगदीश्वर प्राण और जलों के वीर्यों को पुष्ट करता है। इस प्रकार भूताग्नि भी विद्युत् और सूर्य रूप से पूर्वोक्त पदार्थों का पालन और पुष्टि करने वाला है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि पौराणिकों ने मन्त्र को जो मंगल ग्रह के साथ जोड़ा है सो उचित नहीं है क्योंकि इसमें मंगलग्रह का वर्णन है ही नहीं। अतः मंगल शान्ति के लिये इसके पाठ में औचित्य नहीं।

मंगलीक योग में क्योंकि मंगलग्रह की ही प्रधानता होती है। अतः उसका फल भी सूर्यादि ग्रहों के समान निरर्थक ही जानना चाहिये। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने ग्रहों का फल ऊपर स्पष्ट कर ही दिया है। अतएव उसके विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं रह जाती। मंगल भी सूर्यादि की तरह निर्जीव ही है। इसलिये उसका फल या प्रभाव कुछ भी नहीं होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर-कन्या के मेलापक गुण-

पौराणिक मत के अनुसार मंगलीक योग के साथ ही अष्टकूट गुणों पर विचार किया जाता है। इन अष्टकूट गुणों को ही मेलापक गुण भी कहते हैं। विवाह के समय इन्हीं गुणों का मिलान किया जाता है। इनका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

परन्तु महर्षि दयानन्द सरस्वती ने मनु महाराज द्वारा रचित **मनुस्मृति** के उद्धरण प्रस्तुत करके वर-कन्या के मेलापक गुणों का विस्तृत वर्णन किया है जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण, ग्राह्य, विचारणीय एवं व्यावहारिक है। वस्तुतः वर-कन्या में इन्हीं गुणों का मिलान करना चाहिये न कि मंगलीक और अष्टकूट गुणों का।

महर्षि दयानन्द सरस्वती **सत्यार्थप्रकाश** के चतुर्थ समुल्लास तथा **संस्कारविधि** के विवाह संस्कार में लिखते हैं-

गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृतो यथाविधिः उद्वहेत् द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्॥ मनु०३.४

गुरु की आज्ञा से स्नान कर गुरुकुल से अनुक्रम पूर्वक आकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने वर्ण के अनुकूल सुन्दर लक्षणयुक्त कन्या से विवाह करे।

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः। सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने॥ ३.५

जो कन्या माता के कुल की छह पीढ़ियों में न हो और पिता के गोत्र की न हो, उस कन्या से विवाह करना उचित है-

महान्त्यपि समृद्धानि गोऽजाविधनधान्यतः। स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत्॥ मनु०३.६

चाहे कितने ही धन-धान्य, गाय, अजा, हाथी, घोड़े, राज्य, श्री आदि से समृद्ध कुल हों तो भी विवाह सम्बन्ध में निम्नलिखित दश कुलों का त्याग कर दे-

हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम्। क्षय्यामयाव्यपस्मारि श्वित्रिकुष्ठिकुलानि च॥ मनु०३.७

जो कुल सत्क्रिया से हीन, सत्पुरुषों से रहित, वेदाध्ययन से विमुख, शरीर पर बड़े-बड़े लोम अथवा बवासीर, क्षयी, दमा, खांसी, आमाशय, मिरगी, श्वेतकुष्ठ और गलितकुष्ठयुक्त कुलों की कन्या वा वर के साथ विवाह नहीं होना चाहिये, क्योंकि ये सब दुर्गुण और रोग विवाह करने वाले के कुल में भी प्रविष्ट हो जाते हैं। इसलिये उत्तम कुल के लड़के और लड़कियों का आपस में विवाह होना उचित है।

नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम्। नालोमिकां नातिलोमिकां न वाचाटां न पिंगलाम्॥ मनु०३.८

न पीले वर्ण वाली, न अधिकांगी अर्थात् पुरुष से अधिक लम्बी, चौड़ी, अधिक बलशाली, न रोगयुक्ता, न लोमरहित, न बहुत लोम वाली, न बकवाद करने हारी और न भूरे नेत्र वाली कन्या से विवाह करे।

नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम्। न पक्ष्यहि प्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम्॥ मनु०३.९

ऋक्ष अर्थात् अश्विनी, भरणी, रोहिणी देई, रेवती बाई, चित्तरी आदि नक्षत्र नामवाली, तुलसिया, गेंदा, गुलाबी, चम्पा, चमेली वृक्ष नामवाली, गंगा, यमुना आदि नदी नाम वाली,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाण्डाली आदि अन्त्य (नीच) नामवाली, विन्ध्या, हिमालया, पार्वती आदि पर्वत नाम वाली, कोकिला, मैना आदि पक्षीनाम वाली, नागी, भुजंगी आदि सर्पनाम वाली, माधोदासी, मीरादासी आदि प्रेष्य नाम वाली, कुंवरी, चण्डिका, काली आदि भीषण नाम वाली कन्या के साथ विवाह न करना चाहिये। क्योंकि ये नाम कुत्सित और अन्य पदार्थों के भी हैं।

अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम्। तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत् स्त्रियम्।। मनु०३.१०

जिसके सरल, सूधे अंगे हों, विरुद्ध न हों, जिसका नाम सुन्दर अर्थात् यशोदा, सुखदा आदि हो, हंस और हस्तिनी के तुल्य जिसकी चाल हो, सूक्ष्म लोम, केश और दांत युक्त, जिसके सब अंग कोमल हों, वैसी स्त्री के साथ विवाह करना चाहिये।

काममामरणात्तिष्ठेत् गृहे कन्यर्तुमत्यपि। न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्।।

मनु०९.८९

चाहे लड़का-लड़की मरणपर्यन्त कुमारे रहें, परन्तु असदृश अर्थात् परस्पर विरुद्ध गुण, कर्म, स्वभाव वालों का विवाह कभी न होना चाहिये।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने भी इस विषय पर अत्यन्त गम्भीरता पूर्वक विचार किया है-

अविप्लुत-ब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत्। अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम्।।

याज्ञ०आ०५२

ब्रह्मचर्य से च्युत न होकर शुभ लक्षणों से युक्त स्त्री से विवाह करे, जो पहले किसी अन्य पुरुष को प्रदत्त या किसी द्वारा भुक्त न हो। सुन्दरी हो, असपिण्ड हो तथा (आयु एवं शरीर प्रमाण में) अपने से छोटी हो।

असपिण्ड किसे कहते हैं-**असपिण्डा समानः एकः पिण्डो देहो यस्याः सा सपिण्डा, न सपिण्डा असपिण्डा** अर्थात् समान पिण्ड=शरीर है जिसका वह सपिण्ड है, जो सपिण्ड न हो, वह असपिण्ड है।

अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम्।।

याज्ञ०आ०५३

असाध्य रोग से अछूती हो, भाई वाली हो और समान गोत्र तथा प्रवर वाली न हो।

केवल कन्या ही नहीं वर भी श्रेष्ठ गुण युक्त होना चाहिये-

एतैरेव गुणैर्युक्तः सवर्णः श्रोत्रियो वरः। यत्नात्परीक्षितः पुंस्त्वे युवा धीमान्जनप्रियः।।

याज्ञ०आ०५५

वर भी इन्हीं पूर्वोक्त गुणों से युक्त सवर्ण और विद्वान् होना चाहिये। उसके पुरुषत्व की यत्नपूर्वक परीक्षा की गयी हो और वह युवक विवेकशील एवं प्रिय हो।

विष्णुस्मृति का कथन है-

अनेनैव विधानेन कुर्याद् दारपरिग्रहम्। कुले महति सम्भूतां सवर्णां लक्षणान्विताम्।।

याज्ञ०आ०१.२६

शास्त्रविधि के अनुसार स्त्री का पाणिग्रहण करे। उच्च कुल में उत्पन्न हुई सजातीय सुलक्षणा स्त्री के साथ विवाह करे।

व्यासस्मृति में भी इन्हीं विचारों का समर्थन किया गया है-

अरोगादुष्टवंशोत्थानशुल्कदानदूषिताम्।
सवर्णामसमानार्षाममातृपितृगोत्रजाम्।।
अनन्यपूर्विकां लघ्वीं शुभलक्षणसंयुताम्।।

२.२,३।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस कन्या को कोई रोग न हो और वंश भी उत्तम हो, जिस का पिता कुछ रुपया न ले, जो अपने वर्ण की हो और माता-पिता के गोत्र की न हो। पहले जिसका विवाह न हुआ हो, छोटी व पतली हो, शुभ लक्षणों से युक्त हो। उसके साथ विवाह करे।

उल्लिखित प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि इन्हीं गुणों का वर-कन्या के विवाह के समय विचार करना चाहिये। मंगल, शनि, सूर्यादि ग्रहों तथा अष्टकूट गुणों का नहीं। यही वैज्ञानिक दृष्टिकोण है, जो सभी को स्वीकार्य होना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotiḥ
ISSN 2277-4351
Vol.1, No.2 (25-35) Jan-jun 2013

ऋग्वेद के प्रमुख पुरुष व्यत्ययों की समीक्षा

रामनाथ वेदालंकार (राष्ट्रपति-पुरस्कृत)

वेद मन्दिर, ज्वालापुर (हरिद्वार)

यदि हमारा कोई छात्र '**सः असि**' लिखता है, तो हम उसे समझाते हैं कि '**सः**' के साथ '**अस्ति**' आता है, '**असि**' '**त्वम्**' के साथ होता है। भलीभाँति याद कर लो इस तालिका को-'**सः अस्ति**', **तौ स्तः**, **ते सन्ति**' प्रथम पुरुष, '**त्वम् असि, युवां स्थः, यूयं स्थ**' मध्यम पुरुष, '**अहम् अस्मि, आवां स्वः, वयं स्मः**' उत्तम पुरुष। फिर भी यदि छात्र '**सः असि**' लिखता है, तो वह भर्त्सना या दण्ड का पात्र होता है। किन्तु वेद तो युग-युगों से '**सः असि**' लिख रहा है और युग-युगों से प्रतिष्ठा पा रहा है।

स हि...असि सत्यः। ऋग्०१.८७.४, **स हि स खलु मरुद्गणः...प्राविता असि प्रकर्षेण रक्षिता भवति। असि**, पुरुषव्यत्ययः सायण।

सायणाचार्य ने इस प्रयोग को पुरुषव्यत्यय का प्रमाणपत्र दिया है। किन्तु व्यत्यय का अर्थ है नियम का व्यतिक्रम, अतः व्यत्यय कहने से गलती का परिहार नहीं होता। हम यह सिद्ध करेंगे कि न इस प्रयोग में पुरुष-व्यत्यय है, न ही इस जैसे अन्य बीसियों प्रयोगों में पुरुष-व्यत्यय है।

वेदों में कई मन्त्र ऐसे हैं, जो '**स त्वं**' से प्रारम्भ होते हैं तथा जिसमें क्रियापद मध्यम पुरुष का है। यथा-

स त्वमस्मदप द्विषो युयोधि जातवेदः।
ऋग्०८.११.३

स त्वं न ऊर्जां पते रयिं रास्व सुवीर्यम्।
ऋग्०८.२३.१२

स त्वं विप्राय दाशुषे रयिं देहि सहस्रिणम्।। ऋग्०८.४३.१५

स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोति। यजु०२१.४

'**सः**' के साथ '**त्वम्**' लगाने से '**त्वम्**' प्रधान होता है, अतः इन मन्त्रों में '**त्वम्**' के अनुसार मध्यम पुरुष एकवचन का क्रियापद है, जो व्याकरण के अनुकूल है। अतः यहाँ व्यत्यय का कोई अवकाश नहीं है।

इसी की तुलना में कुछ मन्त्र ऐसे भी हैं, जो '**सः**' से प्रारम्भ होते हैं, जिनके साथ '**त्वम्**' नहीं है, तथापि जिसमें क्रियापद मध्यम पुरुष एकवचन का है। सायणप्रभृति भाष्यकारों ने इसमें व्यत्यय नहीं माना, प्रत्युत '**त्वम्**' अध्याहार कर लिया है। यथा-

स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि।
ऋग्०१.७.६

स नो बोधि श्रुधी हवम्।। ऋग्०५.२४.३

स नो राधांस्या भरेशानः सहसो यहो।।
ऋग्०७.१५.११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स नो विश्वान्या भर सुवितानि शतक्रतो॥

ऋग्०८.९३.२९

स नो अर्ष पवित्र आ॥ ऋग्०९.६४.१२

स जातो गर्भो असि रोदस्योः।

ऋग्०१०.१.२

इन मन्त्रों में 'सः' के साथ मध्यमपुरुष एकवचन का क्रियापद होने पर भी 'त्वम्' का अध्याहार होने के कारण यदि व्यत्यय नहीं है, तो प्रारम्भ में उद्धृत 'सः हि..असि सत्यः' ऋग्०१.८७.४॥ मन्त्र में भी 'त्वम्' का अध्याहार करके कार्यनिर्वाह हो सकता है, वहां भी सायणप्रोक्त पुरुषव्यत्यय अनावश्यक है।

अब हम बड़ी संख्या में वेदों के ऐसे उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं, जिनमें क्रिया के कर्त्ता 'त्वम्' से भिन्न सुकीर्ति, अग्नि आदि हैं, किन्तु क्रियापद मध्यम पुरुष एकवचन का है और सायण तथा उससे पूर्ववर्ती एवं परवर्ती भाष्यकारों ने जिनके भाष्य में पुरुषव्यत्यय लिखा है-

अस्मत् सुकीर्तिर्मधुजिह्वमश्याः।[१]

(ऋग्०१.६०.३)

अग्निर्देवत्वा विश्वान्यश्याः॥

(ऋग्०१.६९.६)

अग्निः सुशोको, विश्वान्यश्याः।

(ऋग्०१.७०.१)

आप्रा [२] द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्यः। (ऋग्०१.११५.१)

इयं धीर्भूया[३] अवयानमेषाम्॥

(ऋग्०१.१८५.८)

इयं सा वो अस्मे दीधितिर्यजत्रा अपिप्राणी च सदनी च भूयाः[४]।

(ऋग्०१.१८६.११)

श्रूया[५] अग्निश्चित्रभानुर्हवं मे॥

(ऋग्०२.१०.२)

सप्तिर्न रथ्यो अह धीतिमश्याः[६]॥

(ऋग्०२.३१.७)

परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः[७]।

(ऋग्०२.३३.१४)

नराशंसो ग्नास्पतिर्नो अव्याः[८]।

(ऋग्०२.३८.१०)

आस्य हविस्तन्व१ः काममृध्याः[९]॥

(ऋग्०३.५०.१)

समानमभि क्रत्वा पुनती धीतिरश्याः[१०]।

(ऋग्०४.५.७)

सा नः सुदानुर्मृळयन्ती देवी प्रति द्रवन्ती सुवितायं गम्याः[११]। (ऋग्०५.४१.१८)

गीर्मित्रं भगमदितिं नूनमश्याः[१२]।

(ऋग्०५.४२.१)

प्र सुष्टुतिः स्तनयन्तं रुवन्तमिळस्पतिं जरितर्नूनमश्याः[१३]॥ (ऋग्०५.४२.१४)

प्रैषः स्तोमः पृथिवीमन्तरिक्षं वनस्पतींरोषधी राये अश्याः[१४]॥

(ऋग्०५.४२.१६)

परि नो हेळो वरुणस्य वृज्याः[१५]।

(ऋग्०७.८४.२)

सोमः पुनानो अव्यये वारे शिशुर्न क्रीळन् पवमानो अक्षाः[१६]। (ऋग्०९.११०.१०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोपाशः सिंहं प्रत्यञ्चमत्साः[१७]।

(ऋग्०१०.२८.४)

भूया[१८] **ऋतस्य सुदुघा पुराणवत्।**

(ऋग्०१०.४३.९)

वृत्रहेन्द्रो नामान्यप्राः[१९]।

(ऋग्०१०.७४.६)

भूतांशो अश्विनोः काममप्राः[२०]।

(ऋग्०१०.१०६.११)

ओर्वप्रा अमर्त्या निवतो देव्युद्वतः। ज्योतिषा बाधते तमः[२१]॥ (ऋग्०१०.१२७.२)

विचार करने पर हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि इन सब स्थलों पर भी यदि 'त्वम्' का अध्याहार करके वाक्य को प्रत्यक्षकृत बना लिया जाये, तो बल अधिक आ जाता है और व्यत्यय मानने की भी आवश्यकता नहीं रहती। यथा-

सूर्यः त्वं द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम् आ अप्राः।

तुम सूर्य ने द्यावापृथिवी और अन्तरिक्ष को प्रकाश से आपूरित कर लिया है।

चित्रभानुः अग्नि त्वं मे हवं श्रूयाः।

चित्रभानु अग्नि तू मेरी पुकार को सुन।

ग्नास्पतिः नराशंसः त्वं नः अव्याः।

स्त्रियों का स्वामी नराशंस तू हमारी रक्षा कर।

गीः त्वं मित्रं भगम् अदितिं नूनम् अश्याः।

वाणी तू मित्र, भग और अदिति को निश्चय ही प्राप्त हो।

वरुणस्य हेळः त्वं नः परिवृज्याः।

वरुण का क्रोध तू हमें छोड़ दे।

स्वयं सायण ने इन मन्त्रों जैसे एक अन्य मन्त्र के भाष्य में 'त्वम्' अध्याहार करके पुरुष-व्यत्यय से छुटकारा पाया है, वह मन्त्र निम्नलिखित है-

अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य। अद्या स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह॥

ऋग्०७.१०४.१५

यहाँ तृतीय चरण में **'स वियूयात्'** के स्थान पर **'स वियूयाः'** प्रयोग में पुरुष-व्यत्यय कहना चाहिये था, किन्तु उससे बचने के लिये सायण ने **'त्वम्'** का अध्याहार कर लिया। मन्त्रार्थ यह बना-''यदि मैं यातुधान हूँ, अथवा यदि मैंने किसी पुरुष की आयु को संतप्त किया है, तो मैं आज ही मर जाऊं। अन्यथा वह तू दसों वीरपुत्रों से वियुक्त हो जा, जो मुझे व्यर्थ ही यातुधान कहता है।[२२]

कतिपय अन्य पुरुष व्यत्ययों पर विचार

१. निम्नलिखित मन्त्र का अर्थ है-'हे मनुष्यों' प्रकाशरहितों के लिये प्रकाश को करता हुआ और रूपहीनों के लिये रूप देता हुआ इन्द्र दाहक रश्मियों के साथ प्रकट हुआ है। क्रियापद **'अजायत'** के स्थान पर मध्यमपुरुष का **'अजायथाः'** रूप है, अतः पुरुष व्यत्यय है।

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः॥ ऋग्०१.६.३॥

समाधान-**'अजायथाः'** क्रियापद ही यह बता रहा है कि इस मन्त्र में इन्द्र को सम्बोधन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, तथा '**त्वम्**' पद अध्याहृत है। 'हे इन्द्र! तू प्रकट हुआ है' यह तात्पर्य है। '**मर्याः**' सम्बोधन पृथक् है, जिसकी वाक्ययोजना पृथक् होगी-हे मनुष्यो! इन्द्र के इस कौशल को देखो।[२३]

२. **अस्मा इदु प्रयं इव प्रयंसि भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति ।** ऋग्०१.६१.२। इस इन्द्र का (स्तोत्रगान करता हुआ मैं) मानो इसे अन्न दे रहा हूँ। यहाँ उत्तम पुरुष एकवचन '**प्रयच्छामि**' के स्थान पर मध्यम पुरुष एकवचन का '**प्रयंसि**' रूप प्रयुक्त होने के कारण पुरुष-व्यत्यय है।[२४]

समाधान-प्र पूर्वक यम धातु लेट् लकार, उत्तम पुरुष एकवचन का '**प्रयंसि**' रूप है। '**सिब्बहुलं** लेटि से सिप् का आगम हुआ है, इ उत्तमपुरुष एकवचन के इट् का है।

३. **तं वंध्नुराथां, वयं वंसुत्यास्तं न गावो, नक्षन्त इद्धम्।** ऋग्०१.६६.९॥ यहां '**वयं नक्षन्ते**' प्रयोग के कारण पुरुष-व्यत्यय है। हम चर और अचर आहुति के द्वार प्रदीप्त तुम अग्नि को प्राप्त होते हैं, जैसे गौएं घर को प्राप्त होती हैं।[२५]

समाधान-मन्त्र में '**वयं**' के साथ '**नक्षामहे**' का अध्याहार होता है। '**अस्तं न गावो नक्षन्ते**' यह उपमासूचक पृथक् वाक्य है। जैसे '**गावः**' के साथ '**नक्षन्ते**' है, वैसे ही '**वयं**' के साथ '**नक्षामहे**' स्वतः अध्याहृत हो जाता है।

४. **उत वा यस्यं वाजिनोऽनु विप्रमतंक्षत।**
स गन्ता गोमंति व्रजे॥

ऋग्०१.८६.३॥

इस मन्त्र में '**वाजिनः**' के साथ तक्ष धातु का बहुवचन का '**अतक्षन्**' रूप प्रयुक्त होना चाहिये था, उसके स्थान पर मध्यमपुरुष बहुवचन का '**अतक्षत**' रूप प्रयुक्त हुआ है, अतः पुरुष-व्यत्यय है। जिसके हविरूप अन्न से युक्त ऋत्विज् लोग (**वाजिनः**) मेधावी मरुदगण को (**विप्रं**), हविष्यप्रदानादि से तीक्ष्ण करते हैं, वह गोमान् व्रज को प्राप्त करता है।[२६]

समाधान-यहाँ '**वाजिनः**' के साथ '**यूयम्**' का अध्याहार होगा। '**वाजिनः यूयं विप्रम् अनु अतक्षत।**' यूयम् के साथ मध्यमपुरुष बहुवचन का प्रयोग व्याकरणसम्मत होने के कारण व्यत्यय नहीं है।

५. **यः सोम सुख्ये तवं रारणंद् देव मर्त्यः। तं दक्षः सचते कुविः॥** ऋग्०१.९१.१४॥

सायणकृत अर्थ है-हे द्योतमान सोम! जो यजमान तेरे सख्य के निमित्त इस स्तोत्र के द्वारा तेरी स्तुति करता है, उसे क्रान्तदर्शी और सर्वकार्यसमर्थ तू सेवता है। यहां '**त्वम्**' अध्याहृत मानकर '**त्वं सचते**' से '**सचसे**' मध्यमपुरुष एकवचन के स्थान पर प्रथमपुरुष एकवचन '**सचते**' का प्रयोग होने के कारण पुरुष-व्यत्यय माना है।[२७]

समाधान-यह सर्वथा अनावश्यक है। स्कन्द और वेंकटमाधव ने यहाँ व्यत्यय नहीं माना।[२८] स्कन्द अर्थ करते हैं कि हे सोमदेव! जो तेरे याग में अत्यन्त रमता है, उसे बल वा वृद्धि (दक्ष) प्राप्त होते हैं और वह मेधावी (कवि) हो जाता है। वेंकटमाधव योजना करते हैं-हे देव सोम! जो मनुष्य तेरे सख्य में रमता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, उसकी स्मृति के लिये समर्थ स्तोता (दक्षः कविः) उसका सेवन करता है।[२९]

६. **यं तें काव्य उशना मन्दिनं दाद् वृत्रहणं पार्यं ततक्ष वज्रम्॥** ऋग्०१.१२१.१२॥ हे इन्द्र! कवि के पुत्र उशना ने जिस मदकर वज्र को तुझे दिया था, उसे तूने वृत्रों का वध करने वाला और शत्रुओं को पार लगाने में समर्थ कर दिया है। यहाँ '**त्वं तं वज्रं वृत्रहणं पार्यं च ततक्ष**' यह योजना सायण ने की है। उसका कथन है कि '**ततक्ष**' रूप तो तक्ष धातु का प्रथम पुरुष के एकवचन में बनता है। '**त्वं**' के साथ तो '**ततक्षिथ**' या '**ततष्ठ**' होना चाहिये था, अतः पुरुष-व्यत्यय है।[३०] स्कन्दस्वामी ने '**ततक्ष**' को लोडर्थ में मध्यमपुरुष एकवचन के स्थान पर प्रथमपुरुष एकवचन का लिट् का रूप मानकर अर्थ करते हैं। 'उस वज्र को तू हमारे शत्रुओं के वधार्थ संस्कृत कर।'[३१]

समाधान-वस्तुतः यहाँ '**ततक्ष**' जहाँ का रूप है, उसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। 'काव्य उशना ने जिस वज्र को वृत्रघाती और शत्रुओं को पार लगाने में समर्थ बनाया (**ततक्ष**), और उस मदकर वज्र को तुझे दिया (दात्) (उस वज्र से तू शत्रुसंहार कर)''-यह तात्पर्य बिना व्यत्यय के निकल रहा है। वेंकट माधव ने यही योजना की है।[३२]

७. **आदस्य ते कृष्णासो दक्षि सूरयः।** ऋग्०१.१४१.८॥ अग्नि देवता है। पूर्वार्ध में अग्नि को कहा गया है कि तू ज्वाला रूप लाल अंगों से आकाश की ओर उठता है अर्थात् तेरी ऊँची-ऊँची ज्वालाएं हो जाती हैं। उस अर्ध के उद्धृत मन्त्रांश का अर्थ है-इसके अनन्तर तेरे मार्ग काले हो जाते हैं, क्योंकि अग्नि जलाता है। यहां '**दहति**' के स्थान पर सिप् का छान्दस् रूप '**दक्षि**' प्रयुक्त है, अतः सायण के मतानुसार पुरुष व्यत्यय है।[३३]

समाधान- तेरे मार्ग काले हो जाते हैं, क्योंकि तू काष्ठों को जलाता है- '**यतस्त्वं काष्ठानि दक्षि दहसि**' इस सीधी अर्थ योजना को छोड़कर आपने जो टेढ़ी योजना की है, उसके लिये आपको क्या कहें?

८. **अग्निं दूतं प्रति यदब्रवीतनाश्वः कर्त्वो रथ उतेह कर्त्वः॥** ऋग्०१.१६१.३॥ सायण यह अर्थ करते हैं कि देवों ने दूतकर्मप्राप्त अग्नि को यह कहा था कि तुम्हें अश्व बनाना है, रथ बनाना है आदि। इस प्रकार वे '**अब्रुवन्**' के स्थान पर '**अब्रवीतन**' के प्रयोग को पुरुष-व्यत्यय मानते हैं।[३४]

समाधान-'हे देवाः! यूयम् अग्निं दूतं प्रति अब्रवीतन' यही वाक्य योजना समीचीन है, जिसमें व्यत्यय की आवश्यकता नहीं रहती। सायण ने स्वयं वैकल्पिक रूप में एक योजना प्रस्तुत की है, जिसमें व्यत्यय नहीं रहता।[३५]

९. **तमु स्तुष इन्द्रं तं गृणीषे।** ऋग्०२.२०.४॥ उसी इन्द्र की मैं स्तुति करता हूँ, उसी की गरिमा गाता हूँ। यहाँ उत्तम पुरुष के स्थान पर मध्यम पुरुष का प्रयोग होने से पुरुष-व्यत्यय है।[३६]

समाधान- '**स्तुषे**' और '**गृणीषे**' रूप यहाँ लेट् लकार उत्तमपुरुष एकवचन के ही हैं। '**सिब्बहुलं लेटि**' से सिप् हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०. **योऽवरे वृजने विश्वथा विभुर्महामु रण्व: शवसा ववक्षिथ।** ऋग्०२.२४.११॥ जो विभु रमयिता ब्रह्मणस्पति हीन बल वाले तथा महान् दोनों को अपने बल से वहन कर रहा है। यहाँ '**य:**' के साथ सन्नन्त वह धातु लिट् लकार के मध्यम पुरुष '**ववक्षिथ**' का प्रयोग होने से पुरुष-व्यत्यय है।[३७]

समाधान-यहाँ **य:** के साथ **त्वम्** का अध्याहार होने पर वाक्यरचना शुद्ध हो जाती है। वेंकट माधव ने ऐसा किया भी है।[३८]

११. **य ईं राजानावृतुथा विदधद् रजसो मित्रो वरुणश्चिकेतत्। गम्भीराय रक्षसे हेतिमस्य द्रोघाय चिद् वचस आनवाय॥**

ऋग्०६.६२.९॥

हे लोकों के राजा दोनों अश्वि-देवो! जो तुम दोनों की परिचर्या करता है, उसे मित्र और वरुण जान लेते हैं, अर्थात् उस पर कृपा करते हैं। वह गम्भीर राक्षस पर अपना शस्त्र फेंकता है। यहां '**अस्यति**' के स्थान पर '**अस्य**' प्रक्षेपणार्थक अस धातु लोट् लकार मध्यमपुरुष का प्रयोग होने से पुरुष-व्यत्यय है।[३९]

समाधान-मन्त्र का पूर्वार्द्ध परोक्षकृत है तथा उत्तरार्द्ध प्रत्यक्षकृत। उत्तरार्द्ध में अश्विनौ की परिचर्या करने वाले मनुष्य को कहा जा रहा है कि तू गम्भीर राक्षस के ऊपर शस्त्र फेंक। अत: व्यत्यय नहीं है।

१२. **इळेन्यं वो असुरं सुदक्षमन्तर्दूतं रोदसी सत्यवाचम्। मनुष्यवदग्निं मनुना समिद्धं समध्वराय सदमिन्महेम।**

सायण ने '**संमहेम**' का अर्थ '**संपूजयत**' किया है तथा मध्यमपुरुष के स्थान पर उत्तम पुरुष का व्यत्यय माना है। '**व:**' का अर्थ '**यूयम्**' किया है।[४०]

समाधान-'**व: ईळेन्यम्**' जो तुम सबका पूजनीय है, ऐसे अग्नि की तुम और हम मिलकर पूजा करें '**सं महेम**'। इस दिशा में '**संमहेम**' का अर्थ '**संपूजयत**' करने की आवश्यकता नहीं है।

१३. **तद् वो अद्य मनामहे सूक्तै: सूर उदिते। यदोहते वरुणो मित्रो अर्यमा यूयमृतस्य रथ्य:॥** ऋग्०७.६६.१२॥[४१]

आज सूर्य के उदित होने पर हम सूक्तों के साथ तुमसे उस धन की याचना करते हैं, जिसे वरुण, मित्र, अर्यमा तुम प्राप्त कराते हो। (ओहते=ओहध्वे)। अत: पुरुष-व्यत्यय है।

समाधान-व: अद्य तद् मनामहे याचामहे यद् वरुण: मित्र अर्यमा ओहते प्रापयति। वरुण, मित्र, अर्यमा प्रत्येक के साथ पृथक्-पृथक् 'ओहते' लगेगा। '**यूयम् ऋतस्य रथ्य**=तुम ऋत के रथी हो, यह समापन-वाक्य है। बिना व्यत्यय के भी तात्पर्य वही निकल आता है, जो व्यत्ययवादी को अभीष्ट है।

१४. **पुरुप्रिया ण ऊतये पुरुमन्द्रा पुरूवसू। स्तुषे कण्वासो अश्विना॥** ऋग्०८.५.४॥

बहुप्रिय, बहु आनन्दकर, बहुधनी अश्विनौ की कण्वगोत्री हम हमारी रक्षा के लिये स्तुति करते हैं। (स्तुषे=स्तुमहे)। यहाँ पुरुष और वचन दोनों का व्यत्यय है।[४२] सायण ने दूसरा विकल्प यह दिया है कि 'कण्वास:' में बहुवचन पूजार्थ है। हे मेरे अन्तरात्मन्! कण्वगोत्री तू अश्विनौ की **स्तुषे**=स्तुति कर। इसमें व्यत्यय नहीं मानना पड़ता।[४३]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाधान-यहाँ दो वाक्य बनेंगे, एक वाक्य **स्तुषे** क्रिया के अनुकूल और दूसरा **स्तुमहे** का अध्याहार करके। प्रथम वाक्य-हे भद्र! **त्वम् ऊतये पुरुप्रिया पुरुमन्द्रा पुरूवसू अश्विना स्तुषे= स्तुहि।** दूसरा वाक्य-**कण्वासः वयं नः ऊतये पुरुप्रिया पुरुमन्द्रा पुरूवसू अश्विना स्तुमहे।** वेद ने **स्तुमहे** के स्थान पर **स्तुषे** का प्रयोग किया हो, यह मानना समीचीन नहीं लगता।

१५. **प्रगायताभ्यर्चाम देवान्॥**

ऋग्०९.९७.४॥

'सोम का प्रकृष्टरूप से गान करो, हम देवों की अभ्यर्चना करें' इसमें समानवाक्यता न होने से **प्रगायताभ्यर्चत देवम्** होना चाहिये। **अभ्यर्चत** के स्थान पर **अभ्यर्चाम** होने के कारण पुरुष-व्यत्यय है।[८४]

समाधान-"आइये, सोम का गान करो, हम मिलकर देवों की अर्चना करें", इसमें कोई दोष नहीं है, अतः व्यत्यय नहीं है।

१६. **स्तोमं त इन्द्र विमदा अजीजनन्॥** ऋग्०१०.२३.६॥

हे इन्द्र! तेरे लिये विमदों ने स्तोम रचा है। मन्त्र के उतरार्ध में क्रियापद '**विमद**' और '**करामहे**' हैं, तदनुसार **विमदा वयम् अजीजना** होना चाहिये था। '**अजीजनाम** के स्थान पर '**अजीजनन्** होने से पुरुष-व्यत्यय है।[८५]

समाधान-यदि हम विमद हैं, तो विमदों ने ऐसा किया है, यह कह देने से यह सूचित हो जाता है कि यदि हमने ऐसा किया है, अतः कोई दोष नहीं है। समानवाक्यता होनी आवश्यक नहीं है, भिन्नवाक्यता भी देखी जाती है।

१७. **प्र सु वं आपो महिमानमुत्तमं कारुर्वोचाति सदने विवस्वतः॥ प्र सप्तसप्त त्रेधा हि चक्रमुः प्र सृत्वरीणामति सिन्धुरोजसा॥** ऋग्०१०.७५.१॥

हे नदियो! तुम्हारी उत्तम महिमा को कारु बोल रहा है, इसके स्थान पर मैं कारु बोल रहा हूं, यह कहना चाहिये था। '**वोचामि**' के स्थान पर '**वोचाति**' होने से पुरुष-व्यत्यय है।[८६]

समाधान-यह शैली लोक में भी है। यदि मैं कारु हूँ, तो मैं ऐसा कर रहा हूँ, इसके स्थान पर कारु ऐसा कर रहा है, यह प्रयोग कर सकता हूँ। अतः कोई दोष नहीं है, न पुरुष-व्यत्यय है।

१८. **स ब्राधतः शवसानेभिरस्य कुत्साय शुष्णं कृपणे परादात्॥** ऋग्०१०.९९.९॥

वह इन्द्र महान् भी शत्रुओं को बल का प्रदर्शन करने वाले आयुधों से प्रक्षिप्त कर दे। असु,क्षेपणे, **अस्य=अस्यतु**। प्रथमपुरुष के स्थान पर मध्यम पुरुष का प्रयोग होने के कारण पुरुष-व्यत्यय है।[८७]

समाधान- '**त्वम्**' का अध्याहार कर लेने पर वाक्य रचना निर्दोष हो जाती है-'**स त्वम् अस्य=प्रक्षिप।**' वह तू इन्द्र शत्रुओं को प्रक्षिप्त कर।

१९. **अयं दंशस्यन् नर्येभिरस्य।**

ऋग्०१०.९९.१०॥

यह इन्द्र स्तोताओं को धन देना चाहता हुआ नरहितकारी मरुतों के दूसरे शत्रुओं को प्रक्षिप्त करता है। **अस्य=अस्यति**, असु क्षेपणे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यत्यय से लट् लकार प्रथम पुरुष के स्थान पर लोट् लकार मध्यम पुरुष होने से पुरुष-व्यत्यय है।[८८]

समाधान-यहां भी पूर्ववत् **'त्वम्'** का अध्याहार कर लेने पर व्यत्यय की आवश्यकता नहीं रहती। **अयं त्वम् नर्येभिः अस्य**-हे इन्द्र! यह तू मरुतों के द्वारा शत्रुओं को प्रक्षिप्त कर।

२०. **इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः।** ऋग्०१०.१५७.१॥

सायण ने सीषधाम-पर्यन्त प्रथम पुरुष वाक्य की दो अर्थयोजनाएं की हैं, प्रथम में व्यत्यय नहीं माना, दूसरी में व्यत्यय माना है। १. हम इन प्रदृश्यमान भुवनों को शीघ्र सिद्ध करते हैं=वश में करते हैं। २. ये सब भुवन अर्थात् भूतजात हमारे लिये सुख को सिद्ध करें **(सीषधाम=साधयन्तु**, यहाँ व्यत्यय है)। प्रथम पुरुष बहुवचन के स्थान पर उत्तम पुरुष बहुवचन प्रयुक्त हुआ है।[८९]

समाधान-प्रथम अर्थ ही मानना उपयुक्त है, वेंकट ने भी वही माना है। अतः व्यत्यय नहीं है।

इस प्रकार ऋग्वेद के प्रमुख तथाकथित पुरुष व्यत्ययों की समीक्षा करने पर हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि इनमें पुरुष-व्यत्यय नहीं है।

पाद-टिप्पणियां-

१ अश्याः आभिमुख्येन व्याप्नोतु। अशूङ् व्याप्तौ, लिङि 'बहुलं छन्दसि' इति विवरणस्य लुक्। व्यत्ययेन परस्मैपदमध्यमौ-सायण।

२ आप्राः, प्रा पूरणे, लङि पुरुषव्यत्ययः-सायणः।

३ इयं धीः युष्मत्स्तुतिरूपम् इदं कर्म यूयाः यूयात् यवतु-सायण।

४ सा इयं प्रसिद्धा दीधितिः दीप्तिः अस्मे अस्माकम् अपिप्राणी सर्वदा चेष्टयित्री सदनी च निवासवती च भूयाः भूयात् भवतु-सायण।

५ चित्रभानुः विचित्रदीप्तिश्चायनीयदीप्तिर्वा अग्निः मे मम हवं स्तोत्रं श्रूयाः शृणोतु-सायण।

६ रथ्यः रथसम्बन्धी सप्तिर्न सर्पणशीलोऽश्व इव युष्मद्गणः धीतिम् अस्मदीयं कर्म अश्याः अश्नोतु। अशूङ् व्याप्तौ, व्यत्ययेन परस्मैपदमध्यमौ-सायण।

७ रुद्रस्य महादेवस्य हेतिः आयुधं नः अस्मान् परिवृज्याः परिवर्जयतु-सायण।

८ नः स्तुवतोऽस्मान् नराशंसः नरैः शंसनीयः ग्नास्पतिः देवपत्नीनां पतिः छन्दसां पतिर्वा सविता अव्या अव्यात्-सायण।

९ अस्य इन्द्रस्य सम्बन्धिनः तन्व शरीरस्य कामं पुष्ट्यादिलक्षणविषयमभिलाषं हविः अस्माभिर्दत्तम् आ ऋध्याः सर्वतः पूरयतु-सायण।

१० अश्नोतेर्लिङि; 'बहुलं छन्दसि' इति विकरणस्य लुक्। व्यत्ययेन परस्मैपदं मध्यमपुरुषत्वं च-सायण।

११ सा देवी नः अस्मान् सुविता सुखाय प्रति गम्याः प्रतिगम्यात् अभिगच्छेत्-सायण।

१२ गीः स्तुतिरूपा वाक् वरुणं मित्रं भगमदितिं च प्र अश्याः प्राप्नोतु-सायण।

१३ अत्र पर्जन्यः स्तूयते। पर्जन्यः हे जरितः स्तोतस्त्वदीया स्तुतिः नूनं प्र अश्याः प्रकर्षेण व्याप्नोतु-सायण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४ एष स्तोमः स्तुतिः पृथिव्यादिदेवताः प्र अश्याः प्राप्नोतु-सायण।

१५ वरुणस्य वारयितुर्देवस्य हेळः क्रोधः न अस्मान परिवृज्याः परिवणक्तु, परित्यज्यान्यत्र गच्छतु-सायण।

१६ अक्षाः क्षरति-सायण।

१७ लोपाशो मृगः प्रत्यञ्चम आत्मानं प्रति गच्छन्तं सिंहम् अत्साः अत्सारीत्, आभिमुख्येन गच्छति-सायण।

१८ ऋतस्य सत्यस्य सुदुघा माध्यमिका वाक् पुराणवत् प्रत्नवत् काले भूयाः भूयात्, पुरुषव्यत्ययः-सायण।

१९ वृत्रहा इन्द्रः नामानि उदकानि अप्राः पूरयति, व्यत्ययेन मध्यमः-सायण।

२० भूतांशः एतन्नामर्षिः अश्विनोः कामम् अभिलाषम आत्मीयाभिः स्तुतिभिः आ अप्राः आपूरयत्, सम्पूर्णमकार्षीदित्यर्थः। प्रा पूरणे, आदादिकः, व्यत्ययेन मध्यमः-सायण।

२१ देवी देवनशीला रात्रिः उरु विस्तीर्णम् अन्तरिक्षम आ अप्राः प्रथमतस्तमसापूरयति। प्रा पूरणे, आदादिकः, लङि व्यत्ययेन मध्यमः।

२२ सः एवं दशभिः वीरैः पुत्रैः, उपलक्षणमेतत्, सर्वैर्बन्धुजनैः वियूयाः वियुक्तो भवेः, यः राक्षसः मा मां मोघं मृषैव हे यातुधान हे राक्षस इति सम्बोध्य आह-सायण।

२३ सम अजायथाः त्वम् उषोभिः सह। तमिममाश्चर्यं मनुष्याणां निवेदयितुं तान् सम्बोधयति 'मर्याः' इति-वेङ्कटमाधव।

२४ प्रय इव अन्नमिव प्रयंसि प्रयच्छामि। प्रयंसि, यम उपरमे, इत्यस्मात् लटि पुरुषव्यत्ययः। 'बहुलं छन्दसि' इति शपो लुक्-सायण।

२५ वयम् इद्धं प्रदीप्तमग्निं नक्षन्ते व्याप्नुयाम, पुरुषव्यत्ययः, नक्षतिर्व्याप्तिकर्मा-सायण। नक्षन्ते व्यत्ययेन चोत्तमस्य स्थाने प्रथमपुरुषः, नक्षामहे व्याप्नुमः-स्कन्द।

२६ वाजिनः हविर्लक्षणान्नोपेता ऋत्विजः विप्रं मेधाविनं मरुद्गणम् अनु अतक्षत हविष्प्रदानादिना तीक्ष्णीकुर्वन्ति। अतक्षत तक्षू त्वक्षू तनूकरणे, छान्दसो लङ् व्यत्ययेन मध्यमः। अतक्षत=अतक्षन्-सायण।

२७ दक्षः सर्वकार्यसमर्थस्त्वं सचते सेवसे। षच समवाये, पुरुषव्यत्ययः-सायण।

२८ तं दक्षः बलं वृद्धिर्वा सचते सेवते, बलं वृद्धिं वा प्राप्नोतीत्यर्थः, कविः मेधावी-स्कन्द।

२९ यः सोम! तव सख्ये रमते देव! मनुष्यः, तं समर्थः स्तोता सेवते स्तोतुम्-वेंकट।

३० काव्यः कवेः पुत्रः उशना मन्दिनं मदकरं यं वज्रं ते तुभ्यं दात् दत्तवान्, तं वज्रं वृत्रहणं वृत्रस्यासुरस्य घातकं, पार्यं शत्रूणां पारणेऽतिक्रमणे समर्थं च ततक्ष कृतवानसि। ततक्ष, तक्षू त्वक्षू तनूकरणे, पुरुषव्यत्ययः-सायण।

३१ यच्छब्दश्रुतेस्तच्छब्दोऽध्याहार्यः। तम् ततक्ष, तक्षतिः करोतिकर्मा, शुद्धोऽपि सोपसर्गार्थो द्रष्टव्यः। लोडर्थे लिट्। मध्यमपुरुषस्य स्थाने प्रथमपुरुषः। अस्मदीयशत्रुवधार्थं संस्कुरु, निश्येत्यर्थः-स्कन्द।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३२ यम् च ते कविपुत्रः उशना मदयितारम् अदात् तं चादत्स्व, काव्यः इन्द्राय शत्रूणां हन्तारं युद्धपारगमनहेतुभूतम् अकरोत् वज्रम् इति-वेंकट।

३३ आत् प्रवृद्धयनन्तरम् अस्य अग्नेः ते सूरयः सरणयो मार्गाः कृष्णासः कृष्णवर्णा भवन्ति। यत एवं भवन्ति तदर्थं दक्षि दहति काष्ठान्। पुरुषव्यत्ययः-सायण।

३४ अग्निम् अङ्गनादिगुणदिगुणविशिष्टं दूतं दूतकर्म प्राप्तवन्तं त्वां प्रति यत्कार्यम् अब्रवीतन अब्रुवन्। व्यत्ययेन मध्यमः-सायण।

३५ यद्वा ऋषेरिदं वाक्यम्। हे ऋभवः! यूयमागतमग्निं दूतं प्रति यदब्रवीतन यत्कार्यं वक्ष्यमाणरूपं कर्तव्यत्वेन वदथ अंगीकुरुथ, तानि सर्वाणि सम्पाद्य हे भ्रातरग्ने कृत्व्या कर्मणा एमसीति ब्रूथ इति ऋषिराह-सायण।

३६ तमु तमेव इन्द्रं स्तुषे स्तौमि तथा तमिन्द्रं गृणीषे शंसामि। उभयत्र पुरुषव्यत्ययः-सायण।

३७ यः ब्रह्मणस्पतिः अवरे निकृष्टे वृजने वर्जनहेतुभूते बले वर्तमानम्, दुर्बलमिति यावत्, महान् उ महान्तं च, उभयविधं स्तोतारं शवसा आत्मीयेन बलेन ववक्षिथ वोढुमिच्छति, सर्वदा वहतीति यावत्। वहतेः सन्नन्तस्य लिटि एतद् रूपम्। पुरुषव्यत्ययः-सायण।

३८ यः त्वम् अवरे न्यूने वृजने विश्वथा विभुः महान् उ रण्वः बलेन वहसि। परोक्षः शेषः-वेंकट।

३९ किं चायं परिचारकः गम्भीराय महाबलाय रक्षसे राक्षसाय हेतिं घातकमायुधम् अस्य क्षिपति। प्रथमपुरुषस्य मध्यमपुरुषेण व्यत्ययः-सायण।

४० हे अध्वर्यवः! यूयम् ईळेन्यं स्तुत्यम्-मनुना प्रजापतिना समिद्धम् अग्निम् अध्वराय यज्ञाय सदमित् सदैव सं महेम संपूजयत। मध्यमपुरुषस्य व्यत्ययेनोत्तमपुरुषत्वम्-सायण।

४१ तत् प्रसिद्धम् अद्य अस्मिन् यागकाले वः युष्मान् मनामहे याचामहे-यत् धनं हे ऋतस्य उदकस्य रथ्यः नेतारः यूयं वरुणादयः ओहते। यूयमित्यनेन सामानाधिकरण्यात् 'ओहते' इत्यत्र पुरुषव्यत्ययः, 'ओहध्वे' इत्यर्थः-सायणः।

४२ ईदृशौ अश्विना अश्विनौ नः अस्माकम् ऊतये रक्षणाय कण्वासः कण्वगोत्रा वयं स्तुषे स्तुमहे, पुरुषवचनयोर्व्यत्ययः-सायण।

४३ यद्वा, कण्वास इति पूजार्थं बहुवचनम्। ऋषिरात्मानं सम्बोध्य ब्रूते-हे अन्तरात्मन्! कण्वासः कण्वगोत्रस्त्वं स्तुषे अश्विनौ स्तुहि।

४४ हे स्तोतारः प्रगायत सोमं प्रकर्षेणाभिष्टुत, तथा देवान् अभ्यर्चाय अभ्यर्चत, पुरुषव्यत्ययः-सायण। प्रगायत, अभि अर्चत देवान्-वेंकट।

४५ विमदाः विमदनामानो वयं स्तोमं स्तोत्रविशेषम् अजीजनन् जनितवन्तः, कृतवन्त इत्यर्थः। अत्र पूर्वोत्तरयोरेकवाक्ययोः पुरुषव्यत्ययः-सायण।

४६ कारुः स्तोता सिन्धुक्षिदहं विवस्वतः परिचरणवतो यजमानस्य सदने यज्ञगृहे सु सुष्ठु प्रवोचामि प्रब्रवीमि-सायण।

४७ स इन्द्रः ब्राधतः महतोऽपि शत्रून् शवसानेभिः बलमात्रदि्भरायुधैः अस्य अस्यतु। असु क्षेपणे, व्यत्ययेन मध्यमः-सायणः। सः महतः शत्रून् बलवद्भिः आयुधैः अस्यति-वेंकट।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४८ अयम् इन्द्रः दशस्यन् स्तोतृभ्यो धनं प्रयच्छन् नर्येभिः नर्यैः नृहितैः मरुद्भिः अस्य अस्यति। छान्दसस्तिपो लोपः, यद्वा व्यत्ययेन लोण्मध्यमः- सायण। अयं दातुमिच्छन् नृहितैः मरुद्भिः सह अस्यति शत्रून्-वेंकट।

४९ इमा इमानि प्रदृश्यमानानि भुवना भुवनानि सीषधाम साधयामः वशीकुर्मः, कम् इति पूरकः। यद्वा- इमानि सर्वाणि भूतजातान्यस्मभ्यं कं सुखं सीषधाम साधयन्तु, पुरुषव्यत्ययः। इन्द्रश्च विश्वे सर्वे अन्ये देवाः च स्तुत्या प्रीता इममर्थं साधयन्तु-सायण। इमानि क्षिप्रं भुवनानि वयं साधयामः। अस्माकम् इन्द्रः च विश्वे च देवाः तानि साधयन्तु इति-वेंकट।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotiḥ
ISSN 2277-4351

Vol.1, No.2 (36- 43) Jan-jun 2013

त्रिदोष-सिद्धान्त की वेदमूलकता

(दिनेशचन्द्र शास्त्री, प्रोफेसर एवम् अध्यक्ष--वेदविभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार)

dineshcshastri@gmail.com

आयुर्वेद सिद्धान्त एवं नाड़ी विज्ञान का आधार त्रिदोष है। आधुनिक वैज्ञानिक त्रिदोष को नहीं मानते एवं कुछ लोग उसे अप्रमाणिक समझते हैं। वात, पित्त और कफ-ये त्रिदोष ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मणग्रन्थों तथा चरक, सुश्रुत आदि आर्ष-ग्रन्थों में वर्णित है। यह त्रिदोष-सिद्धान्त पूरी तरह वेदमूलक है क्योंकि जो वेद के द्वारा कहा गया है वही धर्म और वही मान्य होता है। अत: वेदों के द्वारा वात, पित्त और कफ-इन त्रिदोषों की सिद्धि करना आवश्यक है। वेदों में पृथक्-पृथक् और समष्टि रूप से दोषों की चर्चा की गयी है।

विस्तृत वैदिक वाङ्मय में त्रिदोष-सम्बन्धी अनेक मन्त्र हैं। **वात** (वायु) के सम्बन्ध में निम्नलिखित मन्त्र बहुत प्रसिद्ध है-

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः। दक्षं ते अन्य आवातु व्यन्यो वातु यद्रपः॥ (ऋग्०४.१३.२)

इस मन्त्र का ऋषि *शन्ताति* है और *वायु* देवता है। भावार्थ यह है कि प्रबल रूप से शरीर में दो प्रकार के वायु रहते हैं-प्राण और अपान। इनमें एक तो फुफ्फुसों द्वारा रक्त को शुद्ध करता है और दूसरा शरीर से बाहर मलों को ले जाता है। इन दोनों में से 'एक तुझे बल प्रदान करे और दूसरा विकारों को शरीर से बाहर करे।' अथर्ववेद १०.२.७- **कति देवाः कतमे त आसन्य उरो ग्रीवाश्चिक्युः पूरुषस्य। कति स्तनौ व्य ∫ दधुः कः कफोडौ कति स्कन्धान्कति पृष्टीरचिन्वन्॥** इस मन्त्र में फुफ्फुसों को कफोड़ कहा गया है। सारांश यह है कि प्राण और अपान ये दो प्रधान वायु हैं। ***बृहद्देवता*** नामक ग्रन्थ में इनको ***अश्विनौ*** कहा गया है।[१] 'शरीरतत्त्वदर्शन' में प्राण का स्थान मस्तिष्क बतलाया गया है, जो ज्ञान या संज्ञा वाहिनियों का मूल उदगम स्थान है। 'अष्टांगहृदय' में भी प्राणवायु को ***ऊर्ध्वग*** कहा गया है। वेदों में भी कहा है-'**पवमानो अधिशीर्षतः**' अर्थात् प्राणवायु शीर्षस्थानीय है। प्राणवायु, बुद्धि, चित्त एवं इन्द्रियों को, हृदय को और हृदयगत भावों को अपने-अपने ईप्सित अर्थ की प्राप्त करने अथवा सिद्ध करने में प्रधान रूप से प्रेरक है। **अपान वायु** उदर के निचले प्रदेश में रहता है और शुक्र, आर्तव, मूत्र, पुरीष तथा गर्भ आदि का बाहर की ओर प्रेरक है। इसीलिये उसे अपान कहा गया है।[२] तात्पर्य यह है कि प्राणवायु बलदेता है और अपान मलों या दोषों को दूर करता है।

वात (वायु का निर्देशक) एक दूसरा मन्त्र इस प्रकार है-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः। त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे॥ (अथर्व०४.१३.३)

इसका ऋषि ***'शन्ताति'*** और देवता ***'वायु'*** है। सारांश यह है कि हे वायो! तुम सूक्ष्मतत्त्वों के साथ औषधि को शरीर में पहुंचाओ, क्योंकि तुम देवताओं के दूत हो।'

इस प्रकार वायु की महिमा एवं उसके कार्य के सम्बन्ध में अन्य अनेक मन्त्र वेदों में प्राप्त होते हैं। विस्तारभय से यहां उनका उल्लेख करना आवश्यक नहीं है।

त्रिदोष सिद्धान्त में आये **'पित्त'** से सम्बन्धित मन्त्रों का वर्णन इस प्रकार है-

सुपर्णो जातः प्रथमस्तस्य त्वं पित्तमासिथ। तदासुरी युधा जिता रूपं चक्रे वनस्पतीन्॥ (अथर्व०१.२४.१)

इस मन्त्र का ऋषि ***'ब्रह्मा'*** और ***'आसुरी वनस्पति'*** देवता है। भावार्थ यह है कि सूर्य अपनी किरणों से पित्त अर्थात् ऊष्मा को बढ़ाता है। वह पित्त सूर्य-किरणों द्वारा वनस्पतियों में संचित होता है और उसके=पित्त के द्वारा वनस्पतियों में जो परिपाक होता है, उसी से वनस्पतियों में बल और वर्ण की उत्पत्ति होती है। चरकसंहिता में कहा है कि पित्त, प्रभा और वर्णकारक है। वही अग्निरूप है।[3]

उप द्यामुप वेतसमवत्तरो नदीनाम्। अग्ने पित्तमपामसि॥ (अथर्व०१८.३.५)

इस मन्त्र में द्यौ शब्द अवका के अर्थ में प्रयुक्त है, जो पानी का बूर या शैवाल कहा जाता है। शैवाल के सारभूत रक्षक अंश को अवत्तर कहते हैं। सारांश यह कि 'हे अग्ने! तू पानी से सम्बन्ध रखने वाला पित्त धातु है। वैजयन्तीकोश में भी पित्त को तैजस् कहा है।[4] आयुर्वेद के आचार्य भी कहते हैं कि ' अग्नि तत्त्व और जलतत्त्व के संयोग से पित्त बनता है।' इस समय प्रचलित तैजस् आप-तेजाब को भी पित्तस्थानीय ही जानना चाहिये।

यजुर्वेद के-**उप ज्मन्नुप वेतसेऽवतर नदीष्वा। अग्नेपित्तमपामसि मण्डूकि ताभिरागहि सेमं नो यज्ञं पावकवर्णंशिवं कृधि ॥** (यजु०१७.६)-मन्त्र में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि ***'पित्तमपामसि'*** अर्थात् हे अग्ने! तू जल का पित्त है।' इस पद से पित्त को जल का तैजस् रूप बतलाया गया है। ***'मण्डूकि ताभिरागहि'*** पद से यह दिग्दर्शन कराया गया है कि सभी जलमय प्राणी भीतर से ऊष्ण होते हैं। जैसे जल में रहने वाले मण्डूक भयंकर विषधर होते हैं। इसी प्रकार यजुर्वेद के अध्याय १९ मन्त्र ८५ में ***'पित्तम्'*** पद का प्रयोग किया गया है और २५वें अध्याय के सातवें मन्त्र में ***'पित्तेन'*** पद का प्रयोग मिलता है। चरक में भी कहा है- ***'पाचिताः पित्ततेजसा'*** पित्त की ऊष्मा से परिपाक होता है।

'कफ' (श्लेष्मा) प्रदर्शक मन्त्रों में- **अस्थिस्रंसं परुस्रंसमास्थितं हृदयामयम् । बलासं सर्वं नाशयाङ्गेष्ठा यश्च पर्वसु॥** (अथर्व०६.१४.१) यह मन्त्र प्रमुख है। इस मन्त्र का ऋषि ***'बभ्रुपिङ्गल'*** और ***'बलास'*** देवता है। इसका भावार्थ यह है कि अस्थियों एवं अस्थिसन्धियों को शिथिल करने वाले, हृदय में अंगों की सन्धियों में रहने वाले बलास अर्थात् कफ को नष्ट करो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मन्त्र में हृदय को कफ का अधिष्ठान माना गया है। सुश्रुत ने भी **'कफप्रसादजं हृदयम्'** कहते हुए हृदय को कफसंस्थान माना है। वेद ने भी हृदय और कफ का सम्बन्ध स्वीकार किया है।

वैदिक **बलास** शब्द कफ का वाचक है। इसके दो अर्थ हैं-१. कफ और २. कफक्षय। बलस्य आसः=स्थानम्-बलासः, अर्थात् बल का आश्रय, विशुद्ध कफ। यह 'आस उपवेशने' धातु से 'घञ्' प्रत्यय होकर बना है। दूसरे, बलस्य आसः= नाशकः-अर्थात् बल का नाशक। यहाँ 'असू क्षेपणे' धातु से 'घञ्' प्रत्यय होता है।

चरक ने भी इसे स्वीकार किया है- 'प्राकृतिक कफ बल है और विकृत कफ मल है।'[५] यही विकृत कफ बलनाशक है।

इस प्रकार अथर्ववेद के इस सूक्त ६.१४ (बलासः) में कफ सम्बन्धी और मन्त्र भी हैं जो कि इस प्रकार हैं-

निर्बलासं बलासिनः क्षिणोमि मुष्करं यथा। छिनद्म्यस्य बन्धनं मूलमुर्वार्वाइव॥ २॥

निर्बलासेतः प्र पताशुङ्गः शिशुको यथा। अथो इटइव हायनोप द्राह्यवीरहा॥ ३॥

अथर्ववेद के एक मन्त्र में त्रिदोष का प्रयोग हुआ है। वह मन्त्र इस प्रकार है-

मुञ्च शीर्षक्त्या उत कास एनं परुष्परुराविवेशा यो अस्य। यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो वनस्पतीन्त्सचतां पर्वतांश्च ॥

१.१२.३॥

इस मन्त्र का ऋषि **भृग्वङ्गिरा** और **यक्ष्मनाशन** देवता है। भावार्थ यह है कि हे यक्ष्मनाशन देव! इस रोगी को शिरःस्थूल से और कासरोग (खांसी) से मुक्त करो। इस रोगी के पोर-पोर में संचित कफजन्य विकारों, वायु से उत्पन्न होने वाले रोगों और पित्त से उत्पन्न होने वाले रोगों के लिये वृक्ष, वनस्पति तथा पर्वतों का सेवन करो।[६] अथर्ववेद में और भी कहा है-

शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदं नृचक्षसस्ते अभि चक्षते रयिम्। ये पृणन्ति प्र च यच्छन्ति सर्वदा ते दुह्रते दक्षिणां सप्तमातरम् ॥

(१८.४.२९)

इस मन्त्र का तात्पर्य यह है कि वे (आयुर्वेद के विशारद) असंख्य नाड़ी स्रोतों से बहते हुए वायु को, सूर्य देवताक अग्नि-पित्त को और सोम देवताक पुंष्टिकारक कफ को तर्क वितर्क के द्वारा भली-भांति जानते हैं, ये तीनों (वात-पित्त और कफ) रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र-इन सात धातुओं के निर्माणकर्त्ता हैं। इस प्रकार ये त्रिदोष प्रकृतिस्थ होकर पालन करते हैं और कुपित होकर विविध प्रकार की व्याधियों को उत्पन्न करते हैं। ये वात, पित्त और कफ, शरीर को सदा पूर्ण करते रहते हैं या भरते रहते हैं। इस मन्त्र में ***शतधार*** पद आया है। यहाँ **शत** शब्द का अर्थ **बहुत** है। वैदिककोश निघण्टु में **बहुत** के पर्यायों में **शत** शब्द का प्रयोग किया गया है।

चरकसंहिता के सूत्रस्थान, अध्याय १८ में कहा है कि "त्रिदोष प्राणियों के शरीर में सर्वदा रहते हैं। विद्वान् वैद्य उन्हें 'प्रकृतिस्थ हैं या विकृत हैं', यह जानने का यत्न करें।"[७]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुश्रुत के सूत्रस्थान में भी लिखा है कि 'वायु, पित्त और कफ-इन तीनों से शरीर का निर्माण हुआ है। वे अविकृत रहने पर शरीर की कर्तृत्व शक्ति को बनाये रहते हैं।[८]

चरक के विमानस्थान में लिखा है- "वात, पित्त और कफ-ये तीन दोष हैं, ये प्रकृतिस्थ रहने पर शरीर को बढ़ाते हैं, अपने इष्टसाधन की शक्ति को भी बनाये रहते हैं और शरीर की इष्ट सिद्धि में सहायक होते हैं।[९]

सूत्रस्थान में लिखा है कि शरीर में प्रकृतिभूत ये त्रिदोष आरोग्य प्रदान करते हैं और विकृत होने पर वे ही विकार कहे जाते हैं। त्रिदोष का प्रकृतिस्थ रहना ही आरोग्य है।[१०]

सुश्रुत के सूत्रस्थान में कहा गया है कि जैसे वायु, सूर्य और चन्द्रमा परस्पर विसर्ग आदान और विक्षेप करते हुए जगत् को धारण करते हैं, उसी प्रकार वात, पित्त और कफ शरीर को धारण करते हैं।[११]

त्रिदोष के विशेष परिचय के लिये चरकसंहिता सूत्रस्थान के बारहवें **वातकलाकलीय** अध्याय को देखना आवश्यक है। ऋग्वेद के निम्न मन्त्र-**त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रिः पार्थिवानि त्रिरु दत्तमद्भ्यः। ओमानं शंयोर्ममकाय सूनवे त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती॥** (१.३४.६) में *त्रिधातु* पद का प्रयोग किया गया है। इस पर भाष्य करते हुए आचार्य सायण ने लिखा है-'हे सुन्दर जगत् के पालन करने वाले अश्विनी कुमार! तुम वात, पित्त और श्लेष्म इन तीन धातुओं का भलीभांति प्रशमन करो।'

उसी के प्रथम मण्डल के ८५वें सूक्त में आये हुए **या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि।** (१.८५.१२) इस मन्त्र में पठित *त्रिधातूनि* पद का अर्थ करते हुए महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वात, पित्त, कफ और लोहा, सोना तथा चांदी-दोनों अर्थ किये हैं।[१२]

उक्त प्रमाणों से यह नितान्त स्पष्ट है कि वेदार्थ प्रक्रिया में आयुर्वेद के मूलाधार त्रिदोष की व्यवस्था सर्वत्र सम्मान्य थी। *त्रिधातु* शब्द का लोक में भी वात, पित्त, कफ के अर्थ में प्रयोग है यथा-**यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके।**

महाभारत के युद्धपर्व में लिखा है 'हे राजन्! संग्राम में शत्रुओं के साथ अभिमन्यु का परस्पर ऐसा युद्ध हुआ, जिस प्रकार शरीर का वात, पित्त और कफ से हुआ करता है।[१३]

इससे यह सिद्ध होता है कि महाभारत काल में भी चिकित्सा-पद्धति का आधार त्रिदोष था। अथर्ववेद के निम्न मन्त्र-**द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः। समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः॥** (१८.४.२८) में वात, पित्त और कफ-इनको शरीरोत्पत्ति का कारण कहा गया है। अर्थात् "प्रवृत्तिमान जीव[१४], द्यावापृथिवी की उत्पत्ति के अनन्तर मनुष्यादि योनियों को प्राप्त करता है, जो नित्य है। स्वकर्मानुसार भिन्न-भिन्न योनि को ग्रहण करते हुए जीव की स्थिति के लिये रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र रूप सात धातुओं को शरीर के अवयवों के लिये सर्जन करता हूँ।[१५] सुश्रुत में शरीर के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारक होने के कारण त्रिदोष को भी धातु कहा है।[१६]

इस प्रकार वेद, ब्राह्मणादि सत्य शास्त्रों से त्रिदोष-विज्ञान की वेदानुकूल विश्वव्यापकता स्वतः सिद्ध है! काश्यपसंहिता नामक कौमारभृत्यतन्त्र में त्रिदोष में प्रत्येक के दो-दो देवता माने जाते हैं। जैसे आकाशतत्त्व और वायुतत्त्व के योग से वात (वायु) नामक दोष आश्रित है। अग्नि और आदित्य के आश्रित पित्त दोष है और कफ, सोम और वरुण के गुणों का आश्रय करता है।

वैदिक संहिताओं, शाखाओं एवं ब्राह्मणग्रन्थों में अग्नि, सोम और वायु के जिन-जिन गुणों तथा विशेष कर्मों का वर्णन किया गया है, वे इस प्रकार है-

वायु का स्वरूप-

यह सारा विश्व अन्तरिक्ष से व्याप्त है। यह छिद्र ही अन्तरिक्ष है। यह जो बाहर आकाश है, वही तुझमें और मुझमें है। अग्नि अन्तरिक्ष तथा वायु के आश्रय पर है। जहां-जहां वायु चलता है, वहां-वहां आकाश है। वायु गतिशील है, और वायु ही पृथक् पृथक पदार्थों को अवस्थित करता है। वात का पर्यायवाची वायु शब्द है, जो वायु है, वह इन्द्र है, जो इन्द्र है वह वायु है। वायु का नाम ही जातवेदा है, जो कुछ जगत् में क्रियामय दीख रहा है, वह सब वायु का ही महात्म्य है। जो यह आकाश में चलता है, वह वायु है। वायु ही ताक्ष्र्य है। स्वर्गलोक का वहन करने वाला ताक्ष्र्य वायु ही है। वायु ही तीनों लोकों में व्यापक है, अतः वह आशुत्रिवृत् है। वायु ही विश्वकर्मा है। वायु ही सब कुछ करता है। यह पवित्र करने वाला वायु है। वायु ही प्राण है। प्राणवायु भी वायु के आश्रय पर है। मन ही प्राण बनकर दक्षिण की ओर खड़ा हुआ था। तीनों लोक एक प्रकार की नगरी है, उसमें रहने से वायु का नाम पुरुष है। वायु सब देवताओं की आत्मा है। वायु ही आकाश का स्वामी है। वायु ही अन्तरिक्ष का आधार है। यह एक ही वायु पुरुष में प्राण, उदान तथा व्यान तीन प्रकार से है।[१७]

अग्नि का स्वरूप-

तेजःस्वरूप का नाम अग्नि है। तप का नाम अग्नि है। अग्नि ही देवताओं का जठर है। अग्नि ही सब कुछ खाने योग्य बनाती है। अग्नि ही मैथुन तथा प्रजनन का स्वामी है। यह दृश्यमान जगत् अग्निरूप है। अग्नि ही देवताओं का यष्टा है। अग्नि ही देवताओं का दूत है। अग्नि ही देवताओं का दूत था। अग्नि ही शीत की ओषधि है। शुद्ध अग्नि ही यश है।[१८]

आदित्य का स्वरूप-

आदित्य चक्षु है। आदित्य ही देवलोक है। आकाश में जो अकेला चलता है, वह आदित्य है। जो पूर्व में उदय होता है वह आदित्य है। आदित्य ही असंख्या रश्मियां है अथवा ये सर्प ही आदित्य है।[१९]

सोम का स्वरूप-

नक्षत्रों का स्वामी चन्द्रमा सोम कहलाता है। चन्द्रमा ही सोम है। वृत्र ही सोम था। पितृलोक का नाम सोम है। रात्रि का नाम सोम है। यह वट वृक्ष भी तिरोहित रूप में सोम है। दही का नाम सोम है। रस का नाम सोम है। सोम 'चन्द्रमा' राजा सब नक्षत्रों को प्राप्त करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। सोम अन्तरिक्ष देवता है। सोम ओषधियों का अधिराजा है।[२०]

वरुण का स्वरूप-

पानी में दीखने वाला सूर्य ही वरुण है। वरुण का स्थान जल है। रात्रि का नाम वरुण है। मित्रावरुण का प्रिय स्थान द्यावापृथिवी है। यह पृथिवीलोक मित्र है और यह द्युलोक वरुण है।[२१]

अथर्ववेद में वात, पित्त और कफ-ये तीन शरीर के मूल तत्व कहे हैं। इनमें से वात को जीवन तथा शरीर की बाह्य और आन्तरिक क्रियाओं का आधार कहा गया है। पित्त शरीर की ऊष्मा बनकर रस आदि धातुओं को प्राप्त हो, उनका परिणाम करता रहता है तथा शरीर में कान्ति बनाये रखता है। कफ शरीर में धातुओं का उपचय या संग्रह करता है एवं शरीर का पोषण करता है। इस प्रकार उक्त वात आदि प्रकृतिस्थ या स्वाभाविक अवस्था में रहते हुए शरीर के रक्षक होते हैं और विकृत होकर घातक बनते हैं। इस प्रकार वेदानुसार समस्त रोगों का प्रथम तथा सामान्य कारण धातुवैषम्य अर्थात् वात, पित्त, कफ, धातुओं की विषमता-अयोग्य स्थिति है। अथर्ववेद १.१२.३ **यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो वनस्पतींन्त्सचतां पर्वतांश्च**। अर्थात् जो रोग वात से उत्पन्न वातिक, जिसका वात कारण है (वातव्यः) पित्त से उत्पन्न पैत्तिक, जिसका पित्त कारण है (शुष्मः) और जो कफ से उत्पन्न श्लैष्मिक, जिसका श्लेष्मा या कफ कारण है[२२] (अभ्रजाः) उस ऐसे रोग से रोगी को मुक्त करना चाहिये, वह ऐसे कि उक्त रोगी वनस्पतियों को और पर्वतां-पर्वतस्थानों, पर्वतों-पाषाणों अभ्रक गन्धक रत्न आदियों को सेवन करे।[२३] अथर्ववेद के एक मन्त्र में ज्वर को श्लैष्मिक, पैत्तिक (रूरः, अग्निर्वै रूरः-तां०ब्रा०७.५.११) और वातिक बताया गया है।[२४]

पाद-टिप्पणियां-

१ प्राणापानौ हि तौ स्मृतौ (बृहद्देवता ७.१२६)
तौ=अश्विनाविति शेषः।

२ प्राणः संज्ञावाहिनीनां मूले मूर्द्धन्यवस्थितः।
सूक्ष्मरूपो बुद्धिचित्तेन्द्रियाणां स हि साधकः॥
हृदादीनामिन्द्रियाणामभिप्रेतार्थ-साधने।
प्रमुखः प्रेरकश्चायं ततः प्राणः इति स्मृतः॥
उदरस्याधः प्रदेशः अपानाख्ये समाश्रितः।
शुक्रार्तवशकृन्मूत्र-गर्भनिष्क्रमणक्रियः॥
अधःसमीरणादुक्त अपानाख्यः समीरणः॥
शरीरतत्त्वदर्शनतः, श्रीसत्यदेववसिष्ठ द्वारा लिखित 'नाडीतत्त्वदर्शन' के पृष्ठ ४ पर उद्धृत

३ प्रभावर्णकरो हि सः।

४ तेजोऽपिपत्तमपां पित्तम्, वै०को०लोकपालाध्यायः, श्लोक १९

५ प्राकृतस्तुबलं श्लेष्णा विकृतो मल उच्यते।

६ द्रः नाडीतत्त्वदर्शन, प्रथमोऽध्यायः, सत्यदेवोवासिष्ठ, पृ०७

७ नित्याः प्राणभृतां देहे वातपित्तकफास्त्रयः।
विकृताः प्रकृतिस्था वा तान् बुभुत्सते पण्डितः॥
च०सू०अ०१८.५०

८ वात-पित्त-श्लेष्माण एव देह-सम्भव-हेतवः।
तैरेवाव्यापन्नैः शरीरमिदं धार्य्यते॥ सुश्रु०सू०अ०२१, अनु०३

९ दोषाः पुनस्त्रयो वात-पित्त-श्लेष्माणाः। ते प्रकृतिभूताः शरीरोपकारका भवन्ति। विकृतिमापन्नास्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खलु नानाविधैर्विकारैः शरीरमुपतापयन्ति। च०, वि०, १.५

१० सर्वशरीरचरास्तु...प्रकृतिभूता:...विकृतिमापन्ना विकारसंज्ञकानि । च०, सू०, २०.९

प्रकृतिभूतानां खलु वातादीनां फलमारोग्यम्, च०, शा०, ६.१८

११ विसर्गादान विक्षेपैः सोमसूर्यानिलायथा।
धारयन्ति जगद्देहं वात-पित्त-कफास्तथा।। सु०, सू०, २१.९

१२ त्रयो वात-पित्त-कफा येषु शरीरेषु वाऽयः सुवर्णरजतानि येषु धनेषु तानि।

१३ अभिमन्योस्ततस्तैस्तु तथा युद्धमवर्त्तत।
शरीरस्य यथा राजन्! वात-पित्त-कफैस्त्रिभिः।।
६.८१.४१।।

१४ स्वामी ब्रह्ममुनि ने निम्न प्रकार अर्थ किया है- संसार में मोह करने वाला जीव (दृप मोहने)- अनीशया शोचति मुह्यमानः (मु०उप०३.१.२)
द्रः अथर्ववेदीय चिकित्साशास्त्र, पृ०२५

१५ द्रप्सः =प्रवृत्तिमान् जीवः, दृप हर्षमोहनयोः, दिवादिः। पृथिवीं द्यांच्चानु= द्यावापृथिव्यो-रुत्पत्त्यन्तरं योनिमनु= मनुस्यादि-योनिम्, चस्कन्द प्राप्नोति, यश्च पूर्वः- यश्च नित्योऽस्ति। समानं योनिमनु= स्वकर्मानुसारं योनिं, सञ्चरन्तम्= गृह्णन्तम्, द्रप्सं-मोहप्रवृत्तिमन्तं जीवं, सप्तहोत्रा अनु= रसरक्तमांमदोऽस्थिमज्ज-शुक्ररूपात्मान सप्तधातून्, शरीरावयवान् प्रति, जुहोमि-सृजामीत्युपदिशतीश्वरः। होत्राः=अङ्गानि। अत्र प्रमाणम् अङ्गानि वाव होत्राः' गोपथब्राह्मणे उत्तरार्द्धे, (६.६)-नाडीतत्त्वदर्शन, प्रथमोऽध्यायः, सत्यदेवो वासिष्ठः, पृ०१०

१६ त एते शरीरधारणात धातव इत्युच्यन्ते-सु०सू०, १४.२१

१७ अन्तरिक्षेणेदं सर्वं पूर्णम्-तां०ब्रा०१५.१२.२
छिद्रमेवेदमन्तरिक्षम्-तां०ब्रा०३.१०.२, २१.७.३

अयम्म आकाशः स मे त्वयि जैमि०ब्रा०उ०१.२०.२

अन्तरिक्षमस्याग्नौ श्रितम्। वायोः प्रतिष्ठा तैत्ति०ब्रा०३.११.१.८

स एवायं पवते (वायुः), एतदेवान्तरिक्षम् जैमि०ब्रा०उप०१.२०.२

अयं वै वायुर्योऽयं पवते, एष वा इदं सर्वं विविनक्ति यदिदं किञ्च विविच्यते शत०ब्रा०१.१.४.२२

वातो (यजुः १५.६२) हि, वायुः-शत०८.७.३.१२

यो वै वायु स इन्द्रः, य इन्द्रः, स वायुः शत०४.१.३.१९

वायुर्वै जातवेदा वायुर्हीदं सर्वं करोति यदिदं किञ्चन-ऐत०ब्रा०२.३४

योऽयं पवते एष द्युतानो मारुतः-शत०३.१.१६

वायुर्वै तार्क्ष्यः-कौषीतकि ब्रा०३०.५

अयं वै तार्क्ष्यो योऽयं पवते एष स्वर्गस्य लोकस्याभिवोढा-ऐत०ब्रा०४.२०

वायुर्वा आशुस्त्रिवृत्, स एष त्रिषु लोकेषु वर्तते शत०ब्रा०८.४.१.१९

अयं वै वायुः विश्वकर्मा योऽयं पवते शत०ब्रा०८.१.१.७

एष हीदं सर्वं करोति-शत०ब्रा०८.१.१.७, ८.६.१.१७

वायुर्वै प्राणः-कौषीतकि ब्रा०८.४

वायुर्हि प्राणः-ऐत०ब्रा०२.२६, ३.२

वायुर्वै प्राणे श्रितः-तैत्ति०ब्रा०३.१०.४.८

मनो हि वायुर्भूत्वा दक्षिणतस्तस्थौ शत०ब्रा०८.१.१.७

इमे वै त्रयो लोकाः पूः, अयमेव पुरुषो योऽयं पवते, सोऽस्यां पुरि शेते, तस्मात् पुरुषः शत०ब्रा०१३.६.२.१

सर्वेषामु हैष देवानामात्मा यद्वायुः शत०ब्रा०९.१.२.३८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायुर्वै नभस्पतिः-गो०ब्रा०, उ०४.९

वायुर्वान्तरिक्षस्याध्यक्षः-तै०ब्रा०३.२.१.३

सोऽयं वायुः पुरुषेऽन्तःप्रविष्टस्त्रेधा विहितः प्राण उदान व्यान इति-शत०३.१.२.२०

१८ तेजो वा अग्निः-शत०ब्रा०२.५.४.८

तपो वा अग्निः-शत०ब्रा०३.४.३.२

अग्निर्वै देवानां जठरम्-तै०ब्रा०२.७.१२.३

अग्निर्वै सर्वमाद्यम्-तां०ब्रा०२५.९.३

अग्निर्वै मिथुनस्य कर्त्ता प्रजनयिता च-शत०ब्रा०३.४.३.४

इयं पृथिवी वा अग्निः-शत०ब्रा०७.३.१.१२

अग्निर्वै देवानां यष्टा-शत०ब्रा०३.३.७.३

अग्निर्हि देवानां दूत आसीत्-शत०ब्रा०१.४.१.३४

अग्निरेव देवानां दूत आस-शत०ब्रा०३.५.१.२१

अग्निर्हिमस्य भेषजम्-यजु०२३.४६

अग्निर्वै यशः-तै०ब्रा०३.९.५.४

१९ चक्षुरादित्यः-शत०ब्रा०३.२.२.१३

देवलोको वा आदित्यः-कौषीतकि ब्रा०५.७

असौ वा आदित्य एकाकी चरति-आदित्य उदयनीयः-शत०ब्रा०३.२.३.६

सहस्रं हैत आदित्यरश्मयः-जैमि०ब्रा०उप०१.४४.५

सर्प्पा वा आदित्याः-तां०ब्रा०२५.१५.४

२० सोमो राजा चन्द्रमाः-शत०ब्रा०१०.४.२.१

चन्द्रमा वै सोमः-कौषी०ब्रा०१६.५, तै०१.४.१०.७, श०१२.१.१.२

वृत्रो वै सोम आसीत्-शत०ब्रा०३.४.३.१३; ३.९.४.२

पितृलोकः सोमः-कौषी०ब्रा०१६.५

सोमो रात्रिः-शत०ब्रा०३.४.४.१५

परोक्षमिव ह वा एष सोमो राजा यन्न्यग्रोध इति-ऐत०ब्रा०७.३१

सोमो वै दधि-कौषी०ब्रा०३.८,९

रसः सोमः-शत०ब्रा०७.३.१.३

तस्मात् सोमो राजा सर्वाणि नक्षत्राण्युपैति-षड्विंश ब्रा०३.१२

अन्तरिक्षदैवत्या हि सोमः-गो०ब्रा०, उ०२.१४

११. सोमो वै ओषधीनामधिराजः-कौषी०ब्रा०४.१२

२१ स वा एष (सूर्य्यो)ऽपः प्रविश्य वरुणो भवति कौषी०ब्रा०१८.९

अप्सु वै वरुणः-तै०ब्रा०१.६.५.६

रात्रिर्वरुणः-ऐत०ब्रा०४.१०

द्यावापृथिवी वै मित्रावरुणयोः प्रियं धाम-तां०ब्रा०१४.२.४

अयं वै (पृथिवी) लोको मित्रोऽसौ (द्युलोको) वरुणः- शत०१२.६.२.१२

२२ शुष्मः शोषकः पित्तविकारजनित अभ्रजाः श्लेष्मरोगाः (सायणः)

२३ द्र : स्वामी ब्रह्ममुनि, अथर्ववेदीय चिकित्साशास्त्र, पृ०३८-३९

२४ अथर्व०५.२२.१०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotiḥ
ISSN 2277-4351
Vol.1, No.2 (44-54) Jan-jun 2013

वेदों की अपौरुषेयता के सन्दर्भ में :

बरमूडा-त्रिकोण का रहस्य

(पृथिवी के गर्भ में छिपा एक दैत्याकार लौह-स्तम्भ)

एम०एल० गुप्ता, सेवानिवृत्त प्रधानाचार्य, एस०एस०जे० स्नातकोत्तर कॉलेज, भरतपुर (राज०)

बरमूडा त्रिकोण का रहस्य वर्षों पुरानी एक ऐंसी अनबूझ समस्या है, जिसे संसार का कोई वैज्ञानिक अभी तक सन्तोषजनक रूप से हल नहीं कर पाया है। इस समस्या को कुछ वर्ष पूर्व ही राजस्थान-पत्रिका के २ मार्च सन् २००८ के रविवारीय संस्करण में छपे एक लेख में 'कोई अजूबा है यह' शीर्षक से पुनः प्रकाश में लाया गया है जिसमें लेखिका क्षिप्रा माथुर ने बरमूडा त्रिकोण के क्षेत्र में सैंकड़ों जहाजों तथा वायुयानों के समुद्र में विलुप्त हो जाने का वर्णन किया है मानों कोई दैत्य उन्हें निगल गया हो। यह क्षेत्र इसी कारण बहुत वर्षों के कुख्यात रहा है। जहाजों और वायुयानों के विलुप्त हो जाने का कोई निश्चित वैज्ञानिक कारण ज्ञात न होने से यह अभी तक एक रहस्य बना हुआ है तथा इसी कारण इस क्षेत्र को एक अजूबा कहा गया है। लेख में कुछ वैज्ञानिकों द्वारा जहाजों के समुद्र में डूबने का कारण वहाँ मीथेन गैस के सशक्त बुलबुले उठना बताया गया है, जो वायुयानों के लिये तो हास्यापद ही है, जलयानों के लिये भी कोई उचित कारण प्रतीत नहीं होता। फिर वहाँ मीथेन गैस के बुलबुले उठने अथवा वहाँ मीथेन गैस का ज्वालामुखी होने और उसके समुद्र में डूब जाने का कोई कारण भी स्पष्ट नहीं किया गया है।

वैसे तो परमात्मा की बनायी हुई सम्पूर्ण सृष्टि ही एक अनबूझा रहस्य है परन्तु पृथिवी पर ही घटित हुई, बरमूडा त्रिकोण की घटनाओं के अतिरिक्त, अनेकों ऐंसी रहस्यपूर्ण घटनाएं हैं जिनका वैज्ञानिक अभी तक कोई समाधान नहीं खोज पाये हैं, जैसे डायनौसोर प्रजाति का लगभग १० करोड़ वर्ष तक पृथिवी पर छाये रहना तथा लगभग ७ (सात) करोड़ वर्ष पूर्व लुप्त हो जाना, पृथिवी की आयु अरबों वर्ष होने पर भी उस पर मनुष्य प्रजाति का उद्भव लगभग ५० हजार वर्ष पूर्व ही होना, समुद्रतल में तथा पृथिवी पर लगभग ९००० मील व्यास के क्षेत्र में अत्यन्त चमकीले छोटे व बड़े धातु-मिश्रित पाषाण खण्डों (Tektites) का मिलना तथा उनके उद्भव का कोई पता न लग पाना, पृथिवी के अक्ष का उसके परिभ्रमण कक्ष की लम्बवत् दिशा से $23^{1/2°}$ झुका हुआ होना आदि। इसका कारण यही है कि ये सभी घटनाएं सृष्टि-प्रक्रिया से सम्बन्धित हैं, जिनका कोई निश्चित ज्ञान आधुनिक विज्ञान के पास नहीं है। परन्तु हमारे सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद में जिसे अपौरुषेय ज्ञान कहा जाता है, सम्पूर्ण सृष्टि-प्रक्रिया का अत्यन्त विस्तृत वर्णन दिया गया है तथा इसी कारण वेद के गम्भीर अध्येता के लिये इनमें से कोई भी घटना अनबूझ पहेली नहीं है। इन सभी घटनाओं का वर्णन लेखक की पुस्तक 'वेद-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-मंजूषा' (१९८८ संस्करण) तथा अधिक विस्तार से उसकी अँगरेज़ी पुस्तक 'The Cosmic Yajña 'the true story of creation from the Vedas, unknown to Modern Science (1999 edition) में दिया गया है। इस लेख में हम राजस्थान पत्रिका के २ मार्च के अंक में छपे लेख के सन्दर्भ में सभी पाठकों के लिये बरमूडा त्रिकोण के रहस्य का उद्घाटन करेंगे जो चन्द्रमा के जन्म से सम्बन्धित है। इसके साथ ही पृथिवी के अक्ष का अपनी कक्षा की लम्बवत् दिशा से $23\frac{1}{2}°$ झुके होने का रहस्य भी स्वत: ही स्पष्ट हो जायेगा।

चन्द्रमा का जन्म-आधुनिक विज्ञान में चन्द्रमा के जन्म से सम्बन्धित कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं है। परन्तु वेद में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि चन्द्रमा की उत्पत्ति पृथिवी से हुई। ऋग्वेद के मन्त्र (१.१६४.३३) में चन्द्रमा स्वयं ही अपने माता-पिता की घोषणा करता है।

द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्। उत्तानयोश्चम्वो३र्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात्॥

अर्थात् (सूर्य मेरा पिता व जनक है, मेरी (कक्षा की नाभि) भी यहीं सूर्य में है। यह महान् पृथिवी मेरी माता तथा मुझे बन्धन में बाँधने वाली है।)

पृथिवी तथा सूर्य किसी प्रकार चन्द्रमा के माता एवं पिता हैं, यह भी ऋग्वेद के मन्त्रों में (१.१६४.८ व ९) में स्पष्ट किया गया है। इन मन्त्रों का सार यही है कि अरबों वर्ष पहले जब सूर्य से प्रथम सात ग्रहों का जन्म हो चुका था तथा पृथिवी सम्भवत: लाखों वर्षों से सूर्य का परिभ्रमण कर रही थी, तब वह निरन्तर सूर्य के प्रचण्ड कण विकिरण (१०० प्रकार के परमाणु नाभिकों की धाराओं) तथा ऊर्जा विकिरण (अत्यन्त तीव्र गामा किरणों) से विद्ध हुई जिससे पृथिवी के अन्त: में स्थित तरल पदार्थ का रूपान्तरण होकर चन्द्रमा का पिण्ड बना तथा अत्यन्त उच्चकोटि का दाब उत्पन्न हुआ है।

सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा ।

(ऋग्०१.१६४.८)

अर्थात् (पृथिवी माता सन्तुलित तथा गर्भरस-अत्यन्त उच्च ताप व दाबयुक्त तरल पदार्थ से परिपूर्ण थी, निरन्तर विद्ध हुई)।

इस स्थिति में जब वह अपनी कक्षा की दक्षिण धुरी (सूर्य से निकटतम स्थान) पर आई, (युक्ता मातासीद् धुरि दक्षिणाया (ऋग्०१.१६४.९) तब सूर्य के तीव्र आकर्षण से चन्द्रमा का पिण्ड अपनी अर्धघन अवस्था से पृथिवी की ऊपरी सतहों के अवरोध को तोड़ता हुआ प्रचण्ड वेग से बाहर निकलने को उन्मुख हुआ तथा जैसे ही वह एक विशाल पर्वताकार रूप में बाहर निकला, उस ओर भार अधिक हो जाने के कारण पृथिवी उस ओर सूर्य के आकर्षण से झुक गई मानो माता पृथिवी ने पिता सूर्य को नमन किया हो, तथा एक ओर सूर्य का आकर्षण अधिक हो जाने के कारण तथा चन्द्रमा के निष्कासन की प्रतिक्रिया के प्रभाव से उसके अक्ष में सूक्ष्म घूर्णन तथा कम्पन की गतियाँ उत्पन्न हो गईं जैसे एक तीव्र गति से घूमते हुए लट्टू को तनिक झटके से छू देने पर होता है। उपर्युक्त वेदमन्त्र संख्या (ऋग्०१.१६४.८) के शेष अर्ध भाग में बताया गया है कि चन्द्रमा, पृथिवी से तीव्र वेग से निकलने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पश्चात् आकाश के चारों ओर हजारों मील तक छाये हुए घने बादलों में स्थित हुआ क्योंकि उस समय महासागरों का सारा जल वाष्प रूप में मेघों में था।

चूंकि पृथिवी अपनी कक्षा की लम्बवत् दिशा से 23½° झुकी हुई है, इससे सिद्ध होता है कि पृथिवी पर वह स्थान जहां से चन्द्रमा का विशाल पिण्ड पृथिवी से निकला 23½° अक्षांश पर ही स्थित है जिससे पृथिवी से चन्द्रमा के निकलते समय पृथिवी के अक्ष के झुकने पर उसका यह सबसे स्थूल भाग सूर्य के आकर्षण की ठीक सीध में आ गया।

बरमूडा त्रिकोण की स्थिति-पृथिवी के ग्लोब मानचित्र को देखने पर पता चलता है कि बरमूडा त्रिकोण जो दक्षिण में मियामी (फ्लोरिडा), प्यूरंटोरीको तथा उत्तर में अधिकतम बरमूडा तक फैला हुआ है, का मुख्य भाग 23½° अक्षांश पर ही स्थित है। इससे स्पष्ट संकेत मिलता है कि बरमूडा त्रिकोण की घटनाओं का चन्द्रमा की उत्पत्ति की घटना से सीधा सम्बन्ध है। दूसरे शब्दों में यही वह स्थान है जहाँ से चन्द्रमा पृथिवी से निकला, तथा उसकी उत्पत्ति ने निश्चय ही किसी ऐसी अदृश्य शक्ति को जन्म दिया जो जलयानों तथा वायुयानों को दूर से ही अपनी ओर आकर्षित कर, उन्हें समुद्र में खींच लेती है। यह शक्ति कौनसी है तथा वह कैसे उत्पन्न हुई है, यह ऋग्वेद के मन्त्र (१.११६.१५) में वेद की प्रतीकात्मक शैली में बताया गया है। इस मन्त्र के आशय को समझने से पहले वेद के कुछ प्रतीकात्मक शब्दों को समझना आवश्यक है।

वेद की प्रतीकात्मक शब्दावली-वेद में चन्द्रमा, सूर्य और पृथिवी के लिये कुछ प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग किया गया है, जो निम्न प्रकार हैं-

चन्द्रमा-वेद में ग्रहों के चन्द्रमाओं को उनके पद बताया गया है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक ग्रह का चन्द्रमा सूर्य के आकर्षण से उसके पद भाग से निकलता है जो सूर्य की ओर होता है। इसी कारण पृथिवी, मंगल, बृहस्पति आदि को उनके चन्द्रमाओं की संख्या के आधार पर एक पद वाला, दो पद वाला, चार व आठ पदवाला कहा गया है। ये पद ग्रहों के शरीर से कटकर अलग हो चुके हैं, परन्तु उनकी गुरुत्वाकर्षण शक्ति से उनसे जुड़े हैं।

सूर्य-वेद में सौर-मण्डल के सन्दर्भ में सूर्य को **विश्पति** कहा गया है, जिसका अर्थ है-(सौरमण्डल रूपी) गृह का स्वामी, अथवा (ग्रहों रूपी) प्रजा का स्वामी। इस प्रकार '**विश्पति**' सूर्य के लिये बहुत सार्थक शब्द है।

पृथ्वी-वेद में पृथ्वी के लिये इसी प्रकार का सार्थक शब्द '**विश्पला**' है, जिसका अर्थ है गृह का पालन करने वाली, अथवा प्रजा का पालन करने वाली। पृथिवी सभी प्राणियों के लिये भोजन उत्पन्न करके उनका पालन करती है। अतः वह निश्चित ही **विश्पला** है।

अब हम ऋग्वेद के उपर्युक्त मन्त्र (१.११६.१५) का आशय समझ सकते हैं।

वेद से बरमूडा त्रिकोण का रहस्य-उपर्युक्त मन्त्र वेद में अश्विनी देवों के विभिन्न पराक्रमों के सन्दर्भ में आया है। अश्विनी देव, वेद में सन्तुलन की शक्तियों का नाम है, जैसे क्रिया और प्रतिक्रिय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(action and reaction) की शक्तियाँ, या परिभ्रमण गति के सन्दर्भ में आकर्षण तथा अपकर्षण बल। इसी कारण ये सदा दो की संख्या में आते हैं। उपर्युक्त मन्त्र में ही बरमूडा त्रिकोण के अजूबे का रहस्य छिपा हुआ है। यह मन्त्र इस प्रकार है-

चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम्। सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धनें हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम्।। ऋग्० १.११६.१५।।

when at the time of urgency, in the trembling ones battle, a leg was severed like a wild bird's pinion, straight ye gave vishpala (the earth) a thigh of iron, that she might move forward in the interest of the fight. (on the basis of Griffith's translation)

अर्थात् जब अत्यन्त तीव्र आवश्यकता के समय, कम्पनशील पृथिवी के संघर्ष में पक्षी के पंख के सदृश उसका पैर (पद) कट गया, तब तुरन्त तुमने (अश्विनी कुमारों अर्थात् सन्तुलन की शक्तियों ने) विश्पला अर्थात् पृथिवी को लोहे की जङ्घा लगा दी, जिससे वह संघर्ष के हित में आगे बढ़ सके। (ग्रिफिथ के अनुवाद के आधार पर)

मन्त्र में पहले पृथिवी की उस समय की स्थिति का वर्णन है जब चन्द्रमा पृथिवी से बाहर निकलने को उन्मुख हुआ। पृथिवी के अन्तः में उस समय अत्यन्त उच्च ताप व दाब था जो बाहर निकल कर सम हो जाने का मार्ग खोज रहा था। परन्तु पृथिवी की ऊपरी परतें, जो अपेक्षाकृत ठण्डी थीं, उसके मार्ग में अवरोध उत्पन्न कर रही थीं। इस प्रकार दोनों ओर से उग्र संघर्ष की स्थिति थी, जिससे पृथिवी कम्पायमान हो रही थी। उस समय पृथिवी के कम्पनों को शान्त करने की अत्यन्त आवश्यकता थी। ऐसे समय में अचानक पृथिवी की ऊपरी परतों का अवरोध, सूर्य की प्रचण्ड किरणों की ऊष्मा तथा पृथिवी के अपनी कक्षा में सूर्य के निकटतम बिन्दु पर पहुंच जाने तथा इस समय सूर्य का गुरुत्वाकर्षण बल अधिक तीव्र हो जाने से टूट गया तथा चन्द्रमा का बृहत् पिण्ड एक विशाल, सैंकड़ों मील चौड़े बेलनाकार स्तम्भ के रूप में बाहर निकला और इस प्रकार **एकपदी विश्पला** अर्थात् पृथिवी का पैर कट कर उससे अलग हो गया। पृथिवी, इस भयंकर विस्फोट के फलस्वरूप असन्तुलित हो गयी, जैसे एक उड़ते हुए पक्षी का एक पंख कट जाने से वह असन्तुलित हो जाता है। ऐसी दशा में, मन्त्र में बताया गया है कि अश्विनी देवों ने जो प्रकृति में सन्तुलन की शक्तियां हैं, तुरन्त ही विश्पला (पृथिवी) को लोहे की जङ्घा लगा दी जिससे वह स्थिर हो गयी तथा अपनी कक्षा में आगे बढ़ने तथा अपने आन्तरिक ताप एवं दाब को सन्तुलित रखने में समर्थ हो गयी।

मन्त्र का तात्पर्य वह है कि चन्द्रमा के निकल जाने पर पृथिवी में सैंकड़ों मील चौड़ा तथा लगभग दो हजार मील लम्बा एक विशाल आकार का कुंआ बन गया, जो पृथ्वी के केन्द्र भाग में विद्यमान तरल लोहे से लगभग आधा भर गया, जिससे पृथ्वी के केन्द्र भाग पर दोनों ओर से दबाव सन्तुलित हो गया। यह तरल लोहे का स्तम्भ कालान्तर में ठण्डा होकर ठोस हो गया जो पृथिवी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में बरमूड़ा त्रिकोण के क्षेत्र में विश्पला (पृथिवी) की जङ्घा के समान अब भी विद्यमान है। इस अति विशाल लौह स्तम्भ की गुरुत्वाकर्षण शक्ति ही सम्भवत: वह दैत्य है जो उस क्षेत्र में आने वाले जहाजों तथा वायुयानों को तिरछी दिशा से आक्रमण पर असन्तुलित कर देता है और समुद्र में खींच कर मानों लील जाता है। वेद से प्राप्त इस तथ्य का सन्यापन उस स्तम्भ के विशाल आकार तथा उसकी गुरुत्वाकर्षण शक्ति की गणना से होता है जो आगे लेख में बतायी गयी है तथा जो चन्द्रमा का व्यास केवल आधा मानकर की गयी है, क्योंकि यजुर्वेद के एक मन्त्र में यह बताया गया है कि चन्द्रमा का आकार उसके जन्म के समय इतना नहीं था, जितना आजकल है। उसने अपने जन्म के पश्चात् बहुत सा पदार्थ विशाल अन्तरिक्ष में आकर्षित किया जो ग्रहों के जन्म के समय से ही अन्तरिक्ष में बिखरा पड़ा है। इस समय चन्द्रमा का व्यास लगभग २००० मील है। अत: उसके जन्म के समय उसका व्यास १००० मील मानकर ही लौह-स्तम्भ के आकार आदि की गणना की गयी है। लेख में लौह-स्तम्भ का समुद्र-तल तथा जहाजों और वायुयानों पर प्रभाव का वर्णन भी दिया गया है।

स्तम्भ के आकार का अनुमान-हमारी पृथिवी का व्यास (diameter) लगभग ८०००, अर्थात् उसकी त्रिज्या (radius) लगभग ४००० मील। आधुनिक वैज्ञानिक अनुमानों के अनुसार पृथिवी का केन्द्र भाग जिसकी त्रिज्या २००० मील है अत्यन्त उच्च ताप पर अधिकांशत: तरल लोहा तथा कुछ अंश में अन्य भारी धातुओं से बना है, जिसका आपेक्षित घनत्व लगभग ८ है। उसके ऊपर २००० मील तक अन्य धातुओं तथा अन्य तत्त्वों से बने पदार्थों का आवरण है, जिसका औसत घनत्व लगभग ५ है। मन्त्र में कहा गया है कि अश्विनी देवों ने विश्पला को तुरन्त लोहे की जङ्घा लगा दी जिससे सिद्ध होता है कि चन्द्रमा का पदार्थ २००० मील की गहराई से पृथिवी में से निकला, जिससे तरल लोहा, पृथिवी के केन्द्रीय भाग से, दूसरी ओर के दबाव को सन्तुलित करने के लिये, चन्द्रमा के निष्कासन से रिक्त हुए स्थान पर भर गया। पृथिवी के केन्द्रीय भाग पर इस प्रकार एक ओर २००० मील तक घनत्व ५ का पदार्थ है तथा दूसरी ओर घनत्व ८ का लोह का स्तम्भ। इस तथ्य से सन्तुलन के लिये लोहे के स्तम्भ की लम्बाई स्पष्टत: १२५० मील होनी चाहिये। पृथिवी के आन्तरिक भाग में सूर्य विकिरण के अवशोपित होने से तापमान बढ़ने तथा पृथिवी की ऊपरी परतों के ठण्डा होकर सिकुड़ने से पृथिवी के अन्त: में दाब बढ़ने से इस स्तम्भ की लम्बाई अधिक हो सकती है। इस प्रकार १२५० मील स्तम्भ की न्यूनतम लम्बाई ही है, जो अन्य गणनाओं के लिये उपयोग में ली गयी है।

अब इस स्तम्भ की मोटाई जानने के लिये चन्द्रमा द्वारा रिक्त किया गया आयतन जानना आवश्यक है जो चन्द्रमा के आयतन के बराबर ही होगा। चन्द्रमा की त्रिज्या ५०० मील तथा बेलनाकार स्तम्भ की लम्बाई १२५० मील मानने पर उसकी त्रिज्या ३७५ मील, अर्थात् व्यास ७५० मील निकलता है। इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि पृथिवी से चन्द्रमा के निष्कासन के पश्चात् पृथिवी के सन्तुलन के लिये ७५० मील व्यास तथा १२५० मील लम्बाई का एक विशाल लौह-स्तम्भ पृथिवी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के केन्द्रीय भाग के ऊपर, जिसकी त्रिज्या २००० मील है, निर्मित हुआ। इसी लौह स्तम्भ के निर्माण को वेदमन्त्र में अश्विनी देवों द्वारा विश्पला (पृथिवी) को लोहे की जङ्घा लगाने के रूप में वर्णित किया गया है। जहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि लौह-स्तम्भ का यह आकार न्यूनतम है, क्योंकि उसकी लम्बाई-चौड़ाई की गणना से हमने चन्द्रमा की त्रिज्या वर्तमान त्रिज्या का आधा तथा इस प्रकार उसका आयतन वर्तमान आयतन का केवल १/८ माना है क्योंकि आयतन त्रिज्या के घन के समानुपाती होता है।

लौह-स्तम्भ का समुद्र-तल पर प्रभाव-समुद्र में चन्द्रमा के आकर्षण से ज्वार उठते हैं जबकि चन्द्रमा पृथिवी से लगभग २ लाख मील दूर है। परन्तु यह विशाल लौह-स्तम्भ का गुरुत्व-केन्द्र समुद्र की सतह से केवल १३७५ मील नीचे है तथा उसका घनत्व भी पृथिवी के सामान्य पदार्थ से ३ अधिक है। यदि उसका घनत्व पृथिवी के सामान्य पदार्थ जैसा ही होता है तो उसके गुरुत्वाकर्षण का समुद्रतल पर कुछ भी प्रभाव न होता। अत: यह ३ घनत्व विशाल स्तम्भ की लौह-स्तम्भ के गुरुत्वाकर्षण प्रभाव के लिये उत्तरदायी है। चूंकि गुरुत्वाकर्षण बल दूरी के वर्ग के विलोम अनुपात से क्षीण होता जाता है, अत: चन्द्रमा का आकर्षण बल, खम्भे के आकर्षण बल की तुलना में, गणना करने पर (१ : १५००) के अनुपात से अत्यन्त न्यून पड़ता है। इसका तात्पर्य यह है कि खम्भे का आकर्षण समुद्रतल पर चन्द्रमा के आकर्षण से १५०० गुणा अधिक है। इतने आकर्षण से लौह-स्तम्भ के क्षेत्र में समुद्रतल समतल न रहकर नतोदर (Concave) हो जायेगा जिससे उस क्षेत्र के निकट आता हुआ जहाज स्वत: ही उस लौह-स्तम्भ की ओर अग्रसर हो जायेगा, जैसे तेज ढाल पर साइकिल निरन्तर गतिशील होती जाती है।

लौहे-स्तम्भ का जलयानों पर प्रभाव-ये प्रभाव कई प्रकार के होंगे-जो नीचे दिये गये हैं

१. चूंकि स्तम्भ मुख्यत: लोहे का बना है, अत: पृथिवी की चुम्बकीय शक्ति के ऊर्ध्वभाग (vertical component) से वह चुम्बकत्व ग्रहण कर लेगा तथा उसके चुम्बकीय प्रभाव से जलयान का दिशा सूचक यन्त्र प्रभावित होगा, जिससे जलयान अपने मार्ग से भटक जायेगा।

२. अपने मार्ग से भटककर जलयान उन सामुद्रिक धाराओं में बह जायेगा, जो तीव्र वेग से उस विशाल गड्ढे की ओर जा रही हैं, जो लौह स्तम्भ के आकर्षण ने वहाँ समुद्रतल में बनाया है।

३. पृथिवी के गुरुत्वाकर्षण के साथ उस क्षेत्र में लौह-स्तम्भ के अतिरिक्त आकर्षण के कारण जहाज का भार बढ़ जायेगा, जिससे जहाज का अधिक हिस्सा पानी में डूब जायेगा।

४. लौह-स्तम्भ का गुरुत्वाकर्षण पृथिवी के केन्द्र की ओर न होकर उसके गुरुत्व केन्द्र की ओर होगा, जो पृथिवी के केन्द्र से २६२५ मील ऊपर है। इस तिरछे आकर्षण के कारण जो काफी प्रबल है (और उसकी गति को गड्ढे की ओर निरन्तर बढ़ा रहा है) जहाज टेढ़ा होकर असन्तुलित हो जायेगा और अन्तत: तीव्र वेग से समुद्र में समा जायेगा। बड़े जहाजों पर लौह-स्तम्भ का आकर्षण भी उतना ही बड़ा होगा।

लौह-स्तम्भ का वायुयानों पर प्रभाव- उपर्युक्त सभी प्रभाव (नं०२ को छोड़कर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायुयानों पर भी उसी प्रकार होंगे जैसे जलयानों पर। लौह-स्तम्भ के अतिरिक्त गुरुत्वाकर्षण के कारण वायुयान का भार उस क्षेत्र में अचानक बढ़ जायेगा, तथा उसकी दिशा तिरछी होने के कारण वायुयान पूरी तरह असन्तुलित हो जायेगा तथा वायुमण्डल का दाब उसे किसी प्रकार भी सन्तुलित न रख सकेगा। ऐसी स्थिति में वायुयान का नीचे समुद्र में गिरना ही उसकी नियति होगी। जैसा सन् ६० के दशक में फ्लोरिडा की फ्लाइट १९ के दुर्घटनाग्रस्त होने के विषय में लेख के अन्त में स्पष्ट किया गया है।

पत्रिका के २ मार्च के लेख में छपे तथ्यों का स्पष्टीकरण-

पृथिवी के अन्दर एक विशाल लौह-स्तम्भ के छिपे होने से जहाजों और वायुयानों के समुद्र में डूबने का कारण तो स्पष्ट होता ही है, २ मार्च के पूर्व उद्धृत लेख में छपे कुछ अन्य तथ्यों का भी स्पष्टीकरण होता है, जो निम्न प्रकार है-

कोलम्बस के प्रेक्षण-

(१). **कम्पास का कम्पन** : यह स्पष्ट ही लौह-स्तम्भ के चुम्बकीय प्रभाव के कारण हुआ होगा। जहाज के चलने तथा उसकी दिशा में सूक्ष्म परिवर्तन के कारण चुम्बकीय प्रभाव से न्यूनाधिक्य होने से दिशा-सूचक की चुम्बकीय सूई (Magnetic needle) में कम्पन होना स्वाभाविक है।

(२). **प्रकाश दिखायी देना** : यह सर्वविदित है कि पृथिवी के ऊपरी तथा दक्षिणी चुम्बकीय ध्रुवों पर उनके आकर्षण से वायुमण्डल में विद्युत्-संचारित कणों के इकट्ठा होने पर उनकी पारस्परिक क्रियाओं से प्रकाश उत्पन्न होता है, जिसे उत्तरी प्रकाश (aurora borealis) तथा दक्षिणी प्रकाश (aurora australis) कहते हैं। इसी प्रकार की घटना बरमूडा त्रिकोण के लौह स्तम्भ के चुम्बकीय ध्रुव पर कुछ अंशों में घटित होना पूर्णतया सम्भव है। यही प्रकाश कोलम्बस को दिखायी दिया होगा।

अन्य तथ्य:

(१). **समुद्र में पानी का तीव्र वेग**-लौह स्तम्भ के तीव्र आकर्षण से उसके ऊपर का समुद्रतल नतोदर (Concave) हो जाने के कारण भूमध्य क्षेत्र के (पृथिवी की घूर्णन गति के कारण) उन्नत तल के पानी का नतोदर भाग की ओर तीव्र वेग से बहना स्वाभाविक ही है। इसी बहाव के कारण समुद्री धाराएं बनती हैं। इसी के कारण इस क्षेत्र में अति वेगवती धारा गल्फ स्ट्रीम पायी जाती है। इस धारा के वेग के कारण ही सम्भवत: कई जहाज भी स्वत: ही उस विशाल गड्ढे की ओर अग्रसर हो गये होंगे जैसा ऊपर भी संकेत किया जा चुका है।

(२) **मीथेन गैस के बुलबुलों का उद्भव :** बरमूडा त्रिकोण के क्षेत्र में मीथेन गैस के बुलबुले असाधारण रूप से निकलने का कारण भी समझा जा सकता है यदि हम लौह-स्तम्भ के निर्माण के बाद सन्तुलन की शक्तियों के कार्यों पर विचार करें। चन्द्रमा के निष्कासन तथा उसके फलस्वरूप लौह-स्तम्भ के निर्माण के समय उस २००० मील गहरे कुएं का लगभग ७५० मील लम्बा ऊपरी भाग रिक्त रह गया था। यह भाग भी निरन्तर कार्यशील सन्तुलन की शक्तियों के कालान्तर में पृथिवी के ऊपरी भाग के पदार्थ से लगभग पूरा भर दिया। लौह-स्तम्भ के निर्माण से पृथिवी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केन्द्रीय भाग में जो आयतन रिक्त हुआ, वह दोनों भागों के परस्पर आकर्षण से पृथिवी के सिकुड़ने पर, तथा साथ ही ऊपरी परतों के ठण्डा होने पर पूर्ण हो गया, जिससे पृथिवी में चारों ओर दाब बढ़ा तथा कुएं का रिक्त भाग भी काफी संकुचित हो गया। उसके पश्चात् पृथिवी के आन्तरिक दाव तथा उसके कम्पनों व विस्फोटों के कारण उस कुएं का शेष ऊपरी भाग भी चारों ओर के पदार्थ से, जो अर्धघन अवस्था में था, लगभग पूरा भर गया। इस कार्य में सम्भवत: सैकड़ों वर्ष लगे होंगे। जो कुछ मीलों का भाग शेष रहा वह घनघोर मेघों के बरसने पर चारों ओर से बहकर आयी हुई मिट्टी व कीचड़ से भर गया, जिसमें कालान्तर में घने वृक्ष उग आये तथा सहस्रों वर्षों में सारा क्षेत्र एक अत्यन्त घने जंगल के रूप में परिवर्तित हो गया। बादलों के बरसने का समय समाप्त होने पर जब समुद्र बन गये, तो वह सारा जंगल समुद्र में डूब गया तथा उसकी करोड़ों टन वनस्पति की सम्पदा पानी में सड़-सड़ कर मीथेन गैस बनाती रही, जो बुलबुलों के रूप में आज तक भी इस क्रिया की साक्षी बन रही है।

उपर्युक्त सभी तथ्यों की व्याख्या लौह-स्तम्भ की उपस्थिति से सन्तोषजनक रूप से हो जाने के कारण, अब यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि बरमूडा त्रिकोण के क्षेत्र में जहाजों और वायुयानों के समुद्र में गिर कर विलुप्त हो जाने का कारण विशाल लौह-स्तम्भ की अदृश्य गुरुत्वाकर्षण-शक्ति ही है। यह अदृश्य शक्ति ही निश्चयपूर्वक वह भयंकर दैत्य है जो पिछले लगभग ५०-६० वर्षों से उस क्षेत्र से होकर निकलने वाले सभी प्रकार के यानों को उदरस्थ करता रहा है, जिसकी सम्भावना इस निबन्ध में पहले व्यक्त की जा चुकी है।

लौह-स्तम्भ की उपस्थिति के प्रमाण तथा उसकी पृथिवी पर स्थिति:

लेख के अन्त में अब इस लौह-स्तम्भ की उपस्थिति के प्रमाण-स्वरूप कुछ तथ्य प्रस्तुत किये जाते हैं-

१. लौह-स्तम्भ के चुम्बकीय प्रभाव के कारण चुम्बकीय दिशा-सूचक यन्त्र का दिग्भ्रमित हो जाना या कम्पन करना, जैसा उस क्षेत्र के पास से निकलते हुए कोलम्बस आदि नाविकों का अनुभव है तथा जैसी साठ के दशक की फ्लोरिडा की दुर्घटनाग्रस्त फ्लाइट १९ के चालकों की रेडियो रिपोर्ट है।

२. बरमूड़ा त्रिकोण तथा उसके निकटस्थ क्षेत्र में गुरुत्वाकर्षण शक्ति का सामान्य से अधिक होना। मैक्सिको की खाडी के क्षेत्र में गुरुत्वाकर्षण-शक्ति का अधिक होना वैज्ञानिक सर्वेक्षणों से सिद्ध हो चुका है, तथा विज्ञान की पुस्तकों में भी वर्णित है।

३. इस क्षेत्र में समुद्री धारा गल्फ स्ट्रीम का पाया जाना और उसका कर्क रेखा के पास बहुत संकुचित और तीव्र हो जाना, जैसा ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी द्वारा सम्पादित एटलस में दिखाया गया है। इससे सिद्ध होता है कि वही स्थान जहाँ गल्फ स्ट्रीम कर्क रेखा को पार करती है, समुद्रतल में लौह-स्तम्भ की गुरुत्वाकर्षणशक्ति से बना नतोदर (Concave) तल का सबसे अधिक गहराई का स्थान है, तथा लौह-स्तम्भ की स्थिति का भी। समुद्री धाराओं के **संलग्न मानचित्र-एक** को देखने पर पता चलता है कि गल्फ स्ट्रीम भूमध्य रेखा के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्नत तल के भाग से उत्तर-पश्चिम दिशा की ओर बढ़ती हुई युकाटन प्रायद्वीप के पास से दिशा बदलकर उत्तर-पूर्व दिशा की ओर मुड़ती है तथा कर्क रेखा को पार करती है। तत्पश्चात् उसी दिशा में चलती हुई क्यूबा और फ्लोरिडा प्रायद्वीप के बीच से निकलती है। इस प्रकार यूकाटन और फ्लोरिडा प्रायद्वीपों के बीच मैक्सिको की खाड़ी में वह स्थान जहाँ गल्फ स्ट्रीम कर्क रेखा को पार करती है, समुद्रतल का सबसे गहरा तथा लौह-स्तम्भ की स्थिति का स्थान निश्चित होता है। यूकाटन प्रायद्वीप से इस धारा के दिशा बदलने का कारण भी सम्भवत: इस स्थान के तल की गहराई ही है।

८. लौह-स्तम्भ की इस स्थान पर उपस्थिति का एक अन्य विश्वसनीय प्रमाण यूकाटन प्रायद्वीप के निकट मैक्सिको की खाड़ी के तल में पाया जाने वाला वह विशाल 'चिक्सुलब क्रेटर' है जिसे अब तक निरी कल्पना के आधार पर किसी क्षुद्र ग्रह की टक्कर से बना हुआ माना जाता रहा है। (राजस्थान पत्रिका, २० अप्रैल सन् २००८, पृष्ठ २)। वास्तव में यह क्रेटर उस विशाल कुएं का अन्तिम शेषांश होना चाहिये जो चन्द्रमा के पृथिवी से निष्कासन के फलस्वरूप बना है तथा जिसका आधे से अधिक भाग लगभग १२५० मील तरल लोहे से भरकर लौह-स्तम्भ के रूप में परिवर्तित हो गया था तथा जिसका शेष भाग सैंकड़ों वर्षों से पृथिवी के सामान्य पदार्थ से भरकर तथा कालान्तर में एक विशाल जंगल के रूप में विकसित होकर समुद्र में डूब गया था, जैसा इस लेख में पीछे वर्णित है।

साठ के दशक में प्रसिद्ध फ्लाइट १९ की दुर्घटना का स्पष्टीकरण तथा लौह-स्तम्भ की स्थिति का सत्यापन :-

लौह-स्तम्भ की इस स्थान पर उपस्थिति से फ्लोरिडा की फ्लाइट १९ के दुर्घटनाग्रस्त हो जाने का कारण भी स्पष्ट होता है। फ्लाइट के प्रारम्भ में यान पर लौह-स्तम्भ के गुरुत्व केन्द्र के आकर्षण की दिशा पृथिवी के लगभग लम्बवत् थी, क्योंकि फ्लोरिडा लौह-स्तम्भ के स्थान से अधिक दूर नहीं है। परन्तु ज्यों-ज्यों वायुयान उत्तर दिशा की ओर बढ़ता गया, स्तम्भ के आकर्षण की दिशा निरन्तर अधिक तिरछी होती गयी, जिससे यान का सन्तुलन बिगड़ गया तथा वह समुद्र के गिर कर लुप्त हो गया जैसा **संलग्न चित्र दो** से स्पष्ट होगा।

लेखक का विश्वास है कि यदि आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों से सीसमिक (भू-कम्पीय) तरंगों के द्वारा उपरोक्त स्थान की खोज की जाये तो लौह-स्तम्भ की उपस्थिति का पता लगाया जा सकता है। लौह-स्तम्भ की उपस्थिति का सत्यापन हो जाने पर, यह आधुनिक विज्ञान की एक उपलब्धि तो होगी ही, वेद-ज्ञान के अपौरुषेय होने का, अन्य अनेक प्रमाणों के साथ, एक और सशक्त प्रमाण होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानचित्र-एक

पृथ्वी के केन्द्र से होकर आर पार जाने वाले तल का चित्र, जिसमें दोनों दिशायें (केन्द्र से लौह-स्तम्भ (23½° अक्षांश, 85° देशान्तर) की तथा केन्द्र से बरमूडा (33°, 65°) की स्थित हैं। इन दोनों दिशाओं के बीच का कोण 25° मापा गया है।

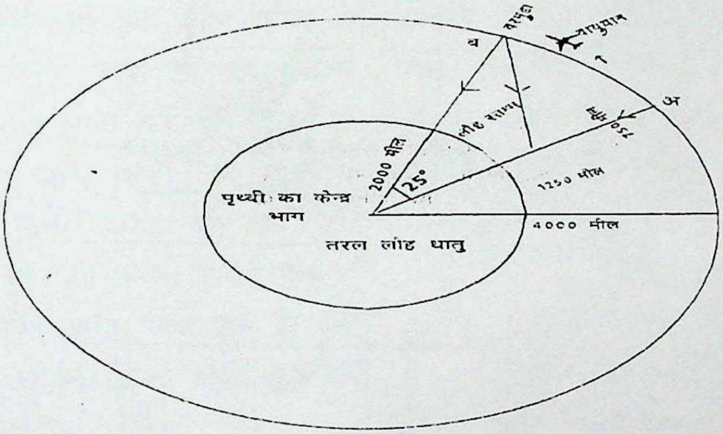

विभिन्न दिशाओं में लौह-स्तम्भ के गुरुत्वाकर्षण का गुणात्मक चित्रण। बिन्दु "अ" पर इस आकर्षण की दिशा पृथ्वी के केन्द्र की ओर ही है, जबकि बिन्दु "ब" पर पृथ्वी के केन्द्र की ओर न होकर पर्याप्त तिरछी है। इस तिरछे आकर्षण के कारण ही वायुयान का सन्तुलन बिगड़ जाता है तथा यह समुद्र में गिर कर लुप्त हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानचित्र-दो

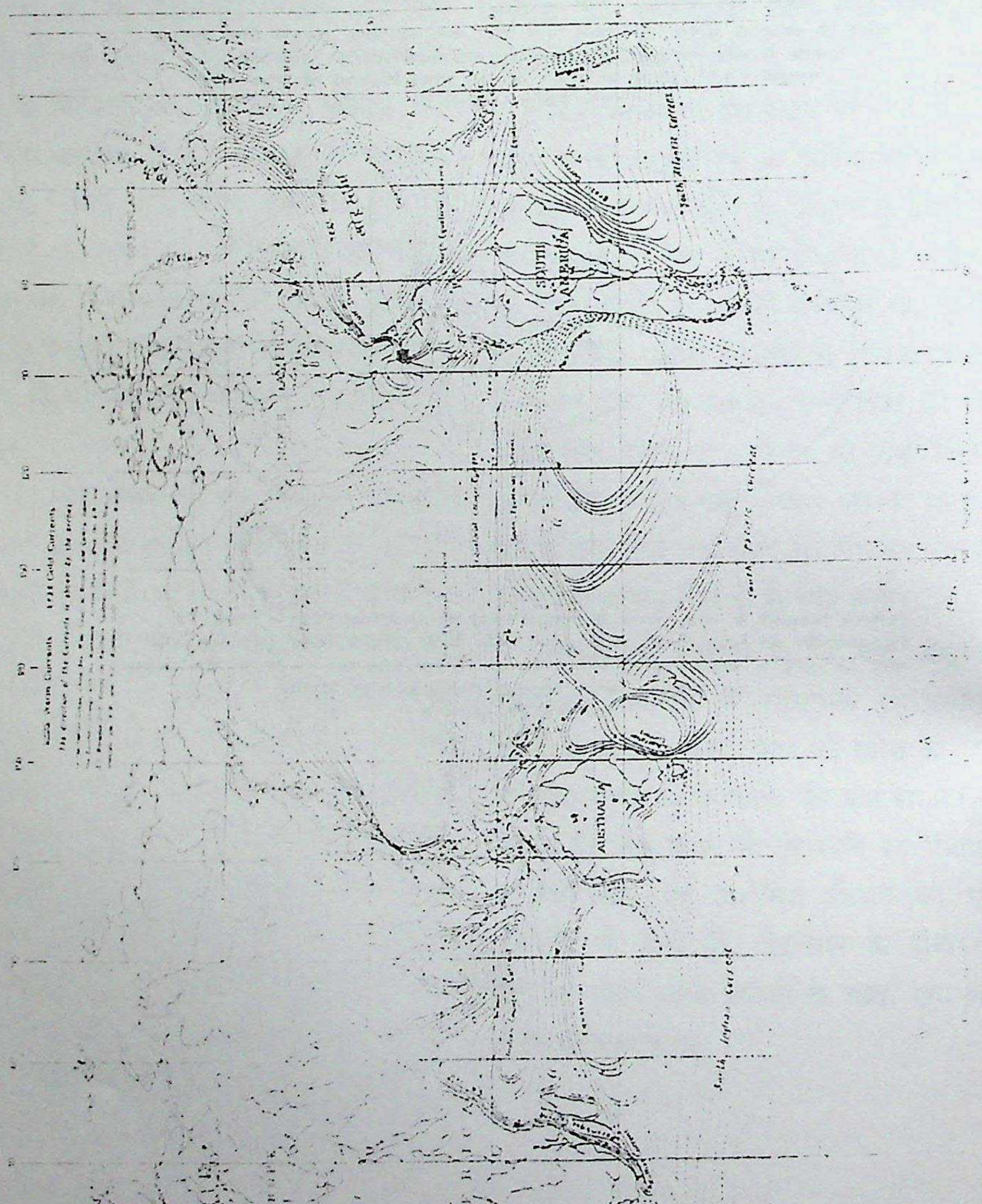

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotiḥ
ISSN 2277-4351

Vol.1, No.2 (55- 61) Jan-jun 2013

शतपथ ब्राह्मण में अंक-विमर्श : एक विश्लेषण

अपर्णा धीर, संयोजिका, परियोजना विभाग राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, जनकपुरी, नई दिल्ली
dhir.aparna@gmail.com

अंक मानव-जीवन का अभिन्न अङ्ग है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी दिनचर्या में अनेक बार अंकों अथवा संख्याओं का प्रयोग करता है, जैसे- किसी वस्तु की मात्रा एवं नाप-तोल में, घर से किसी भी स्थान की दूरी जानने में, यहाँ तक कि समय आदि का ज्ञान भी संख्याओं पर निर्भर करता है। इन सभी आवश्यक्ताओं की पूर्ति केवल गणना द्वारा ही सम्भव है, जिसका आधार अंक-ज्ञान है। इन्हीं प्रश्नों के उत्तर खोजते-खोजते अंकों का जन्म हुआ।

आज सभी 'वैदिक गणित' शब्द का प्रयोग प्राय: वेदकालीन प्रचलित गणित के सन्दर्भ में करते हैं। वैदिक काल में गणित का महत्त्व एवं उपयोगिता सर्वविदित है - 'तद्वद् वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम्'। गणित का मूल आधार अंक अथवा संख्या है। वैदिक ऋषि के अंक-विद्या के प्रति जागरूक होने का अनुमान ऋक्-संहिता में प्राप्त संख्याओं 'नवनवति = 99, सहस्र = 1000, त्रीणिशतानि त्रिसहस्राणि त्रिंशश्च नव च = 3339' से लगाया जा सकता हैं। इसके पश्चात् यजुर्वेद की संहिताएँ इस सन्दर्भ में विशेषत: द्रष्टव्य हैं, जहाँ एक से परार्ध पर्यन्त अंकों का भण्डार है। एक से परार्ध पर्यन्त अंकों को लिखने से वैदिक ऋषि की तीक्ष्ण बुद्धि का दर्शन होता है, अर्थात् 1, 10, 100, 1000, 10,000, 1,00,000, 10,00,000 इत्यादि से शून्य की भूमिका ज्ञात होती है। भारत शून्य का अविष्कर्ता है, यह सुविदित है। इसकी झलक वैदिक ग्रन्थों में मिलती है। प्राचीन ऋषियों के अनुसार संख्याओं को प्रकट करने के लिए शून्य अत्यन्त सहायक है।

शतम् = 100
सहस्र = 100 × 10 = 1000
अयुत = 1000 × 10 = 10,000
नियुत = 10,000 × 10 = 1,00,000

यजुर्वेदीय संहिताओं की परम्परा के समान शुक्लयजुर्वेदीय शतपथ ब्राह्मण अंकों के विवेचन से परिपूर्ण है। यहाँ मास, अर्धमास, ऋतुओं, दिनों, नक्षत्रों, मुहूर्तों, प्रजापति, ऋचाओं, आदित्य, लोक, चन्द्रमा, दिशाओं, संवत्सर के विभिन्न अङ्गों एवं इटों के सन्दर्भ में अनेक संख्याएँ दी गई हैं। इसी ब्राह्मण के दशम काण्ड के चतुर्थ अध्याय के द्वितीय ब्राह्मण में इन्हीं संख्याओं का वर्णन पुन: मिलता है।

शतपथ ब्राह्मण में वर्णित संख्याएँ

एक	1
प्रथमा	पहला
द्वे, द्वा	2
द्वितीया	दूसरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रय	3
तृतीया	तीसरा
चत्वारि, चतस्त्र	4
चतुर्थे	चौथा
पञ्च	5
पञ्चमी	पाँचवीं
षड्, षष्ठ	6
सप्त	7
अष्ट	8
नव	9
दश	10
एकादश	11
द्वादश	12
त्रयोदश	13
चतुर्दश	14
पञ्चदश	15
षोडश	16
सप्तदश	17
अष्टादश	18
नवदश, एकया न विंशति:	19
संविश	20
एकविंशति:	21
द्वाविंशति:	22
त्रयोविंशति:	23
चतुर्विंशति:	24
पंचविंशति:	25
षड्विंशति:	26
सप्तविंशति:	27
अष्टाविंशति:	28
एकया न त्रिंशत्	29

त्रिंशत्	30
एकत्रिंशत्	31
त्रयस्त्रिंशत्	33
चतुस्त्रिंशत्	34
पञ्चत्रिंशत्	35
षट्त्रिंशद्	36
चत्वारिंशत्	40
एकचत्वारिंशत्	41
पञ्चचत्वारिंशत्	45
सप्तचत्वारिंशत्	47
अष्टाचत्वारिंशत्	48
पञ्चाशत्	50
षष्टि:	60
एकसप्तति:	71
द्वासप्तती	72
द्वाभ्यां नाशीति:	78
अशीति:	80
नवती	90
द्वाभ्यां न शतम्	98
शतम्	100
एकशत्	101
विंशतिशतम्	120
अष्टत्रिंशत् शतम्	138
चतु:चत्वारिंशत् शतम्	144
अशीतिशतम्	180
द्वेऽएकष्टे शते	261
षष्टिश्च त्रीणि च शतान्य	360
पञ्चभि: न चत्वारि शतानि	395

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्त च शतानि विंशति	720
सहस्र	1000
चत्वारि सहस्र	4000
अष्ट सहस्र	8000
दश च सहस्राण्यष्टौ च शतानि	10800
द्वादश सहस्र	12000
अन्त	1,00,00,00,000
परार्ध	10,00,00,00,000

विश्व में तीन प्रकार की संख्याओं का प्रयोग होता है, (1) गणनात्मक संख्याएँ जैसे - एक, दो, तीन आदि; (2) क्रम संख्याएँ जैसे -प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि; (3) गुणन संख्याएँ जैसे - समान, दुगुना, तिगुना आदि।[19] वैदिक ऋषि के गणनात्मक एवं क्रम संख्याओं से परिचित होने का ज्ञान शतपथ ब्राह्मण की उपर्युक्त तालिका द्वारा किया जा सकता है।

शतपथ ब्राह्मण में दीर्घ संख्याओं को बताने की शैली की ओर भी ऋषि ध्यान आकृष्ट करते हैं। (1) पहली विधि - अंकों को शब्दों में लिखना (2) दूसरी विधि जैसे- 10800 = दश च सहस्राण्यष्टौ च शतानि, 720 = सप्त च शतानि विंशति [Thousand-Hundred-Ten-Unit number system] (3) तीसरी विधि जैसे- 138 = अष्टत्रिंशत् शतम्, 144 = चतुःचत्वारिंशत् शतम् [Unit-Ten--Hundred-Thousand number system] (4) चौथी विधि जैसे- 98 = द्वाभ्यां न शतम्, 395 = पञ्चभिः न चत्वारि शतानि। दीर्घ अंकों की इस प्रकार की अभिव्यक्ति आधुनिक गणित में विख्यात 'Decimal Place Value System' की ओर इंगित करता है।[20] इसके अतिरिक्त शतपथ में स्पष्टतः एक और दस को छोटी संख्या तथा अन्त एवं परार्ध को बड़ी संख्या माना है।[21] यहाँ परार्ध के माध्यम से आधुनिक गणित में प्रचलित One Trillion तक की गणना को प्रस्तुत किया गया है।[22] ऋषि का यह कथन वैदिक काल में अंक-ज्ञान के विकास को दर्शाता है एवमेव यह सभी तथ्य न केवल अंक-ज्ञान के प्रारम्भिक चरण का उल्लेख करते हैं अपितु अंक-गणना की श्रृंखला (Counting-Series) में भारतीयों के योगदान की पुष्टि भी करते हैं।[23]

इन सभी संख्याओं के अतिरिक्त शतपथ ब्राह्मण में गणित के कुछ सिद्धान्त भी प्रतिपादित हैं। क्षुद्र-मुहूर्तों के कथन द्वारा गुणा[24] के सिद्धान्त का -

क्षिप्र = 10800 × 15 = 162000

एतर्हि = 162000 × 15 = 2430000

इद = 2430000 × 15 = 36450000

प्राण = 36450000 × 15 = 546750000 इत्यादि।

तथा पूर्णमासी एवं अमावस्या के उल्लेख द्वारा जमा[25] के सिद्धान्त का परिचय दिया है-

15 वर्षों = 360 पूर्णमासी एवं अमावस्या

15 वर्ष = 180 पूर्णमासी + 180 अमावस्या

1 वर्ष = 180 ÷ 15 = 12 पूर्णमासी

1 वर्ष = 180 ÷ 15 = 12 अमावस्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी ब्राह्मण के एक स्थान पर गणित के भाग-सिद्धान्त के बीज भी दिखाई पड़ते हैं, यहाँ वर्णित है कि इन्द्र और विष्णु ने एक हज़ार गायों को तीन भागों में विभाजित किया, तो एक शेष रह गई।[6]

$$1000 \div 3 = 333.333$$

अथवा

$$1000 / 3 = 333 \times 1/3$$

शतपथ ब्राह्मण में अयुज और युग्म स्तोमों में मिलने वाले अंको द्वारा गणित के एक और पक्ष का प्रतिपादन किया गया है। कथित है कि अयुज स्तोम तैंतिस तक तथा युग्म स्तोम अड़तालीस तक जाता है।[7] पाश्चात्य विद्वान् एगलिङ्ग अयुज स्तोम का अर्थ uneven मानते हुए, उसका कथन इस प्रकार करते हैं 1-3, 3-5, 5-7, 7-9, 9-11, 11-13, 13-15, 15-17, 17-19, 19-21, 21-23, 23-25, 25-27, 27-29, 29-31, 31-33 अर्थात् ऐसे स्तुति मन्त्र जो दो-दो (म्दल्ज्नृ) के क्रम से निरन्तर गाये जाते हो।[8] वहीं पण्डित गंगाप्रसाद उपाध्याय ने शतपथ ब्राह्मण के हिन्दी अनुवाद में अयुज का कथन करते हुए कहा है कि जिसके जोड़े न हों जैसे 3, 5, 7, 9 इत्यादि।[9] इसी प्रकार पुनः एगलिङ्ग युग्म स्तोमों को िनह शब्द द्वारा व्यक्त करते हैं। उनके अनुसार ऐसे स्तुति मन्त्र जो चार-चार (Quadruplets) के क्रम से निरन्तर गाये जाते हो अर्थात् 4-8, 8-12, 12-16, 16-20, 20-24, 24-28, 28-32, 32-36, 36-40, 40-44, 44-48।[10] इस विषय में पण्डित गंगाप्रसाद उपाध्याय कहते हैं कि अयुज का उल्टा जैसे 2, 4, 6, 8, 10 इत्यादि युग्म कहलाता है।[11] शतपथ ब्राह्मण में वर्णित अयुज एवं युगम का विषय भले ही स्तोमों की श्रेणी में आता है, तथापि यह गणित-विषय के अन्तर्गत आने वाले odd एवं even वर्णों की साम्यता दिखाता है। प्रायः 'अयुज' एवं 'युग्म' शब्दों को odd तथा even वर्णों के रूप में विद्वानों द्वारा ग्रहण किया गया है।[12] द्रष्टव्यः है कि इन अयुज और युग्म स्तोमों में प्रत्येक परवर्ती संख्या की पुनरावृत्ति अगली संख्या की पूर्ववर्ती होकर होती है। संख्याओं की इस पुनरावृत्ति से उत्पन्न हुए कई रोचक गणितीय संयोजनों को डॉ. कृष्ण लाल ने अपने शोध-पत्र '*वेदों में गणित के कुछ तत्त्व*' में सम्मिलित किया है।[13] उन्होंने इन संयोजनों को वाजसनेयी संहिता के मन्त्र 18.24 एवं 18.25 के आधार पर प्रस्तुत किया है।

<u>अयुज स्तोम</u>

1 × 3 = 3	15 – 3 = 12	1 + 3 = 4
3 × 5 = 15	35 – 15 = 20; 20 – 12 = 8	3 + 5 = 8 पुनः यहाँ 4 4
5 × 7 = 35	63 – 35 = 28; 28 – 20 = 8	5 + 7 = 12 का अन्तर है
7 × 9 = 63	99 – 63 = 36; 36 – 28 = 8	7 + 9 = 16
9 × 11 = 99 इत्यादि।	इन सबमें 8 8 का अन्तर है	9 + 11 = 20

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युग्म स्तोम

4 × 8 = 32	96 − 32 = 64	4 + 8 = 12
8 × 12 = 96	192 − 96 = 96; 96 − 64 = 32	8 + 12 = 20 पुन: यहाँ 8-8
12 × 16 = 192	320 − 192 = 128; 128 − 96 = 32	12 + 16 = 28 का अन्तर है
16 × 20 = 320	480 − 320 = 160; 160 − 128 = 32	16 + 20 = 36
20 × 24 = 480	इन सबमें 32-32 का अन्तर है	

उपर्युक्त इन गणनाओं द्वारा अयुज और युग्म स्तोमों की श्रृंखला ऋषि के गम्भीर चिन्तन को दर्शाती है। यहाँ अयुज श्रृंखला (1-3, 3-5) में 2, 4, 8 तथा युग्म श्रृंखला (4-8, 8-12) में 4, 8, 32 का दिखाई देने वाले अन्तर पुन: एक नवीन श्रृंखला को प्रकट करता है। शतपथ ब्राह्मण में प्राप्त अयुज स्तोमों के वर्णन में आधुनिक गणित के वर्ग (Sqaure) एवं वर्गमूल (Sqaure-Root) जैसे सिद्धान्त भी परिलक्षित होते हैं। उदाहरणार्थ -

अयुज स्तोम का वर्ग-सिद्धान्त ⟶

$1 + 3 = 4 = 2^2$

$1 + 3 + 5 = 9 = 3^2$

$1 + 3 + 5 + 7 = 16 = 4^2$

$1 + 3 + 5 + 7 + 9 = 25 = 5^2$

$1 + 3 + 5 + 7 + 9 + 11 = 36 = 6^2$ इत्यादि।

अयुज स्तोम का वर्गमूल-सिद्धान्त ⟶

$1 + 3 + 5 + 7 + 9 + 11 + 13 + 15 + 17 + 19 + 21 + 23 + 25 + 27 + 29 + 31 + 33 = 289 = \sqrt{17}$ (कुल मिलकर यह सभी 17 अंक है)

ध्यान देने योग्य यह भी है कि युग्म स्तोम (4-8, 8-12, 12-16) और कुछ नहीं बल्कि स्पष्टत: चार का पहाड़ा है, जो कि गणित-विषय के अन्तर्गत महत्त्वपूर्ण भूमिका रखता है। अत: कह सकते हैं कि स्तुतिपरक-मन्त्रों के चयन में स्तोमों की संख्या के सन्दर्भ में मिलने वाले उपर्युक्त सभी मत ऋषि के अंक-गणित-विषय (arithmetic) से परिचित होने की ओर संकेत करते हैं।

वैदिक ग्रन्थों में अनेक गणितीय दृष्टान्त उपलब्ध हैं, जिसकी एक झलक शतपथ ब्राह्मण में देखने को मिलती है। शतपथ ब्राह्मण काल में न केवल अंकों का ज्ञान था अपितु प्रत्येक अंक के लिए नाम भी सुनिश्चित किया गया था। अन्त में कहना चाहिए कि प्रस्तुत ब्राह्मण में अंक-विमर्श के विषय का कुशलता के साथ प्रतिपादन है। सम्भवत: गणित पर केन्द्रित ज्योतिष-विद्या को सिद्ध करने में एवमेव गणित के अन्तर्गत आने वाले अंकगणित विषय के प्रारम्भिक चिह्न के यथार्थ वर्णन में शतपथ ब्राह्मण का योगदान हो।

पाद-टिप्पणियाँ-

याजुष ज्योतिष 5

ऋ. सं. 1.84.13, 10.62.7, 3.9.9

दश च शतं च शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुतं... समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्धश्च...। का. सं. 17.10;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मै. सं. 2.8.14 ; तै. सं. 4.4.11; क. सं. 26.9; वाज. सं. 17.2

[3] (सं.) कृष्ण लाल, *वैदिक संहिताओं में विविध विद्यायें*, जे. पी. पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1996, पृ. 347

[4] द्वादश वै मासाः संवत्सरस्य। श. ब्रा.1.2.5.13, 4.3. 1.5, 14.2.2.12 इत्यादि (शतपथ ब्राह्मण (माध्यन्दिनी शाखा))।

[5] त्रयोदश मासाः संवत्सरः। श. ब्रा. 6.6.3.16, 9.1.1. 16, 13.8.3.7 इत्यादि।

[6] चतुर्विंशतिर्वैसंवत्सरस्यार्धमासाः। श. ब्रा. 2.2.2.5, पञ्चदश वा अर्धमासस्य रात्रयः। श. ब्रा. 1.3.5.8

[7] श. ब्रा. 3.4.4.17, 2.4.4.24, 12.8.2.34, 8.4.1.23 इत्यादि।

[8] त्रीणि च वै शतानि षष्टिश्च संवत्सरस्याहानि। श. ब्रा. 1.3.5.9 इत्यादि।

[9] सप्तविंशतिर्होपनक्षत्राण्येकैकम्। श. ब्रा. 10.5.4.5

[10] दश च वै सहस्राण्यष्टौ च शतानि। संवत्सरस्य मुहूर्ता...। श. ब्रा. 12.3.2.5

[11] संवत्सरो वै प्रजापतिरेकशतविधः। श. ब्रा. 10.2.6.1

[12] श. ब्रा. 2.3.3.19-20

[13] असौ वाऽआदित्य एकविंशः। श. ब्रा. 13.3.3.3 इत्यादि।

[14] श. ब्रा. 13.1.7.2

[15] श. ब्रा. 14.4.3.22

[16] श. ब्रा. 3.5.1.32

[17] श. ब्रा. 8.4.1.11-25

[18] श. ब्रा. 10.4.2, 10.4.3

[19] वीरेंद्र कुमार एवं शैलंद्र भूषण, *वैदिक अंकगणित*, ग्रंथ अकादमी, दिल्ली, 1999, पृ. 29

[20] (सं.) विद्याशंकर त्रिपाठी, *सारस्वत साधना के मनीषी एवं संस्कृत वाङ्मय में विज्ञान*, विश्वभारती अनुसाधन परिषद्, ज्ञानपुर, 2010, पृ. 378

[21] ...एका च दश चान्तश्च परार्धश्चेत्येष हावराध्यों भूमा यदेका च दश....। श. ब्रा. 9.1.2.16

[22] Westerner's way of writing large numbers, to economize space and readability.
For eg - 10^{12} = One Trillion [10^{11} - *Anta*, 10^{12} - *Praradha*]

[23] "कोई भी प्राचीन सभ्यता 1000 से अधिक गिनती नहीं जानती थी।" (सं.) कृष्ण लाल, *वैदिक संहिताओं में विविध विद्यायें*, पृ. 347

[24] श. ब्रा. 12.3.2.5

[25] श. ब्रा. 11.1.2.1.10-11

[26] श. ब्रा. 3.3.1.13

[27] अथायुज स्तोमन्जुहोति। श. ब्रा. 9.3.3.2, अथ युग्मतो जुहोति। श. ब्रा. 9.3.3.4

[28] "The formula of this set of libations (XVIII, 24) enumerates the seventeen uneven numbers (in the feminine gender) from 1 to 33, repeating the second number of each pair, so as to be the first number of the next pair (thus, 1 and 3, 3 and 5, &c.). These numbers are meant to represent the corresponding Stomas, consisting of an uneven number of verses, up to the *Trayastrimsa*, or thirty-three-versed hymn-form.", Julius Eggeling, *The Śatapatha-Brāhmaṇa*, Motilal Banarsidass, Delhi, 1963, Part- IV, p. 217

[29] शतपथ ब्राह्मण, (अनु.) गंगाप्रसाद उपाध्याय, (सं) स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती, विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली, 2003, भाग-2, पृ. 543

[30] "The formula of this set of libations (XVIII, 25) enumerates (the twelve quadruples of 4 (in the feminine gender),

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

from 4 to 48 again repeating each number, except the first and last), as representing the Stomas consisting of an even number of verses, up to the *Ashtakatavarimsa*, or forty-eight-versed hymn-form.", Julius Eggeling, *The Śatapatha-Brāhmaṇa*,, Part- IV, p. 218

[11] शतपथ ब्राह्मण, (अनु.) गंगाप्रसाद उपाध्याय, (सं) स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती, भाग-2, पृ. 543

[12] (सं.) विद्याशंकर त्रिपाठी, *सारस्वत साधना के मनीषी एवं संस्कृत वाङ्मय में विज्ञान*, पृ. 376; Rani Rama Krishna, *Science in kṛṣṇa Yajurveda*, Sri Jayalakshmi Publications, Hyderabad, 1994, p. 124

[13] (सं.) कृष्ण लाल, *वैदिक संहिताओं में विविध विद्यायें*, दिल्ली, 1996, पृ. 350

* * * * * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotiḥ
ISSN 2277-4351
Vol.1, No.2 (62- 66) Jan-jun 2013

वेदों में ऊर्जा के स्रोत

अर्चना दुबे
वनस्थली, विद्यापीठ, जिला-टांक (राजस्थान)

वेद मानव जाति का आदि ग्रन्थ है । जिन्हें ऋषियों ने अपनी अन्तः प्रज्ञा से प्रकट किया । वेदों में दिये गये मूल तत्त्व कालजयी हैं ।

ए. आई.ओ.सी. के विद्वान् अध्यक्ष ने वैदिक भाषा के लिए बड़ी सटीक टिप्पणी की थी -''वेदों की भाषा प्रकाश की भाषा है अन्तर्बोध को प्रदीप्त करने वाली है ।''[१]

वेदों में सृष्टि संरचना के प्रतीक -

अश्वः -शक्ति का, ऊर्जा का प्रतीक है ।

सोमः -विकिरण ऊर्जा (radiant energy) का प्रतीक है । यह दो प्रकार की है, इनमें एक सर्वत्र एक ही समान व्याप्त है । इसे कास्मिक विकिरण भी कहते हैं । दूसरे प्रकार का सोम सूर्यादि लोकों से प्रकाश के रूप में प्रभूत होता है ।

मित्र -वरूण -'मित्र-वरुण' मौलिक कण हैं, जो विपरीत चार्ज वहन करते हैं । यदि 'वरुण' धनात्मक आवेश कणों का समुच्चय है तो 'मित्र' **ऋणात्मक आवेश** कणों का समुच्चय है । ये दोनों मिलकर आधुनिक विज्ञान का द्रव्यभाग बनाते हैं ।

अर्यमन् -यह प्रकृति विकिरण अंश है ।

मित्र वरुण (द्रव्य भाग) और अर्यमन् विकिरण मिलकर सम्पूर्ण प्रकृति बनाते हैं ।

मातरिश्वन् -महाविस्फोट के अनन्तर अग्नि विस्फोट के परिणामस्वरूप जो प्रारम्भिक संवेद उद्भुत होता है जिससे समस्त द्रव्य **मण्डन** का प्रसार होता है, यह उसी का प्रतीक है ।

वैश्वनावर अग्नि -यह भौतिक शक्ति तत्त्व है जिससे मानव में अन्य प्राणियों से उत्कृष्ट मानसिक विकास संभव हुआ है ।

भृगु -प्रलयकाल में सुरक्षित रखा गया **ऊर्जा तत्त्व** है जो सृष्टि के आरम्भ में गति का तारतम्य (Dynamic Continum) बनाये रखता है ।

ऋग्वेद की ऋचा कहती है, 'शक्ति का प्रयोग में लाने के इच्छुक उस शक्ति को जो अक्षय है, अन्य शक्ति के रूप में परिवर्तित करें ।'[२] एक अन्य ऋचा के अनुसार ये तुम्हारी सम्पूर्ण शक्ति निश्चय बढ़ाती है । पदार्थों की शक्ति का समुद्र कभी क्षय नहीं होता ।[३] ऋग्वेद के इस मंत्र में अश्व-शक्ति का द्योतक है । विज्ञान इसी को हार्स पावर कहता है । ऋग्वेद के इस मंत्र में इसे स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि मैंने यह यज्ञ रचाया है । इसमें निमंत्रित आप दो घोड़ों की शक्ति से युक्त यान के द्वारा आइये । छैः आठ या दस घोड़ों की शक्ति वाले यान से आइये ।[४]

ध्वनि विज्ञान - ऋग्वेद के दशम मण्डल के ११४ वें सूक्त में वाक् का उल्लेख मिलता है ।[५] यहाँ तक ब्रह्म का विस्तार है वहाँ तक वाक् का प्रसार है । यही वाक्-विज्ञान के क्षेत्र में ध्वनि विज्ञान के रूप में जाना जाता है । ऋग्वेद के एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य स्थल का उल्लेख है -'सब भुवनों में वाक् वायु के समान विचरण करती है और अपनी शक्ति से इस पृथ्वी के भी परे तथा द्युलोक के पार पहुँच जाती है ।[६] यह विवेचन ध्वनि के बारे में संकेत करता है कि ध्वनि विज्ञान ऋग्वेद में विद्यमान है । वैदिक काल में इसी मंत्र से प्राप्त ध्वनि के माध्यम से अनेक चमत्कार किये जाते हैं । आज भी सूचना प्रौद्योगिकी के वैज्ञानिक एवं विशेषज्ञों की मान्यता है कि ध्वनि से युद्ध जीता जा सकता है । **ध्वनि से बिजली** प्राप्त की जा सकती है । ध्वनि के द्वारा चिकित्सा भी संभव है ।

ताप (अग्नि विज्ञान - अग्नि शब्द अग्, अगि, इण् आदि गत्यर्थक धातुओं से सिद्ध होता है । ये धातु इस ज्ञान के अतिरिक्त गमन, प्राप्त आदि अर्थ वाले भी हैं । ऋग्वेद[७] में २४०० के लगभग मंत्र अग्निपरक हैं । इसमें अग्नि का पूरा विज्ञान परिलक्षित होता है । ऋग्वेद[८] में नाभि युक्त अरा निर्मित चक्र का उल्लेख मिलता है । जो डायनेमिक्स (Dynamics) का प्रथम आविष्कार है । विज्ञान अपने प्रयोगशाला में इस पद्धति को जी.एल.सी. (Gas Liquid Chromatography) के माध्यम से प्रयोग करता है । आर्य यज्ञ कुण्ड के चारों ओर पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करते थे । और पदार्थों से विभिन्न प्रकार की गैसें प्राप्त करके उनका उपयोग वायुशक्ति, प्रदूषण दूर करने, खाद प्राप्त करने, रोगों की चिकित्सा और वर्षा कराने में कराते थे ।[९] यह वेदों का नाम, नक्श तथा परिधि का संकेत ऋग्वेद[१०] में मिलता है । प्रमा, प्रतिमा तथा परिधि यज्ञ में वर्गाकार वेदियाँ काम आती थी । वृत्ताकार तथा अर्धवृत्ताकार वेदियाँ भी होती थी । यह इनके क्षेत्रफल की पद्धति हैं ।[११] यह ज्यामिति तथा ट्रिग्नोमिति का एक फार्मूला है । जिसका सूत्र वेद में वर्णित है ।

यज्ञ के माध्यम से यजुर्वेद[१२] में पर्यावरण अनुरक्षण का भी उल्लेख मिलता है ।

विद्युत् - वैदिक विज्ञान विद्युत् को अग्नि का ही एक रूप मानता है । इसका संकेत ऋग्वेद में मिलता है । मेघ के छाने पर विद्युत् तेज होती है । यदि अशनिपात हो जावे तो वृक्षादि पार्थिव वस्तु के छू जाने से ही नष्ट हो जावेगी । परन्तु जब वह नीचे गिरती है या शुष्क वृक्ष पर गिरती है तो आग बन जाती है । मेघ में वह जलयुक्त है ।[१३]

वेदों में तार विद्या -दयानन्द सरस्वती ने अपने वेदभाष्यों में तार विद्या का संकेत ऋग्वेद में सूत्र के रूप में बताया है ।[१४] हे अश्वीयंत्रों तुम दोनों स्पृधा में सुव्यवहार के लिए श्वेत तरुतार को सिद्ध करो । शर्व और पृतना से तरने में कठिन पर चारों ओर व्यापनशील बिजली की अनुशासन सहित बार-बार प्रविष्ट कराओ ।

रेडियो व टेलीविजन -ऋग्वेद के मंत्र में **रेडियो** जैसे यंत्र का प्रमाण मिलता है -'हे द्युलोक की विद्युत् तरंगों, इस शब्द और वाणी को अज्ञान नाश के लिए दूर ले जाओ ।[१५] ऋग्वेद में टेलीविजन हेतु एक मंत्र इस प्रकार है -'व्यक्त अथवा अव्यक्त अग्नि (रूप) को, देवों (वैज्ञानिकों) द्वारा मथे जाने पर विद्युत् की तरंगे दूर देशों तक ले जाती हैं ।[१६] इस तरह वेदों में विविध रूपों में भौतिक विज्ञान का विभिन्न स्वरूप दिखाई देता है।

वायु का यांत्रिक प्रयोग -वायुयान - भाग्नवर्ष में प्राचीन काल में पुष्पक विमान, सोम विमान आदि चले थे । वैदिक काल में १८ प्रकार के वायुयान प्रचलित थे ।[१७] ऋग्वेद[१८] में अंतरिक्ष की यात्रा के लिए मन के समान वेगवान वायुयान का संकेत मिलता है । ऋग्वेद[१९] की ऋचाओं में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विमान का वर्णन अश्व नाम से किया गया है । अश्व शब्द का एक अन्य अर्थ भी प्रतीत है -शीघ्र गति से मार्ग तय करने एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचने वाला ।' विमान में भी यह गुण होता है इसलिए इन मंत्रों में विमान को **अश्व** कहा गया है । इसमें स्पष्ट हैं कि 'विचित्र अश्व का शरीर पक्षी रूप है, जिसके बारे में उल्लेख है कि आकाश के निश्चल और बाधारहित मार्ग से उड़ता है ।'[२८] आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ने इस अश्वों के बारे में कहा है -ये अश्व और कुछ नहीं बल्कि **विमान** है । विमान ही **आकाश में उड़ सकता** है ।[२९] वे और भी स्पष्ट करते हुए कहते हैं -'अश्व शब्द वेद में अन्यत्र भी कई स्थानों पर अश्व पशु के अर्थ में प्रयुक्त होकर यंत्र कला से संचालित होने वाले विमान रथ, आदि में अर्थप्रयुक्त हुआ है ।'[३०]

ऋग्वेद के एक मंत्र में तो नाम निर्देश पूर्वक विमान का वर्णन है । इस मंत्र में विचार पूर्व निर्मित सात चक्रों से युक्त व्यापक रूप से दूर-दूर तक गमन करने वाले विमान का उल्लेख है ।[३१] **ऋग्वेद में विद्युद्रथाः**[३२] का प्रयोग हुआ जिसका अर्थ बिजली से चलने वाले वायुयान अथवा पृथ्वी पर विद्युत चालित गाड़ियाँ आदि हैं । ऋग्वेद[३३] में ही विद्युत चालित रथ का स्पष्ट वर्णन है ।

वेद में उषा सृष्टि के आदि काल का प्रतीक है तो नक्तः प्रलयकाल का । भृगु प्रलयकाल में सुरक्षित रखा गया । ऊर्जा तत्त्व है जो सृष्टि आरम्भ में गति का तारतम्य (Dynamic continuum) बनाये रखता है । बीजरूपों भृगु शक्ति के द्वारा आदि काल में ईश्वर सृष्टि रचना में सन्नद्ध होता है । महाविस्फोट (बिग बैंग) के पश्चात अग्नि विस्फोट के परिणामस्वरूप प्रारम्भिक संवेग उद्‌भुत होता है । इससे समस्त द्रव्य मण्डल का प्रसार होता है । वेद में इस घटना का नाम **मातरिश्वन्** है । विज्ञान में इसे ''विश्व का प्रसार'' (Expanding universe) कहते हैं ।

सोम विकिरण ऊर्जा (radiant energy) का प्रतीक है । ऋग्वेद का सोम दो प्रकार का होता है । प्रथम, आदिकाल में मूल तत्त्वों (कण-प्रतिकण) के घर्षण से उत्पन्न हुआ था । यह विश्व व्यापक है । इसी कारण समग्र गुरुत्वाकर्षण बल उत्पन्न हुआ । दूसरा सोम सूर्य सदृश प्रकाशित लोकों से उद्‌भुत होता है । यह सोम-तरंगे (waves), आकर्षण, ताप, प्रकाश के रूप में फैली । **अर्यमन् प्रकृति** का विकिरण भाग है । सृष्टि में नियोजित होने के उपरान्त इस विकिरण की संज्ञा सोम कहलाती है ।

ऋभु देवों की जननी मूल **आद्या शक्ति** का नित्य गुण स्वरूप है । यह नित्य कण समूह का स्वभावगत परस्पर आकर्षण (ह्वीमूदह) है । इस स्वाभाविक गुण में चार प्रकार के बल निहित हैं । ऋभु चार प्रकार के आकर्षण का प्रतीक है । यह आकर्षण विद्युत चुम्बकीय शक्ति के रूप में परिलक्षित होता है । चार प्रकार के बलों में से दो बलों का क्षेत्र असीम एवं व्यापक है । मरुत असीमित क्षेत्र में बल का कार्य करने वाली **अन्तरिक्षीय शक्ति** है । यह बल विद्युत एवं गुरुत्वाकर्षण सम्बन्धी वेद के इस सिद्धात में दो प्रकार के बलों के स्रोत का एक ही आधार होने का विचार निहित है । इसी तथ्य की पुष्टि विज्ञान आज (unified field theory) के अन्तर्गत सभी **'बलों के एकत्व'** के रूप में कर रहा है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदार्थ कभी नष्ट नहीं होता केवल उसकी अवस्था परिवर्तन होता है । इस ऋग्वैदिक उक्ति में विज्ञान का ऊर्जा संरक्षण का सिद्धान्त स्पष्ट होता है । वेद के अनुसार सृष्टिकाल में द्रव्य सत्ता बढ़ती है एवं ऊर्जा कम होती है । प्रलयकाल आरम्भ होते ही यह संतुलन विपरीत जाता है और ऊर्जा की मात्रा अपेक्षाकृत बढ़ने लगती है । इसमें **थर्मोडायनामिक्स** का दूसरा नियम दृष्टिगोचर होता है । पदार्थ जब ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है । तो वह द्रव्य सत्ता में नहीं आ सकता है । इसे **एण्ट्रापी** कहते हैं ।

अतः वेदों में ज्ञान-विज्ञान का रहस्य छिपा है । ये ही शाश्वत ज्ञान-विज्ञान के अपौरुषेय सत्य है । ऋषियों ने ज्ञान प्राप्ति के अनुशासन अनुबंधों एवं सावधानियों का पालन करने ही दर्शन एवं विज्ञान की सृष्टि की है । विज्ञान की श्रेष्ठतम उपलब्धि को नवीन दर्शन कहा जा सकता है ।

पाद-टिप्पणियां-

[१] ऑल इण्डिया ओरिएण्टल कान्फ्रेन्स ३१ वें सेसन में पं. गौरीनाथ शास्त्री का अध्यक्षीय भाषण ।

[२] अयाते अग्ने विधेमोर्जो: नपादश्वमिष्टे एना सुक्तेन सुजात । ऋग्वेद २/६/२

[३] इमा हि त्वामूर्जो वर्द्धयन्ति वसूयवः सिन्धवो: न क्षरन्तः । ऋग्वेद १/११/१

[४] ऋग्वेद २/२८/४

[५] ऋग्वेद १०/११४४/८

[६] ऋग्वेद १/१६९/३४

[७] ऋग्वेद १/१/२, ३, ४, ५, ६: १/१२/१,१/२३४,१ /४४/७,१/ १७९/२,३/१७/४,३/११/३,४/१०/३, ४/१३/६,६,१६/४८, ६/४३/१६,८/४४/१०

[८] अग्निर्देवेषु राजत्यग्निर्मर्तेष्वाविशन् ।

अग्निर्नो हव्यवाहनोऽ ग्निं धीभिः सपर्यत॥

ऋग्वेद ५/२५/४

[९] डॉ. रामेश्वर दयाल गुप्त - वैदिक वाङ्मय में विज्ञान, पृ १३०

[१०] ऋग्वेद १०/१३०/३

[११] ऋग्वेद १/१०५/१७

[१२] ऊर्ज वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्। स्वधा स्थ तर्पयत मे पितृन्।। -यजु, २/३४

[१३] यास्काचार्य, निरुक्त - ७/६/३

[१४] युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः। शर्यैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम्॥ -ऋग्वेद १/११९/१०

[१५] एतं मे स्तोममूर्म्ये दार्भ्याय परा वह। गिरो देवि रथीरिव॥ - ऋग्वेद ५/६१/१७

[१६] ससृवांसमिव त्मनाग्निमित्था तिरोहितम्

ऐनं नयन्मातरिश्वा परावतो देवेभ्यो मथितं परि॥

-ऋग्वेद ३/९/५

[१७] आचार्य विजय मिश्र -वेद और विज्ञान, पृ. ९८-९९

[१८] आ वां रथं पुरुमायं मनोजुवं जीराश्वं यज्ञियं जीवसे हुवे। सहस्रकेतुं वनिनं शतद्वसुं श्रुष्टीवानं वरिवोधामभि प्रयः॥ -ऋग्वेद १/११९/१

[१९] ऋग्वेद - १/१६३/९,१०

[२०] ऋग्वेद १/१६३/६

[२१] आचार्य प्रियव्रत वाचस्पति - वेद और उसकी वैज्ञानिकता: भारतीय मनीषा के परिप्रेक्ष्य में, पृ. ३३६

[२२] वही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[23] सीमा पूषणो रजसो विमान सपृचक्रं रथं विश्वपिन्वम् । विपूवृतं मनसा युज्मान तं जिन्वथो वृषणा पंचरश्मिम् ।। –ऋग्वेद २/४/३

[24] ऋग्वेद ३/५५/१२

[25] ऋग्वेद १/८८/१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotiḥ
ISSN 2277-4351

Vol.1, No.2 (67-74) Jan-jun 201.

प्रो० मैक्समूलर और वेद

(कृष्ण वल्लभ जी पालीवाल, एम०एस-सी०, पी-एच०डी०, नई दिल्ली-१२)

अधिकांश भारतीय प्रो० फ्रेडरिक मैक्समूलर को भारत का हितैषी और शुभचिन्तक समझते हैं क्योंकि उन्होंने भारतीय धर्मशास्त्रों और विशेषकर वेदों पर बहुत लिखा। उनके **वेदाध्ययन का मूल उद्देश्य क्या था? वेदों में उन्होंने क्या पाया, उनका वेदों के प्रति क्या दृष्टिकोण था और विश्व के धर्मग्रन्थों में वेदों का उनकी दृष्टि में क्या स्थान** था? यही इस छोटे से लेख का अभिप्राय है।

आपकी शिक्षा जन्म से जर्मन होने के कारण पहले लीपिंग और फिर बर्लिन विश्वविद्यालय के संस्कृतविभाग के अध्यक्ष प्रो० हरमैन ब्रोखोस के निरीक्षण में हुई। यहाँ के भाषा विशेषज्ञ फ्रांज बोप और दार्शनिक शीलिंग के विचारों का मैक्समूलर पर विशेष प्रभाव पड़ा। तत्पश्चात् आपने (१८४६-४७ तक) ऋग्वेद विशेषज्ञ फ्रांसीसी प्रोफेसर ओगीन बरनोफ के संस्कृत विभाग पैरिस में वेदाध्ययन किया। शिक्षा समाप्त कर आप एच०एच०विल्सन और वारोन वुनसन के आग्रह पर ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में वेदानुसन्धान के कार्य में लग गये और जीवन भर (१८४७ सं० १९०० तक) इसी विश्वविद्यालय से विश्व को अपने वेद, भाषा, तुलनात्मक धर्म और भाषाओं के विकास सम्बन्धी विचार देते रहे। इन पचास वर्षों में आपने Sacred of the East Series (**पूर्व की पवित्र पुस्तकें सीरीज**) के अन्तर्गत २५ धर्म ग्रन्थों का ५० भागों में अंग्रेजी में सम्पदान किया। ये पुस्तकें वेद, उपनिषद्, गीता, वेदान्तसूत्र से लेकर जैन, बौद्ध, इस्लाम, पारसी एवं चीन के धर्मग्रन्थों आदि के विषय में हैं। स्वयं मैक्समूलर ने वैदिक ऋचाएं, उपनिषद्, धम्मपद, गृह्यसूत्र और बौद्ध महायान का अंग्रेजी अनुवाद किया। भारतीय षट् दर्शनों पर १८९९ में 'Six systems of Indian Philosophy' नामक ग्रन्थ लिखा। आपके वेदसम्बन्धी भाषण The Vedas; India, what it can teach us?; The History of Sanskrit Literature (1859) आदि पुस्तकों के रूप में मिलते हैं।

प्रो० मैक्समूलर के वेदभाष्य का आधार सायणभाष्य है, जिसे इन्होंने छह भागों में (१८४९-१८७३) और दूसरा संस्करण ४ भागों में (१८९०-९२) छपवाया। केवल संहिताएं क्रमश: १८७३ और १८७७ में छपवाईं।

लेख में उठाये गये प्रश्नों का सबसे प्रामाणिक उत्तर उनके ही शब्दों होंगे जो उन्होंने अपने साहित्य एवं अपने पत्रों में लिखे हैं। वस्तुत: प्रोफेसर मैक्समूलर आजीवन विश्व को यह दिखाने का प्रयत्न करते रहे कि मेरा तो विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद के अध्ययन का उद्देश्य तुलनात्मक अध्ययन करना और इस भाषा और धर्म का विकास कैसे हुआ, यह जानना रहा है, परन्तु सत्य कुछ और ही है। एक तरफ वे लिखते हैं :-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"Let it not be supposed that because there are several translations of the Rigveda in English. French and German. therefore all that the Veda can teach us has been learned. Far from it. every one of these translations has been put forward as tentative only. We are still on the mere surface of the Vedic literature."

''यह विचार नहीं करना चाहिये-क्योंकि जर्मन, फ्रेंच और अंग्रेजी में ऋग्वेद के अनेकों भाष्य हैं इसलिये वेद की समस्त शिक्षाओं को हमने सिख लिया है। वस्तुत: इसके अलावा, प्रत्येक भाष्य में अनुवाद के प्रस्तावित विचार हैं। हम वैदिक साहित्य की अभी ऊपरी सतह पर ही घूम रहे हैं।''

"I maintain that to everybody who cares for himself. for his ancestors. for his history or for his intellectual development. a study of Vedic Literature is indispensible. I maintain that for a study of man, or, if you like. for a study of Aryan humanity. there is nothing in the world equal in importance to the Veda."

वेदाध्ययन की महत्ता पर लिखते हुए वे कहते हैं

'मैं मानता हूँ जो स्वयं अपना, अपने पूर्वजों, अपने इतिहास का अध्ययन करना चाहता है, उसके लिये वेद आवश्यक है। आर्यजाति के अध्ययन के लिये वेद से अधिक महत्त्वपूर्ण कुछ नहीं है।'

भारत के लोगों की मैक्समूलर में श्रद्धा होने का कारण शायद यह भी है कि उसने भारतीयों, परसियनों, ग्रीकों, इटेलियनों को जर्मनों का सगा भाई बन्धु माना है। अपने को आर्य या इण्डोयोरोपीय गिना जैसा की नीचे के शब्दों से स्पष्ट होता है।

"Those men (Aryans) were the true ancestors of our race; and Veda is the oldest book we have in which to study the first beginning of our language. and of all that is embodied in language. We are by nature Aryans Indo-European. not Semetic : our spiritual kith and kin are to be found in India, Persia, Greece. Italy, Germany; not in Mesopotamia. Egypt or Palestine.

वे वेदों में राजाओं और लड़ाइयों का वर्णन बहुत कम पाते हैं और क्रमबद्ध इतिहास का अभाव है।

"There is perhaps too little of kings and battles in Veda and scarcely anything of the chronological frame work of history."

प्रोफेसर साहब को वैदिक ऋचाएं बचपनी, मुश्किल और सामान्य नजर आईं।

"Large Numbers of Vedic hymns are childish in the extreme; tedious. low, common place."

और वैदिक धर्म बहुदेवतावाद से भरा मिला। अग्नि, सूर्य, उषा, मरुत्, पृथिवी, अप: (जल), नदी, वरुण, मित्र, इन्द्र आदि को सम्बोधित ऋचाएं उनके विचार से अनेकों भौतिक शक्तियों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपासना का प्रतीक हैं, जैसा कि उन्हीं के शब्दों में पढ़िये।

"No doubt, if we employ technical terms the religion of the Veda is Polytheism, not Monotheism. Deities are invoked by different names, some clear and intelligible such as Agni (fire), Surya (sun), Usha (dawn), Maruta (Strom), Prithivi (earth) Ap (water), Nadi (rivers)."

काश प्रोफेसर जी वैदिक टेक्नीकल टर्मस समझते तो शायद यह भ्रान्ति उन्हें तथा उनके अनुगामियों को न होती और जब महर्षि दयानन्द सरस्वती का वेदभाष्य उन्हें टेक्नीकल टर्मस समझाता है तो वे उसे अधिक मूल्यांकन कहते हैं। वस्तुतः चारों वेद एकेश्वरवाद से भरे पड़े हैं (ऋग्०१.१५४.४; १.१६४.४६; ६.३६.४; ७.२१.१; ६.४५; १.१६४.४४; अथर्व०२.२०.१, २.२.२)

प्रो० मैक्समूलर को वेदों का विषय प्रातःसायं, नदी, नाले, पृथिवी, विद्युत्, वर्षा, सूर्यास्त ही दिखाई दिये। उनकी दृष्टि में वेद सामान्य बुद्धिवालों के विचार हैं। इस कविता के लिये किसी विशिष्ट प्रतिभा की आवश्यकता नहीं है। इन्हें कभी वैदिक उदात्त भावनाएं, गम्भीर दर्शन, आध्यात्मिक विद्या और तत्त्वविज्ञान नहीं मिला। बस यही उनके दृष्टिकोण को प्रकट करता है। वे लिखते हैं

"No superhuman revelation was requied for that of poetry. Nothing could be clearer than that the constant themes of these Vedic songs were sunrise and morning, day and night, earth and the rivers, storms, lightning, rain, sunset and night." पुनः

"But highly interesting as these Vedic hymns are to us, in spite of, or I should say, on account of their simplicity and childishness, anybody who came to know them at first hand has to confess that they seem quite unfit to satisfy the religious cravings of a later generation....They contain praises of the physical gods.....All this is historically and psychologically full of interest, but there is little only, except here and there, of exalted religious thoughts, of poetry or philosophy, still less of any records of historical events. Besides, their language is so difficult that, as yet, if makes a satisfactory translation of the whole Veda a perfect impossibility."

लेख के विस्तार के भय से और विचार न देकर मैं आपको इस सबके पीछे क्या उद्देश्य था लिखने का प्रयत्न करूंगा। आइये इस विषय में प्रोफेसर साहब के कुछ पत्रों के उद्धरण पढ़ें।

A friend of Prof. Maxmuller, Mr. E.B. Pussey writes to him thus :-

"Your work will form a new era in the efforts for the conversion of India, and Oxford will have reason to be thankful for that, by giving you a home, it will have facilitated a work of

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

such primary and lasting importance for the conversion of India, and which by enabling us to compare that early false religion with the true illustrates the more than blessedness of what we enjoy"

प्रो० मैक्समूलर के एक मित्र ई०बी०पूसी ने उन्हें निम्नलिखित पत्र लिखा-"तुम्हारा कार्य भारत के धर्म परिवर्तन के प्रयत्न में एक नवीन युग का निर्माण करेगा और ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय आपको यह स्थान देकर धन्यवाद का पात्र है। यह मुख्य और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण (वेदभाष्यादि) कार्य भारत के धर्म-परिवर्तन के कार्य को सरल करेगा और उस प्रारम्भिक असत्य धर्म को इस सत्य धर्म से जिसका हम पालन करते हैं, तुलना करने योग्य करेगा।"

Max muller, in 1886, thus wrote to his wife-"I hope I shall finish the work and feel convinced though I shall not live to see it, yet this edition of mine and the translation of the Veda will hereafter tell to a great extent on the fate of India and on the growth of millions of millions of souls in that country. It is the root of their religion and to show them what the root is, I feel sure, is the only way of uprooting all that has sprung from it during the last three thousand years."

१८८६ में प्रो० मैक्समूलर ने अपनी पत्नी को एक पत्र इस प्रकार लिखा-"मुझे आशा है कि मैं यह कार्य करूंगा और मुझे पूर्ण विश्वास है यद्यपि मैं उसे देखने को जीवित न रहूंगा तथापि मेरा यह संस्करण और वेद का भाष्य आद्यन्त बहुत हद तक भारत के भाग्य पर और उस देश की लाखों आत्माओं के विकास पर प्रभाव डालेगा। वेद इनके धर्म का मूल है और मुझे विश्वास है कि उनको यह दिखाना ही कि वह मूल क्या है, उस धर्म को नष्ट करने का एक मात्र उपाय है, जो गत तीन हजार वर्षों से उससे (वेद से) उत्पन्न हुआ है।"

On 16th Dec. 1868, he wrote a letter to them secretary of state for India, the Duke of Argyle, as below :- "The ancient religion of India is doomed, if Christianity dose not step in, whose fault will it be?"

१६ दिसम्बर १८६८ को उन्होंने तत्कालीन भारत के मन्त्री आरगायल के ड्यूक को निम्न पत्र लिखा-"भारत के प्राचीन धर्म का पतन हो गया है, यदि अब भी ईसाई धर्म नहीं प्रचलित होता है तो इसमें किसका दोष है?"

"On 29th Jan, 1882, he wrote to Byranjee Malbari thus, "As I told you on a former occasion, my thoughts while writing the lectures, Hibbert, were with the people of India. I wanted to tell to those few at least whom I might hope to reach in English, what the true historical value of this ancient religion is: as looked upon, not from an exclusively European or Christian but form a historical point of view. I wished to warm against two dangers, that of undervaluing and despering the

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ancient national religion, as in often done by your half-Europeanised youths and that of over valuing it and interpreting it as it was never meant to be interpreted of which you may see a painful source in Dayanand Swaraswati's labour on the Vedas.

Accept the Veda as an ancient historical document, containing thoughts in accordance with the character of an ancient and simply minded race of men, and you will be able to admire it and to retain some of it, particularly the teachings of the Upanishads even in these modern days. But discover in it, "Steam Engines and electricity and European philosophy and morality" and you deprive it of its true character, you destroy its real value; and you break the historical continuity that ought to bind the present with the past. Accent the past as a reality, study it, try to understand it and you will then have less difficulty in finding the right way towards the future."

२९ जनवरी, १८८२ का श्री वाइरेन्जी मालाबारी को एक पत्र प्रो० मैक्समूलर ने लिखा- ''जैसा कि मैंने पहले भी बताया है कि मेरे विचार ''हिबर्ट'' भाषण लिखते समय भारतीयों के बार में थे। मैं कम से कम उन थोड़े से लोगों को बताना चाहता हूँ, जिन तक मैं अपने विचार अंग्रेजी द्वारा पहुंचा सकता हूँ, कि उस प्राचीन धर्म का ऐतिहासिक महत्त्व क्या है, जैसा कि समझा जाता है न केवल यूरोपीय या ईसाइयत की दृष्टि से अपितु ऐतिहासिक दृष्टिकोण से। मैं दो आपत्तियों से चेतावनी देना चाहता हूं-प्रथम तो भारत के राष्ट्रीय धर्म की अवहेलना व न्यून मूल्यांकन करना जो प्रायः तुम्हारे अधूरे-यूरोपीय नवयुवकों द्वारा किया जाता है और दूसरे महत्त्व देना या ऐसा अनुवाद करना जैसा कभी नहीं किया गया। ऐसा दुःख स्रोत महर्षि दयानन्द सरस्वती के वेदों पर परिश्रम में प्रदर्शित होता है। वेदों को प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थ मानो जिनमें एक पुरानी और सरल प्रकृति की जाति के मनुष्यों के विचारों का चित्रण है और तब तुम इसकी प्रशंसा कर सकोगे। लेकिन इनमें खोज करो। ''वाष्प इंजन, बिजली, यूरोपीय दर्शन और नैतिकता की''। **वेद को उसके सत्य रूप से अलग कर दो और उसके वास्तविक महत्त्व को नष्ट कर दो** और तुम प्राचीन और अर्वाचीन के ऐतिहासिक क्रम को, जो इन्हें बांधे हुए हैं, छिन्न-भिन्न कर दो। अतीत एक सत्य है, ऐसा मानो। उसका अध्ययन करो तब तुम्हें भविष्य में अपना ठीक मार्ग अपनाने में कम कठिनता होगी।''

पाठक यहाँ प्रो० साहब की अन्तरात्मा के भावों को समझ गये होंगे और वे किस प्रकार महर्षि दयानन्द की भाष्य-शैली से भयभीत प्रतीत होते हैं। समझते होंगे दयानन्द की शैली के आगे मेरी दाल न गलेगी।

He wrote to his son thus:-"Would you say that any one sacred book in superior to all others in the world ? It may sound prejudiced but taking all in all, I say, the new Testament. After that

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

I should place in Koran, which in its moral teaching in hardly more than a later edition of New Testament. Then would follow the Old Testament. Then would follow the Old Testament, the Southern Buddist Tripitika, the Taota kings of Laotize the king of Confucius, the Veda and Avesta. There is no doubt, however, that the ethical teaching is far more prominent in the Old and New Testament than in any other sacred book. Therein lies the distinctness to the Bible. Other sacred books are generally collections of whatever was remembered of ancient times."

उन्होंने अपने पुत्र को इस प्रकार लिखा- 'तुम पूछोगे कि विश्व में कौनसी पवित्र (धार्मिक) पुस्तक सर्वश्रेष्ठ है? शायद यह उत्तर पक्षपात पूर्ण प्रतीत हो, लेकिन मैं वास्तव में बाइबिल के न्यू टेस्टामेण्ट को कहूंगा। उसके पश्चात् कुरान को स्थान दूंगा, जो अपनी नैतिक शिक्षाओं में बमुश्किल न्यू टेस्टामेण्ट के संस्करण से श्रेष्ठ है। उसके पश्चात् क्रमश: ओल्ड टेस्टामेण्ट, दक्षिण बौद्धों की त्रिपिटिका, लाओट्ज के टाओज, राजा कन्फ्यूसिस, वेद और अवेस्ता। निस्सन्देह न्यू और ओल्ड टेस्टामेण्ट की नैतिक एवं चारित्रिक शिक्षाएं किसी भी अन्य पवित्र पुस्तक से कहीं उत्तम हैं। इसमें ही बाइबिल की अद्वितीयता अन्तर्निहित है। साधारणतया अन्य पवित्र पुस्तकें प्राचीनकाल के लोगों को जो स्मरण रहा उनका संचय मात्र हैं।''

In 1899; he wrote to Mr. N.K. Mujumdar, a Brahma Samajist as below,..."You know for how many years, I have watched your efforts to purify the popular religion of India and thereby to bring it never to the purity and perfection of other religious, particularly of Christianity. The first thing you have to do is to settle how much of your ancient religion you are willing to give up, if not all as utterly false, still as antiquated you have given up a great deal, polytheism, idolatry and your elaborate sacrificial worship.

Take then the New Testament and read it for yourself, and judge for yourselves, whether he words of Christ as contained in it satisfy you or not. Christ comes to you as he comes to us in the only trustworthy records presumed of him in the Gospels we have not even the right to consider how differently we interpret the ourselves. If you accept his teachings as there recorded, you are a Christian.

Tell me some of your chief difficulty that prevent you and your countrymen form openly following Christ, and when I write to you I shall do my best to explain how I Have met them and solved them. From my point of view, India, at least the best part of

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

it, is already converted to Christianity. You want no persuasion to become a follower of Christ. Then make up your mind to work for yourselves. The bridge has been built for you by those who came before you. Step boldly forward, it will not break under you and you will find many friends to welcomes you on the other shore : and among them none more be delighted than you old friend and fellow labourer, F. Maxmuller.

१८९९ में प्रो० मैक्समूलर ने ब्रह्मसमाजी एन०के० मजूमदार को निम्नलिखित पत्र लिखा-''तुम जानते हो कि मैंने तुम्हारे भारत के प्रिय धर्म को शुद्ध करने के प्रयत्न एवं उसके द्वारा उसे अन्य धर्मों विशेषकर ईसाइयत की पवित्रता और पूर्णता के समीप लाने के कार्य का अनेकों वर्षों से अध्ययन किया है। सबसे पहले तुम्हें निश्चय करना है कि तुम अपने प्राचीन धर्म का कितना भाग त्यागने को तैयार हो यदि उसका सर्वस्व नहीं तो पुराना कहा जाता है। तुमने काफी मात्रा में त्याग दिया है-बहुदेवतावाद, मूर्त्तिपूजा और धूम-धाम से की गयी बलि पूजा।

तत्पश्चात् न्यूटेस्टामेण्ट उठाओ और स्वयं पढ़ो और स्वयं निर्णय करो कि उसमें लिखे ईसा के शब्द तुम्हें सन्तुष्ट करते हैं अथवा नहीं। ईसा के श्रद्धायुक्त वचनों में अन्तर्निहित उपदेश तुम तक वैसे ही आवेंगे जैसे वे हम तक आते हैं, विशेषकर यदि हम इसका स्वयं भिन्न अर्थ करें। यदि तुम उसकी शिक्षाओं को यथावत् स्वीकार करो तो तुम ईसाई हो (या हो सकते हो)। तुम मुझे अपनी मुख्य परेशानियाँ बताओ जो तुम्हें स्पष्ट रूप से ईसाई बनने में बाधा डालती हैं और जब मैं लिखूंगा मैं स्पष्ट करने की पूरी कोशिश करूंगा कि किस प्रकार मैंने और मेरे साथियों ने उनका मुकाबला किया। मेरी दृष्टि में भारत का मुख्य भाग ईसाई बन चुका है। तुम्हें ईसाई बनाने में समझाने बुझाने की जरूरत नहीं है। तब तुम स्वयं अपने (धर्म परिवर्तन के) बारे में विचार करो। तुमसे पूर्वगामियों ने पुल निर्माण कर दिया है निर्भयता पूर्वक आगे बढ़ो। यह तुम्हारे कारण टूटेगा नहीं और उस पार तुम्हारे स्वागत के लिये अनेकों मित्र हैं, जिनमें तुम्हारे पुराने मित्र और साथी फ्रेडरिक मैक्समूलर से ज्यादा कोई प्रसन्न न होगा।''

प्रोफेसर मैक्समूलर के उपर्युक्त उद्धरणों से आपको अब स्पष्ट हो गया होगा कि पचास वर्ष तक वेदाध्ययन करने पर उन्हें वेदों से क्या मिला और जो मिला, उसे वे किस प्रकार नष्ट-भ्रष्ट करके जनता के सामने रखने का निर्देश कर रहे हैं। ऋग्वेद के अन्तिम सूक्त, जो मानव मात्र को एक परिवार के रूप में देखने, रहने और व्यवहार करने का आदेश देते हैं, उन्हें बचपने के विचार लगते हैं। ऋग्वेद जो स्टुअर्ट पिगोट के शब्दों में Illiad और Odyssey दोनों से मिलकर बराबर है, उनको सामान्य ज्ञान से भरा प्रतीत हुआ, जब कि सत्य यह है कि इस ईश्वरीय ज्ञान के भण्डार का सत्यार्थ अटकल बाजी या कुछ कल्पित मान्यताओं से नहीं निकलता। इसके समझने के लिये आर्ष प्रणाली की आवश्यकता है जिसका महर्षि दयानन्द ने पुनरुद्धार किया और जिसे वे अधिक मूल्यांकन कहते हैं। सच्चाई यह है कि वे उदात्त विचारों से पूर्ण वेद ज्ञान को हेय सिद्ध करें, ताकि उनका ईसाइयत के प्रचार का मार्ग सरल हो जावे, वे भावनाएं स्पष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती हैं, उनके आखिरी उद्धरण से। उनके संस्कृत और वेदाध्ययन का मूल उद्देश्य तो भारतीयों का धर्म-परिवर्तन करना था। उन्होंने समझ लिया था कि वेद भारतीयों के प्राण हैं, उनमें अश्रद्धा उत्पन्न करके ही हम उन्हें ईसाई बना सकते हैं। यही मार्ग उन्होंने अपनाया। आज भी उनके अनुयायी प्रो०एस्टलर ऋग्वेद का पुनर्गठन कर रहे हैं क्योंकि उनके विचार से यह विषयानुसार नहीं है। विषय तो उन्हें तब पता चलें जब वे सत्य जानना चाहें। वे तो भारतीयों की उनके धर्मग्रन्थों के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न करने पर तुले हुए हैं। आज से सौ वर्ष पहले एक मैक्समूलर था, मगर आज हजारों मैक्समूलर संस्कृत द्वारा भारतीय संस्कृति में रुचि दिखाने, धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन करने के नाम पर किस प्रकार वेदों का, धर्मशास्त्रों का अनर्थ करके धर्म परिवर्तन के कार्य को कर रहे हैं! यह भी कैसा अनुसन्धान है कि वेदों में कुछ भी हो मगर उनमें ढूंढो यूरोपीय दर्शन, बिजली, वाष्पयन्त्र आदि। निस्सन्देह पाश्चात्य विद्वानों ने अनुसन्धान के नाम पर वेदों के साथ जबर्दस्त अनर्थ एवं अन्याय किया है। कहाँ वेद की सार्वभौमिक, सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक, प्राणीमात्र के कल्याण की भावनाएं और कहाँ उनकी गिनती जो उनसे भी हेय, अमानुषिक और परस्पर विरोधी शिक्षाओं से भरे गए हैं। कहाँ सृष्टि के आदि में प्राणी मात्र के कल्याण के लिये दिया गया ईश्वरीय ज्ञान और कहां अल्पज्ञ मानव के मस्तिष्क की कल्पनाओं और इतिहास से भरे ये ग्रन्थ। कैसी समानता! **रिसर्च का अर्थ तो है-पदार्थ के सत्य ज्ञान का पता लगाना और वेदों के विषय में, उनका वही अर्थ करना, जिन भावनाओं से वे ओत-प्रोत हैं।**

मेरा विचार है कि आज नहीं तो कल महर्षि दयानन्द सरस्वती की भाष्यशैली ही वेद के सत्यार्थ को प्रकट करने में समर्थ होगी, ऐसा विश्व के वेद विद्वानों को स्वीकार करना पड़ेगा, जिसको प्रो० मैक्समूलर ने स्वीकार नहीं किया और अधिक मूल्यांकन करना कहा।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotiḥ
ISSN 2277-4351
Vol.1, No.2 (75-79) Jan-jun 2013

पाश्चात्य वेदानुशीलन : कुछ तथ्यात्मक बातें

भवानीलाल भारतीय

(सेवानिवृत्त प्रोफेसर, दयानन्द शोधपीठ, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़)

पश्चिमी विद्वानों ने वेद तथा वैदिक साहित्य का अध्ययन करने के लिये जो परिश्रम किया है वह वस्तुत: प्रशंसनीय है। संस्कृतभाषा तथा उसका साहित्य यद्यपि मात्रा एवं गुण की दृष्टि से अनेक यूरोपीय भाषाओं से नितान्त समृद्ध था तथा उसे स्वायत्त करने में पर्याप्त अध्यवसाय, लगन तथा मनोनिवेश की आवश्यकता थी, तथापि पश्चिमी विद्वानों ने उस पर न केवल अधिकार ही प्राप्त किया, अपितु उसका पश्चिमी भाषाओं में अनुवाद करने का भी प्रयत्न किया। विलियम जोन्स, विल्सन, कोलबुक, मोनियर विलियम्स, मैक्डानल, कीथ आदि शतश: ऐसे विद्वान् हैं, जिनके जीवन का बृहदंश इसी संस्कृतवाङ्मय रूपी सागर के अवगाहन में ही व्यय हुआ।

पश्चिमी विद्वान् केवल वेद और संस्कृत साहित्य के गुणों पर मुग्ध होकर ही उसके अध्ययन में प्रवृत्त हुए थे, ऐसी बात नहीं है। इसके विपरीत इसका प्रयोजन द्विविध था। प्रथम तो वे भारत पर शासन करने के लिये जाने वाले नवयुवक अंग्रेजों को भारतीय साहित्य तथा परम्परा से परिचित कराना चाहते थे। साथ ही ईसाई प्रचारकों से भी वे यह अपेक्षा रखते थे कि उन्हें तुलनात्मक दृष्टि से उस साहित्य का पूर्ण परिज्ञान होना चाहिये, जिसमें उनके विरोधी धर्म के सिद्धान्त प्रतिपादित हुए।

प्रो० मोनियर विलियम्स ने अपनी Indian Wisdom (भारतीय प्रज्ञा) शीर्षक पुस्तक की भूमिका में यही बात लिखी–

''हमें यह नहीं भूल जाना चाहिये कि यह विशाल पूर्वीय साम्राज्य हमारे शासन में राजनीतिक तथा सामाजिक प्रयोगों का स्थान होने के लिये अथवा अपना व्यापार बढ़ाने, अपने को गर्वान्वित अनुभव करने या अपना सम्मान कराने के प्रयोजन के लिये नहीं सौंपा गया है। अपितु इसलिये कि एक विस्तृत जनसंख्या इसके द्वारा अनुरंजित, लाभान्वित एवं उत्थापित की जा सके और ईसांई धर्म के पुनरुद्धारक प्रभाव का इस देश में सर्वत्र प्रसार किया जा सके।''

(प्रथम संस्करण, प्रस्तावना, पृ०११)

आगे चलकर मोनियर विलियम्स ने बताया कि ईसाई धर्म को बौद्ध, ब्राह्मण तथा इस्लाम–इन तीन प्रमुख मिथ्या धर्मों से टक्कर लेनी है। वह पुन: लिखता है–

''किस प्रकार इस समय विश्व में ईसाई धर्म से टक्कर लेने वाले तीन बड़े धार्मिक दर्शनों–ब्राह्मण धर्म, बौद्ध धर्म एवं इस्लाम के अध्ययन के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टिकोण से भारत पर हमारा आधिपत्य विशिष्ट उत्तरदायित्वों एवं अवसरों से संयुक्त है।''

प्रस्तावना, पृ०१९

ईसाई लेखक ने अपना मुखौटा उतारकर रख दिया। उसका अध्ययन न केवल गोरे साम्राज्य को प्रश्रय देने, अपितु ईसाई धर्म प्रचार द्वारा पौरस्त्य धर्मों का खण्डन करने में भी सहायक बनेगा-ऐसा उसका विश्वास है।

उसी विलियम्स ने संस्कृत अध्ययन को ईसाई प्रचार कार्य के परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास करते हुए एक भाषण दिया था, जिसका शीर्षक था-

"The study of sanskrit in relation to missionary work in India. A lecture delivered by Sir. M. Williyams, Boden Professor of Sanskrit in the University of Oxford."

ईसाई मत की सहायता के मिथ्या अभिमान को लेकर चलने वाला यह विद्वान् अन्य मतों के भौगोलिक ज्ञान का उपहास करता हुआ लिखता है-

''अन्य धार्मिक दर्शन बहुत-सी ऐसी वस्तुओं से भरे पड़े हैं, जो विज्ञान की प्रत्येक शाखा में मिथ्या हैं, जिससे भूगोल का एक सरल पाठ भी ऐसे धर्मों के प्रत्येक विचारवान् व्यक्ति की निष्ठा को हिलाने लगता है।''

प्रस्तावना, पाद टिप्पणी, पृ०४७

अन्य मतों की भौगोलिक परिकल्पनाओं का मजाक बनाने वाला प्रो० विलियम्स यह भूल जाता है कि बाईबिल में ही सृष्टि रचना विषयक जो बातें लिखी हैं, वे सर्वथा विज्ञान एवं सृष्टिविद्या की विरोधिनी हैं, जिन्हें पढ़-पढ़कर टामस पेन जैसे न जाने कितने पाश्चात्य मनीषी ईसाई विश्वासों को त्याग बैठे तथा जिन्होंने ईसाई मत ग्रन्थों की आलोचना करते हुए ऐसे ऐसे ग्रन्थ लिखे, जिसके कारण एक बार में ही पश्चिम से ईसाई मत की नींव हिल गयी थी।

इन्हीं लोगों ने जान-बूझकर वेदों का अध्ययन अपनी संकुचित एवं पक्षपातपूर्ण दृष्टि से किया। वेदों की उदात्त शिक्षा को आत्मसात् न कर पा सकने वाले विन्टरनिट्ज ने लिखा-

"We hear in the Rigveda incest, seduction, conjugal unfaithfulness, procuring of abortion, as also of deception, thebt and robbery."-History of Indian Literature, सं०१९२७, पृ०६७-६८।

ऋग्वेद के सूक्तों में सपिण्ड और सगोत्र दारकर्म, स्त्री अपहरण, व्यभिचार, भ्रूणहत्या तथा धोखा, चोरी और डकैती का उल्लेख है। पैगम्बर द्वारा लूट की बेटियों की कथा को भूलकर वैदिक साहित्य पर लगाया गया यह आरोप सर्वथा मिथ्या ही है।

ब्राह्मण-ग्रन्थों का अध्ययन तो और भी निराशाजनक रहा। मैक्समूलर ने अपने ग्रन्थ में लिखा-

"The brahmins judged by themselves are most disappointing. No one would have supposed that in so primitive a state of society there could have risen a literature which for pedantry and downright absurdity can hardly be matched anywhere. There is no talk of a striking thought. But these

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

are only like fragments and load. These works deserve to be studied as the physician studies the twaddle of idiots and the raving of mad men"

History of Sanskrit Literature, p-389.

अर्थात् ब्राह्मणग्रन्थों का जब स्वतन्त्र रूप से निरीक्षण किया जाए, तो वे अत्यन्त निराशाजनक प्रतीत होते हैं। कोई अनुमान भी नहीं कर सकता है कि समाज की प्राथमिक अवस्था में ऐसा वाङ्मय उत्पन्न हो सकता था जो वृथा पाण्डित्य प्रदर्शन और नितान्त उपहासास्पद होने की दृष्टि से अद्वितीय हो। इसमें सूझबूझ के विचार भी हैं परन्तु वे अत्यल्प हैं। वे सिक्कों का पीतल में जड़ित बहुमूल्य रत्नों के समान है। इन ग्रन्थों का अध्ययन इस प्रकार होना चाहिये जिस प्रकार कोई चिकित्सक किसी जड़मति की अनर्गल वाचालता तथा उसके उन्मत्त प्रलाप का अध्ययन करता है।

ऋषिप्रणीत ग्रन्थों को पागलों का प्रलाप कहनेवाला यह गर्वोन्मत्त ईसाई विचारक अपनी आँख का शहतीर नहीं देख पाता। एक अन्य पश्चिमी लेखक को ब्राह्मणग्रन्थों की व्याख्या प्रणाली जब समझ नें नहीं आयी तो वह लिख गया-

"For wearisome prolixity of exposations, charaterised by dogmatic assertions and a flimsy symbolism-rather than by serious reasoning, these works are perhaps not equaled anywhere."

जूलियस् एंगिल्स, शतपथ ब्राह्मण का अंग्रेजी अनुवाद, प्रस्तावना, खण्ड १, पृ०९

अर्थात् व्याख्या के भ्रान्तिकारी दुरूह विस्तार की विशेषता के लिये, जिसमें तर्कावकाशरहित और सारहीन प्रतीक हों तथा गम्भीर हेतु न हों, ये ग्रन्थ कदाचित् संसार में अपनी समता नहीं रखते। ब्राह्मणग्रन्थों की मन्त्रव्याख्या प्रणाली तथा उनकी प्रतीकात्मक व्यञ्जना को न समझने वाला पूर्वाग्रही व्यक्ति ही यह आक्षेप कर सकता है।

अडोल्प केगी ने जब ऋग्वेद का अध्ययन किया तो उसे इस संहिता के सूक्त विभिन्न कोटियों के प्रतीत हुए। उसने कहा-

Therefore the hymns very greatly in value, by the splendid productions of a divinely inspired poet we find a large number of unimportant, tiresome and overburdened compositions.

अतएव महत्ता में ये सूक्त पृथक्-पृथक् कोटियों के हैं। दिव्य प्रेरणा वाले कवियों के साथ-साथ हमें बहुत सी अनावश्यक, थकाने वाली और बोझिल कृतियाँ भी मिलती हैं।

यही बात उसने ब्राह्मणग्रन्थों के लिये भी लिखीं-

"The Brahmans, all of them marvelous products of priestly knowledge and perverted imagination. Dogma, mythology, legend, philosophy exegesis, etemology are here interwoven in reckless confusion. The Rigveda, p.5

ब्राह्मणग्रन्थ सभी पौरोहित्यज्ञान और विकृत कल्पना की आश्चर्यजनक उपज हैं। अन्ध धारणा, कल्पित कथा-कहानी, दर्शन, व्याख्या, व्युत्पत्ति-ये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब इनमें अन्धाधुन्ध ओतप्रोत किये गये हैं। वास्तविक बात यह है कि पाश्चात्य विद्वानों ने संहिता तथा ब्राह्मण भाग का अध्ययन भारतीय चिन्तन के प्रतिकूल दृष्टिकोण से किया। यही कारण है कि उन्हें मन्त्र तथा ब्राह्मणभाग में कथा-कहानी और पुराण-गाथा के तत्त्व दृष्टिगोचर होते हैं। वैदिक-विज्ञान को आत्मसात् करने की मेधा से ये लोग विहीन हैं।

आर्यों के देवताओं और पुरोहितों को 'बर्बर' संज्ञा से अभिहित करते हुए 'ऋग्वेद के धर्म' (रिलीजन दास वेद) के निम्न उद्धरण को विन्टरनित्स ने अपने ग्रन्थ में उद्धृत किया है-

"Sacrificial songs and litanies with which the priests of the Vadic-Aryans on a temple less place pf sacrifice, at the sacrificial fires strewn around with the grass, invoked their gods. Barbarian priests barbarian gods."

हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर-पृ०७५

यज्ञीय गीतों और निविदों में दोहराई गयी प्रार्थनाएं, जिनसे वैदिक आर्यों के पुरोहित मन्दिरविहीन यज्ञस्थल पर यज्ञाग्नियाँ जला कर इनके चारों ओर बर्हि (कुशा) बिछाकर अपने देवताओं का आह्वान करते थे। बर्बर पुरोहित और बर्बर देवता।

वैदिक देवताओं को बर्बर कहकर पुकारने वाला वेबर बाइबिल के उस ईश्वर को भूल गया जिसे प्रसन्न करने के लिये बछड़े को मार कर उसका रक्त वेदी पर छिड़कने का आदेश है। यदि पशुओं का बलिदान ही ईश्वर की पूजा का साधन है तो सामी मत वाले भी इसके लिये उतने ही दोषी हैं जितने परवर्ती शाक्त और वाममार्गी।

वास्तविक बात तो यह है कि ब्राह्मणग्रन्थों के रचयिताओं ने जिस प्रकार मन्त्रों की व्याख्या की थी, उसे भलीभांति समझने और स्वायत्त करने की क्षमता का इन विद्वानों में नितान्त अभाव था। तभी तो मारिस ब्लूमफील्ड ने लिखा-

"Both the performances and their explanations are treated in such a way, and spun out to such length, as to the reader there works (Brahman) are on the whole monuments of tediousness and intrinsic stupidity.

-रिलीजन ऑफ दी वेदाज, पृ०४४ , (१९०८ ई०)

यज्ञ-क्रियाएं और उनके व्याख्यान, दोनों इस प्रकार लिखे गये और इतने लम्बे काते-बुने गये हैं कि ये ब्राह्मणग्रन्थ भ्रान्ति के स्मारक और अन्तर्निहित मूर्खता के ग्रन्थ बन गये हैं। इसी प्रसंग में उसने आगे लिखा-

"We are often vexed with their instable, contradictory and partly foolish statement."

रिलीजन ऑफ दी वेदाज-पृ०५७

भारत के धार्मिक चिन्तन तथा शास्त्रीय परम्परा से अनभिज्ञ व्यक्ति ही यह कह सकता है कि उनके अस्थिर, परस्पर विरुद्ध और आंशिक मूर्खतापूर्ण बयानों से हम तंग आ गये हैं। वस्तुतः रहस्यवादपूर्ण शैली और प्रतीकविधान को न जानने वाले पाश्चात्य समीक्षक ऐसी ही बातें लिखकर ब्राह्मणग्रन्थों को बदनाम करने की चेष्टा करते रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाश्चात्यों की धारणाएं उनके भारतीय शिष्यों ने भी यथावत् ग्रहण कीं। अपनी बुद्धि का उपयोग करने की अपेक्षा बाबा वाक्यं प्रमाणम् की भांति उन्होंने पश्चिमी गुरुओं की हां में हां मिलाई। तभी तो बटकृष्ण घोष ने लिखा-

"Next to the Samhitas are the Brahmanas-an arid desert of puerile speculations ritual ceremonies.

वैदिक एज, पृ०२५

संहिताओं के पश्चात् ब्राह्मणग्रन्थ हैं-बालिश कल्पनाओं तथा याज्ञिक संस्कारों के शुष्क मरुस्थल।

आवश्यकता इस बात की है कि हम वैदिक साहित्य का अध्ययन करते समय पश्चिमी विद्वानों के इन पूर्वाग्रहों, पक्षपातपूर्ण धारणाओं तथा संकुचित विचारों से अपने आपको पूर्णतया मुक्त रखें, तभी हम उदात्त एवं महत्त्वपूर्ण भव्य सामग्री को आत्मसात् कर सकेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotiḥ
ISSN 2277-4351
Vol.1, No.2 (80-87) Jan-jun 2013

वेद और ईश्वर

(स्व०) श्रीपाद दामोदर सातवलेकर,
सञ्चालक-स्वाध्यायमण्डल, पारडी (बलसाड)

वेद पर विचार करने वाले यूरोपीय और भारतवर्षीय आधुनिक विद्वानों की सम्मति है कि 'वेद में ईश्वरविषयक विचार नहीं हैं, क्वचित् नासदीय सूक्त के समान कुछ विचार हैं, परन्तु वे अपवाद हैं। वेद में सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि पदार्थों की स्तुति है, परन्तु ब्रह्म, परमात्मा अथवा ईश्वरविषयक कोई विशेष विचार नहीं है।' इन विद्वानों का यह भी कहना है कि परमात्मविषयक कल्पना वेदसंहिताओं में नहीं थी, वह उपनिषदों में उत्पन्न होकर बढ़ गयी है और सगुण उपासना तो पुराणों से ही फैली है।

आधुनिक विद्वानों की इस सम्मति को देखकर जब हम प्राचीन भारतीय विद्वानों की सम्मति देखने का यत्न करते हैं, तब ऐसा प्रतीत होता है कि 'वेद समस्त विद्याओं का भाण्डार है और उसमें आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त की सभी विद्याएं निहित हैं।' उपनिषद् और गीता में तो स्पष्ट कहा गया है कि-

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि।। ओमित्येतत्।। कठोपनिषद् १.२.१५

'सम्पूर्ण वेद जिसका वर्णन करते हैं, सब तप जिसकी प्राप्ति के लिये किये जाते हैं और जिसके उद्देश्य से ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है, वह (परमात्मा का) स्थान ओंकार से बोधित होता है।' यहाँ ऐसा स्पष्ट कहा है कि सम्पूर्ण वेदमन्त्र परमात्मा का ही वर्णन कर रहे हैं अर्थात् उपनिषत्कार की सम्मति इस विषय में निश्चित है। यही भाव गीता में भी है-

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः। (१५.१५)

'सम्पूर्ण वेदों के द्वारा मेरा (ईश्वर का) बोध होता है।' जो लोग कहते हैं कि वेद में ईश्वरविषयक ज्ञान नहीं है, उपनिषद् की और भगवद्गीता की सम्मति उनके विरुद्ध है।

वेद में ईश्वरविषयक ज्ञान है या नहीं, इसका जब हम विचार करने लगते हैं, तब हम उपर्युक्त वचनों को पृथक् नहीं कर सकते। आधुनिक विचारक जिन उपनिषदों में ब्रह्मज्ञान का वर्णन बतलाते हैं, उन्हीं उपनिषदों की यह सम्मति है कि वेद के सभी वचनों में एक ही अद्वितीय सत्ता का विचार किया गया है। यहाँ एक बात और यह विचारणीय है कि स्वयं उपनिषद् अपने ज्ञान के आविष्कार के प्रसंग में वेदसंहिता के वचनों को ही प्रमाणरूप से आदरणीय मानते हैं। जो लोग उपनिषदों का अध्ययन करते हैं, उन्हें इस बात का पता है। इससे सिद्ध होता है कि अध्यात्मज्ञान का उपदेश करने वाले उपनिषद् वेदमन्त्रों को ही प्रमाण मानते हैं, इसलिये वेदमन्त्रों में भी आत्मा, ब्रह्म अथवा ईश्वरविषयक ज्ञान अवश्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होना चाहिये। स्वयं संहिता के मन्त्र में भी यह बात स्पष्ट शब्दों में कही है-

यस्तन्न वेद् किमृचा करिष्यति ।

(ऋग्०१.१६४.३९)

'जो उसको नहीं जानता, वह वेद-मन्त्र लेकर क्या करेगा?' अर्थात् मन्त्र पढ़ने की सार्थकता तभी होगी जब उस पढ़नेवाले को (तत् वेद) उस परमपद का ज्ञान होगा। जिसको वह ज्ञान नहीं होगा, उसका वेदाध्ययन व्यर्थ है। इस मन्त्र का विचार करने पर भी यही स्पष्ट होता है कि वेदमन्त्रों की अन्तिम सिद्धि परमात्म पद का ज्ञान ही है।

इन सब वचनों पर मनन करने से हमें ऐसा स्पष्ट पता चलता है कि आधुनिक विद्वानों का यह मत कि वेद में ईश्वरविषयक ज्ञान नहीं है, सर्वथा अशुद्ध है। यहाँ कई पाठक कहेंगे कि 'केवल वचनों को उद्धृत करने से इस पक्ष की सिद्धि कैसे हो सकती है?' यह कहना ठीक है, अत: अब हम वेदसंहिता के मन्त्रों से ही ईश्वर-विषयक ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है, इसका प्रमाणसहित विवरण प्रस्तुत करते हैं। इस विषय में सबसे प्रमुख यह वेदमन्त्र विचार करने योग्य है-

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गुरुत्मान्। एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥ ऋग्०१.१६४.४६॥

'(एकं सत्) सत्य तत्त्व एक ही है, परन्तु (विप्राः बहुधा वदन्ति) ज्ञानी लोग उसका वर्णन अनेक रीति से करते हैं, उसी एक तत्त्व को इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य सुपर्ण, गरुत्मान्, यम और मातरिश्वा कहा जाता है।' अर्थात् उसी एक आत्मतत्त्व के ये अनेक नाम हैं। एक के अनेक नाम व्यवहार में भी होते हैं। एक ही मनुष्य पुत्र, पिता, भाई, पति, चाचा, मामा, भतीजा आदि नामों से पुकारा जाता है और यदि वह अधिकारी हुआ तो उसी को तहसीलदार, जज, दीवान आदि नामों से पुकारते हैं। व्यावहारिक नाते से ये विविध नाम होने पर भी इन अनेक नामों से बोधित होनेवाला मनुष्य एक ही होता है। इसी तरह **अग्नि, इन्द्र, पूषा आदि अनेक नामों से सम्बोधित होनेवाला एक ही ब्रह्म, आत्मा अथवा ईश्वर है। नाम अनेक होने पर भी तत्त्व अनेक नहीं हैं।**

'अग्नि, वायु आदि सृष्टि के अन्तर्गत तत्त्वों की ही पूजा वेद में कही है' यह मत उपर्युक्त वेदमन्त्र द्वारा खण्डित हो जाता है और 'अग्नि आदि अनेक नामों से एक ही आत्मा का बोध होता है' यह बात सिद्ध हो जाती है। इस पर भी आधुनिक विद्वानों का यह कथन है कि 'यह मन्त्र अर्वाचीन है, अतः प्रामाणिक नहीं है।' इस कारण अब हम इस विषय पर अन्य रीति से विचार करते हैं-

पाठक! 'इन्द्रिय' शब्द सब जानते हैं; 'इन्द्र' शब्द के साथ शक्तिवाचक 'य' प्रत्यय लगाकर (इन्द्र+य) इन्द्रिय शब्द बना है। 'इन्द्रिय' शब्द का मूल अर्थ 'इन्द्र की शक्ति' है। परन्तु वेदमन्त्रों में तथा भाषा में 'इन्द्रिय' शब्द आंख, नाक, कान, हाथ, पैर आदि इन्द्रियों के लिये प्रयुक्त होता है। क्योंकि इन आंख, नाक, कान, हाथ, पैर आदि से उनके अन्दर निवास करनेवाले 'इन्द्र' की शक्ति प्रकट होती है। यदि आंख, नाक, कानों में 'इन्द्र-शक्ति' कार्य कर रही है तो इससे निःसन्देह यह अनुमान हो सकता है कि इनके पीछे अथवा बीच में इन्द्रदेव बैठा है। यदि इनके पीछे इन्द्रदेव न होता, तो इनमें इन्द्र-शक्ति कहाँ से आती और इनका इन्द्रिय नाम भी कैसे सार्थक होता? अतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह निःसन्देह सत्य है कि आंख, नाक, कान आदि के पीछे इन्द्रदेव विराजमान हैं, देखिए-

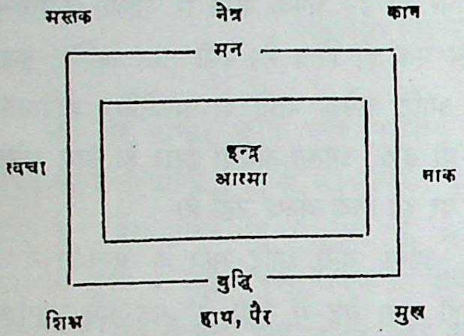

इसी प्रकार यहाँ पाठक अन्यान्य इन्द्रियों की भी कल्पना कर सकते हैं। इन्द्रदेव की शक्ति प्रथम बुद्धि से आती है और वहाँ से मन में तथा मन से इन्द्रियों में आकर कार्य करती है। इस विचार से सिद्ध होता है कि इन्द्र देवता अपने अन्दर है और उसकी शक्ति अपनी इन्द्रियों में आकर कार्य करती है। यह इन्द्रदेव हमारा 'आत्मा' ही है। वेद के मन्त्रों में जो इन्द्रदेवता का वर्णन है वह इसी आत्मा का वर्णन है। और जो आत्मा का वर्णन है वही परमात्मा का वर्णन होता है; क्योंकि घटाकाश, मठाकाश और महाकाश इन तीनों आकाशों में वस्तुतः एक ही आकाश है, अतः किसी भी आकाश का वर्णन किया जाये वह उस एक ही आकाश का वर्णन होता है, इसी तरह

जीवात्मा	परमात्मा
इन्द्र	महेन्द्र
देव	महादेव
ब्रह्म	परब्रह्म, ज्येष्ठब्रह्म
ईश	ईश्वर, परमेश्वर
पुरुष	पुरुषोत्तम
नर	नारायण
रुद्र	महारुद्र
जीव	शिव

इत्यादि शब्द-प्रयोगों में विभिन्न वस्तुओं का वर्णन नहीं है, प्रत्युत एक ही सर्वगत स्थाणु आत्मा का वर्णन है। अतः अपनी इन्द्रियों के पीछे जो 'इन्द्र' है वही इन्द्र किंवा महेन्द्र, अग्नि आदि देवताओं के पीछे है, देखिए-

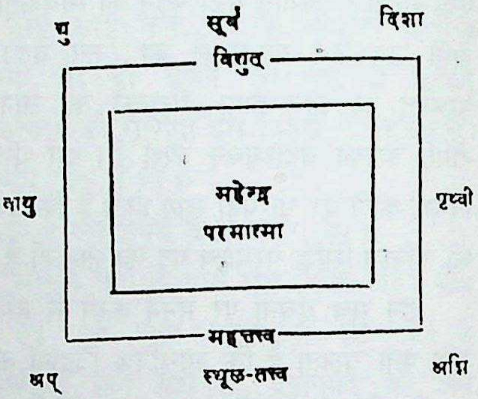

यहाँ भी पाठक अन्यान्य देवताओं की कल्पना कर सकते हैं। शरीर में इन्द्र है और सृष्टि में महेन्द्र है, शरीर में आत्मा है और सृष्टि में परमात्मा है. शरीर में देव है और जगत् में महादेव है, शरीर में ईश है और जगत् में परमेश्वर है। यहाँ जो छोटे-बड़े का भाव है वह अज्ञ जनों के बोध के लिये है, वस्तुतः इनमें भेद नहीं है क्योंकि दोनों स्थानों में एक ही तत्त्व है, इसका वर्णन भगवद्गीता में इस प्रकार है-

नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनम्।

(२.२४)

'यह आत्मा नित्य (सर्वगतः) सर्वव्यापक (स्थाणुः) सर्वाधार, अचल और सनातन है।' ऐसी स्थिति में यदि हमने अपनी सुबोधता के लिये शरीरव्यापी आत्मा का नाम 'परमात्मा' किंवा 'महेन्द्र' रक्खा तो उस मूल एक तत्त्व में कौनसा भेद हो गया? अस्तु।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तरह वेदमन्त्रों में जो इन्द्र-देवता का वर्णन है, वह निःसन्देह इसी एक आत्मतत्त्व का ही वर्णन है। जो पिण्ड में है वही ब्रह्माण्ड में है, पिण्ड-ब्रह्माण्ड का न्याय एक ही है और इसी रीति से परमेश्वर का ज्ञान हो सकता है। वेदमन्त्रों में इसी रीति से परमेश्वर का ज्ञान दिया गया है। किसी को सन्देह न हो इसलिये यह बात वेद ने ही स्पष्ट कर दी है; देखिए-

ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम्।

(अथर्व०१०.७.१७)

'जो पुरुष में अर्थात् मनुष्य के शरीर में ब्रह्म देखते हैं, वे परमेष्ठी को भी जान सकते हैं।' अर्थात् मनुष्य के शरीर में जो आत्मा, ब्रह्म अथवा इन्द्र का साक्षात्कार करते हैं, वे समष्टि-जगत् में परमात्मा, परब्रह्म किंवा महेन्द्र को जान सकते हैं क्योंकि पिण्ड-ब्रह्माण्ड का एक ही नियम है।

इस विवेचन से पाठकों ने जान लिया होगा कि वेद का इन्द्र देवता किसी तरह परमेश्वर का बोध करता है और साथ ही जीवात्मा का भी वर्णन करता है। जो लोग इस तरह वेद का अध्ययन करेंगे, वे ही वेदमन्त्रों में सर्वत्र परमात्म-ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ होंगे। आधुनिक लोग केवल शब्द का ऊपरी अर्थ देखते हैं, अतः वे वेदमन्त्रों के मुख्यार्थ से वंचित रह जाते हैं। शरीर में जीवात्मा है, इतना ज्ञान होने से ही जगत् में परमात्मा है, यह ज्ञान हो जाता है। जो कहते हैं कि इन्द्र देवता किसी अन्य पदार्थ का बोध कराता है, वे गलती पर हैं। व्याकरणाचार्य भगवान् पाणिनि मुनि ने भी 'इन्द्रिय' शब्द की सिद्धि करते हुए कहा है-

इन्द्रियं इन्द्रलिंग इन्द्रदृष्टं इन्द्रसृष्टं इन्द्रजुष्टं इन्द्रदत्तं इति वा। अष्टा०५.२.९३॥

इन्द्रः आत्मा तस्य लिङ्गं करणेन कर्तुरनुमानात्। (कौमुदी)

'इन्द्र नाम आत्मा का है, यह आत्मा अन्दर है ऐसा अनुमान इन्द्रिय व्यापार देखने से होता है, क्योंकि यह इन्द्र ने किया है, बनाया है और वही इससे कार्य करता है'। इस सूत्र के देखने से यह सिद्ध होता है कि 'इन्द्र' शब्द का जो अर्थ हमने कहा है वह ऋषिसम्मत है। अतः वेद का इन्द्र देवता शरीरस्थित स्थायी जीवात्मा का और सृष्टिव्यापक परमात्मा का समानतया बोधक है। उदाहरण देखिये-

इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः। सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान् न नेमिः परि ता बभूव॥

ऋग्०१.३२.१५॥

'इन्द्र स्थावर-जङ्गम-जगत् का राजा है, वही प्रभु शान्त और सींगवाले मारक पशुओं का भी स्वामी है। सब प्रजाओं का वही एक राजा है। जिस तरह नेमि के चारों ओर चक्र होता है, उसी प्रकार उस प्रभु के चारों ओर यह विश्व है।' इस प्रकार के मन्त्रों में इन्द्र शब्द परमात्मा किंवा परमेश्वर वाचक है। अब जीवात्मा के विषय में देखिए-

अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽव तस्थे कदा चन। ऋग्०१०.४८.५॥

'मैं इन्द्र हूं, मेरा पराजय नहीं होता, यह धन मेरे पास ही रहता है, मैं कभी नहीं मरता, मैं अमर हूँ। यह वर्णन शरीर में रहने वाले प्रबुद्ध जीवात्मा का है। यहाँ पाठक इस बात को ध्यान में रक्खें कि आज जो जीव है, वही कालान्तर में उन्नत होता हुआ शिव बन जाता है। आज जो छोटा इन्द्र है, वही एक दिन महेन्द्र बनेगा, आज जो बद्ध है वही मुक्त होगा। इसीलिए जीवात्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और परमात्मा के नाम एक ही वेद में आये हैं। अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि नाम इसी कारण वेद में इन दोनों के हैं। पिता-पुत्र के नाम एक होना ही सिद्ध करता है कि जो आज पुत्र है वही कुछ समय व्यतीत होने के पश्चात् पिता बनेगा। प्रत्येक पुत्र पिता होने का अधिकारी है, इसी तरह प्रत्येक आत्मा परमात्मा बनेगा, प्रत्येक पुरुष कभी न कभी पुरुषोत्तम हो जायेगा। इस तरह वेदमन्त्रों में जैसा पुरुष का वर्णन है वैसा ही पुरुषोत्तम का भी वर्णन है, इसीलिये श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है कि 'सब वेदों से ईश्वर का ही वर्णन होता है।' (गीता १५.१५) यहाँ तक जो विवेचन किया गया है उससे यह वैदिक वर्णन की शैली सुस्पष्ट हो जायेगी।

अब विशेष स्पष्टीकरण के लिये अग्निदेव का थोड़ा सा वर्णन देखते हैं-

त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोताऽस्या धियो अभवो दस्म होता। (ऋग्०६.१.१)

'हे अग्ने! (त्वं प्रथमः मनोता) तू पहला मननकर्त्ता है और हे (दस्म) दर्शनीय अग्ने! तू (धियः होता) बुद्धि का प्रदाता है।' यहाँ सायणाचार्य 'मनोता' शब्द का अर्थ 'मनः यत्र ऊतं सम्बद्धं भवति' ऐसा करते हैं। जहाँ मन सम्बद्ध हुआ होता है, यह बात प्रत्येक मनुष्य अपने अन्तःकरण का विचार करके जान सकता है। इसी प्रकार बुद्धि का दाता यहाँ आत्मा ही है। इसलिये यह वर्णन जीवात्मपरक है। यही विषय ऐतरेयब्राह्मण में अधिक स्पष्ट किया गया है। अब यह भाग देखिये-

'त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोतेति। ...तिस्रो वै देवानां मनोतास्तामु हि तेषां मनांस्योतानि। वाग्वै देवानां मनोता, तस्यां हि तेषां मनांस्योतानि। गौर्वै देवानां मनोता...अग्निर्वै देवानां मनोता...।' (ऐत०ब्रा०२.१०)

'देवों के तीन मनोता हैं, वाक् देवों का मनोता है क्योंकि उसमें देवों का मन सम्बन्धित हुआ होता है। गौ और अग्नि ये दूसरे दो मनोता हैं।' यहाँ जो वाणी को मनोता कहा है, उससे शरीरान्तर्गत जीवात्मा के साथ इस मन्त्र का सम्बन्ध स्पष्ट होता है-

अयं होता प्रथमः पश्यतेममिदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु। अयं स जज्ञे ध्रुव आ निषत्तोऽमर्त्यस्तन्वा३ वर्धमानः॥ ऋग्०६.९.४॥

'यह पहिला हवनकर्त्ता अग्नि मरणधर्मवाले मनुष्यों में अमर ज्योतिरूप है। यह (अमर्त्यः तन्वा वर्धमानः) अमर होता हुआ भी शरीर के साथ बढ़ता है और इस जीवनरूप यज्ञ में स्थिर है।' यहाँ मर्त्य-शरीरों में जो अमर आत्मा की ज्योति है, उस आत्माग्नि का ही वर्णन है। मनुष्य का जीवन रूप शतसांवत्सरिक यज्ञ चल रहा है और इस जीवनयज्ञ में यही आत्म ज्योतिरूप अमर आत्माग्नि प्रदीप है। श्रीसायणाचार्य इस मन्त्र का अर्थ (मर्त्येषु..शरीरेषु अमृतं मरणरहितं इदं ज्योतिः जाठररूपेण वर्तते) 'मरनेवाले शरीर में अमरज्योति उदर में पाचक-शक्ति रूप से है।' ऐसा करते हैं। तात्पर्य, यहाँ का अग्नि आग नहीं है, परन्तु मर्त्य-शरीरों में जो अमर सत्य तत्त्व है, वही है। अब 'अग्नि' शब्द से परमेश्वर वर्णन निम्नलिखित मन्त्र में देखिये-

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम। स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च॥ ऋग्०१.२४.२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हम (अमृतानाम् प्रथमस्य अग्नेः) अमर देवों में पहले अग्निदेव का (चारु नाम) सुन्दर नाम (मनामहे) मन में लाते हैं। वही हम सबको प्रकृति में (पुनः दात्) पुनः-पुनः डालता है और जिससे हम अपने माता-पिता को बारम्बार देख सकते हैं।'

यहाँ सम्पूर्ण अमर देवों में पहले प्रथम स्थान में रहने वाले अग्निदेव का वर्णन है, यह अग्निदेव जीवात्मा को पुनर्जन्म का योग करता है। यह निःसन्देह परमेश्वर है। अतः उसके नाम-स्मरण करने का उल्लेख है। यहाँ कई पाठक प्रश्न करेंगे कि यहाँ तो 'अग्नि' नाम स्पष्ट है, अतः इससे मुख्य देव का ग्रहण कैसे किया जा सकता है? इस विषय में यह कथन है कि वेद में बहुधा सभी देवताओं के लिये प्रायः सभी नाम प्रयुक्त हुए हैं, अर्थात् अग्नि को इन्द्र कहा है और इन्द्र को भी अग्नि कहा है। इसी प्रकार अन्य देवताओं को भी अन्य देवताओं के नाम दिये हैं। इस कारण हम कह सकते हैं कि इन शब्दों का जो अर्थ लौकिक संस्कृत में है, वही अर्थ वेदमन्त्र में नहीं है, देखिये-

एष ब्रह्मा एष इन्द्रः॥ (ऐ०उ०५.३)

स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः॥

(महानारा०११.१३, कैवल्य ९)

स इन्द्रः सोऽग्निः सोऽक्षरः।

(नृ०पू०१.४)

एष हि खल्वात्मा इन्द्रः॥

(मैत्री०उप०६.८)

'वही ब्रह्मा, इन्द्र, शिव, अग्नि, अक्षर और आत्मा है।' अर्थात् ये सब नाम एक सत्तत्व के हैं। जो तत्त्व पूर्वोक्त ऋग्वेद के 'इन्द्रं मित्रं' इत्यादि मन्त्र में कहा गया था, वही यहाँ कहा गया है। वेद में भी अग्नि को 'तू इन्द्र है' ऐसा कहा है और इन्द्र को ही 'तू अग्नि है' ऐसा कहा है, देखिये-

त्वमग्न इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरुरुगायो नमस्यः।

त्वं ब्रह्मा रयिविद् ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्तः सचसे पुरन्ध्या॥

त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्वं मित्रो भवसि दस्म ईड्यः।

त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य संभुजं त्वमंशो विदथे देव भाजयुः॥

त्वमग्ने त्वष्टा विधते सुवीर्यं तव ग्नावो मित्रमहः सजात्यम्।

त्वमाशुहेमा ररिषे स्वश्व्यं त्वं नरां शर्धो असि पुरूवसुः॥

त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे।

त्वं वातैररुणैर्यासि शंगयस्त्वं पूषा विधतः पासि नु त्मना॥

त्वमग्ने द्रविणोदा अरंकृते त्वं देवः सविता रत्नधा असि।

त्वं भगो नृपते वस्व ईशिषे त्वं पायुर्दमे यस्तेऽविधत्॥ ऋग्०२.१.३-७॥

इन मन्त्रों में अग्नि के लिये 'इन्द्र, वृषभ, विष्णु, ब्रह्मा, ब्रह्मणस्पति, राजा वरुण, मित्र, अर्यमा, अंश, त्वष्टा, रुद्र, असुर, भग' ये शब्द प्रयुक्त किये हैं। इससे भी 'एक सत्य वस्तु के अनेक नाम होते हैं' यही बात सिद्ध होती है और अग्नि शब्द से 'आग' अर्थ लेने वालों का पक्ष खण्डित हो जाता है। जो यूरोपियन विद्वान् कहते हैं कि ऋग्वेद का 'इन्द्रं मित्रं०' मन्त्र आधुनिक होने के कारण अप्रमाण है, वे यदि, वही बात इस प्रकार अग्निसूक्त में भी कही है, देखेंगे, तो उनको अपना

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मत बदलना पड़ेगा। केवल अग्निसूक्त में ही नहीं, प्राय: सब देवताओं के विषय में ऐसा वर्णन आता है अर्थात् वेद का अग्नि इन्द्र है और इन्द्र अग्नि है, अत: दोनों एक हैं, यह बात इसी से सिद्ध होगी, और यदि इसी विचार-परम्परा से सब देवताओं से एक ही सत्य वस्तु का ज्ञान हुआ तो फिर 'सब वेद एक ही परमपद का वर्णन करते हैं।' यही बात सिद्ध हुई। फिर 'सब वेद एक ईश्वर का वर्णन करते हैं' इस विधान में किसी को भी सन्देह ही नहीं रहेगा।

यदि अग्नि और इन्द्र एक ही हैं, तो दोनों के वर्णन एक दूसरे के लिये भी प्रयुक्त हो सकते हैं। इतनी बात कोई न भी माने, परन्तु इन्द्रसूक्तों में जो इन्द्र देवता का स्वरूप वर्णन किया है, वह तो मानना ही पड़ेगा, वह देखिये-

रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय। इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश॥ ऋग्०६.४७.१८॥

'इन्द्र प्रत्येक पदार्थ के रूप में तद्रूप होकर रहा है, यह उसका रूप देखनेयोग्य है। यह इन्द्र अपनी शक्तियों से बहुत रूप धारण करता है।'

इस मन्त्र में तो यह बात नि:सन्देह कही गयी है कि 'परमेश्वर ही अपनी माया से अनेक रूप धारण करता है' यह वेदान्तशास्त्र का कथन है और वह इन्द्र सूक्त में है। यह मन्त्र देखकर म०विल्सन ने कहा है कि

Indra is here indetified with parameshwara, the supreme first cause, identical with creation.

इन्द्रसूक्त में इस प्रकार परमेश्वर का स्वरूप वर्णन किया है।

यूरोपियन लोगों के अन्त:करणों में इस विषय में सन्देह होना स्वाभाविक है, परन्तु भारतीय विद्वान् जब कुछ भी विचार न करते हुए उन्हीं के सुर में सुर मिलाकर उन्हीं के समान नाचने लगते हैं, तब आश्चर्य होता है। अस्तु, जो बात इन्द्र के विषय में कही है, वह अग्नि के विषय में भी सत्य है, क्योंकि अग्नि और इन्द्र एक ही हैं, भिन्न नहीं, यह बात इससे पूर्व कही जा चुकी है।

इस तरह वेद में अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि देवताओं के वर्णन से एक ही परमात्मा का वर्णन किया गया है, जो पाठक इस प्रकार देखेंगे उनको यह बात स्पष्ट हो जायेगी कि वेद के मन्त्र एक ही परमतत्त्व का बोध करते हैं।

वेद में जो ब्रह्म के वर्णन के सूक्त हैं, जैसे नासदीय सूक्त, वे तो स्पष्ट ही हैं; अथर्ववेद में अध्यात्मविद्या के अंनेक सूक्त हैं, उनके विषय में भी किसी को सन्देह नहीं हो सकता, परन्तु यहाँ हमने वेद के उस भाग से परमेश्वर का वर्णन सिद्ध करने का यत्न किया है कि जिसके विषय में सर्वसाधारण को सन्देह है। आशा है कि विद्वान् इसका विचार करके इस दृष्टि से वेदमन्त्रों का मनन करेंगे और वेद के मन्त्रों से जो परमपद का ज्ञान मिलता है, वह प्राप्त कर उस परमपद की प्राप्ति के लिए यत्न करेंगे।

अब इस स्थान पर एक शंका का विचार करना आवश्यक है। वह यह कि 'परमेश्वर की क्या आवश्यकता है और जब उसकी हमें आवश्यकता नहीं तो फिर हम उसका विचार ही क्यों करें?' आजकल के शिथिल लोग ऐसा प्रश्न करते हैं, अत: इस पर भी थोड़ा सा विचार करना अत्यन्त आवश्यक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार की शंका करनेवाले अपनी परतन्त्रता को नहीं जानते। जानते होते तो ऐसा प्रश्न ही नहीं कर सकते। मनुष्य की प्रत्येक शक्ति अल्प है और उस शक्ति का विकास विश्व की महती शक्ति के साथ सम्बन्ध होने पर ही सम्भव है। उदाहरण के लिये देखिये-

मनुष्य के आँख है, पर वह सूर्य के होने पर ही कार्य कर सकती है, सूर्य के बिना वह शक्तिहीन है। सूर्य प्रकाश के साथ उसका सम्बन्ध होने से उसकी शक्ति विकसित होती है, अन्यथा नहीं। अर्थात् मनुष्य की दृष्टि अल्पशक्तियुक्त है और वह महती सौर शक्ति से सम्बन्धित होने पर ही कार्यक्षम होती है।

मनुष्य की दूसरी इन्द्रिय कान है, वह आकाश के साथ सम्बन्धित होने पर ही कार्य कर सकती है। जहाँ आकाश नहीं, वहाँ कान कुछ भी कार्य नहीं कर सकते अर्थात् मनुष्य के छोटे से कान महान् आकाश के साथ सम्बन्धित हैं।

मनुष्य के शरीर के घन और द्रवभाग क्रमशः अन्न और जल के साथ सम्बन्धित हैं। खाने को अन्न तथा पीने को पानी न मिले तो ये शरीर के भाग क्षीण होंगे और अन्त में मृत्यु की शरण जाने की अवस्था प्राप्त होगी।

मनुष्य के शरीर में प्राण है और वह विश्वव्यापक महाप्राण वायु के साथ सम्बन्धित है। यदि विश्वव्यापक महाप्राण से मानवी-शरीर का प्राण वियुक्त हो जाये तो जीवन ही समाप्त हो जाये।

इसी प्रकार मानवी शरीर के सब सत्त्वांश विश्व व्यापक महातत्त्वों के साथ सम्बन्धित हैं। मनुष्य-शरीर में एक भी ऐसा तत्त्व नहीं कि जो विश्वव्यापक महातत्त्वों से वियुक्त होने पर भी कार्यक्षम रह सके।

अब विचारणीय प्रश्न यह है कि जब ऐसी वस्तुस्थिति है तो हमारा आत्मा किसके साथ सम्बन्धित होकर अपनी उन्नति कर सकता है, इसका विचार प्रत्येक विचारक को करना चाहिये। यदि परब्रह्म, परमात्मा, परमेश्वर अथवा ईश्वर को न माना जाये, तो उस निराधार स्थिति में हमारा यह स्फुलिंगरूप आत्मा किस प्रकार विकसित हो सकता है? अतः नास्तिक-तत्त्वज्ञान अपने आत्मा को निराधार बनानेवाला है, इसलिये कदापि स्वीकार करने योग्य नहीं है। और आस्तिक-तत्त्वज्ञान अपने आत्मा को महती परमात्मशक्ति का अखण्ड आधार देता है, इसीलिये यह सर्वथा आदरणीय है।

पुत्र कुछ समय के पश्चात् पिता अवश्य होगा, परन्तु बालपन में उसको अपने पिता के आधार से ही अपनी उन्नति करनी चाहिये। इसी प्रकार प्रत्येक नर कभी न कभी नारायण अवश्य बनेगा; परन्तु जब तक वह नारायण नहीं बनता, केवल नर ही है, तब तक उसको नारायण की सहायता लेनी ही चाहिये। इसीलिये ईश्वर में भक्ति करना प्रत्येक नर के लिये योग्य है। 'भगवान्' की भक्ति से ही 'नर' का निःसन्देह 'विजय' होगा। अतः कुतर्क छोड़कर प्रत्येक मनुष्य भगवान् की शरण ग्रहणकर आत्मा को कृतकृत्य करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotiḥ
ISSN 2277-4351
Vol.1, No.2 (88-95) Jan-jun 2013

यो देवानां नामधा एक एव

(स्व०) वासुदेवशरण अग्रवाल, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)

वेदों में '**एको देवः**' यह एक ब्रह्मविषयक सिद्धान्त है। किन्तु अनेक देवों के रूप में उस ब्रह्म की नाना दिव्यशक्तियों का वर्णन किया गया है। अनेक देवों के नाम उस एक ब्रह्म की ही संज्ञाएं हैं। ऋषियों ने आरम्भ में ही इस तत्त्व को सम्यक् रूप से जान लिया था और निश्चित शब्दों में इसका उल्लेख किया है-

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यो देवानां नामधा एकं एव तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या।। ऋग्०१०.८२.३।।

अर्थात् वह ईश्वर सबका पिता या पालन करनेवाला जनक है। वही इस विश्व के सब धर्मों का विधान करनेवाला है। वह समस्त भुवनों के विज्ञान का अधिपति है। देवों के जितने नाम हैं, वे सब उसी एक ईश्वर में घटित होते हैं। फिर भी उसका रहस्य ज्ञात नहीं होता। अतएव उसका सबसे महान् संकेत 'संप्रश्न' है, अर्थात् वह एक अज्ञेय तत्त्व है, जिसे सदा एक प्रश्न के रूप में ही मानना होगा। वह बुद्धि के लिये अप्रतर्क्य है। वह एक गूढ़ पहेली है। जिसे 'शीर्ष-प्रहेलिका' भी कहा गया है। उसकी मीमांसा बहुधा रूपों में की जाती है, फिर भी उस प्रश्न का कोई समाधान या उत्तर प्राप्त नहीं होता। वह ब्रह्म या ईश्वर-तत्त्व 'प्राणमय सुपर्ण' भी कहा गया है। अनेक कवि उस एक सुपर्ण का अपनी वाक्-शक्ति से नाना रूपों में वर्णन करते हैं-

सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति।। ऋग्०१०.११४.५।।

एक ब्रह्म के बहुधा भाव की कल्पना ऋग्वेद का मुख्य विषय दार्शनिक सिद्धान्त है। इस विलक्षण ब्रह्मतत्त्व के लिये 'एक' और 'बहुधा' इन दोनों पक्षों का प्रतिपादन वेदों में पाया जाता है। ऋषियों ने अपने मानसिक आनन्द की अनुभूति से गद्गद होकर एक ओर उस अखण्ड चैतन्य के लिये ''एकमेवाद्वितीयम्' कहा है और दूसरी ओर उसकी नाना-देवात्मक शक्तियों से मुग्ध होकर उसी के सम्बन्ध में 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' यह मत प्रकट किया है-

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।। ऋग्०१.१६४.४६।।

अर्थात् इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, गरुत्मान्, सुपर्ण, यम, मातरिश्वा-ये सब एक ही ईश्वर के अनेक नाम हैं। ज्ञानीलोग जिस दृष्टिकोण से ईश्वर की शक्ति का विचार करते हैं, वैसी ही संज्ञा या नाम के द्वारा उसका वर्णन करते हैं। वस्तुतः उस ईश्वर की सहस्रों महिमाएं हैं। उस अनन्त महिमाशाली ब्रह्म के उतने ही नाम हैं, जितनी वाक् की शक्तियाँ हैं-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहस्रधा महिमानः सहस्रं यावद्ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक्॥ ऋग्०१.११४.९॥

जितने छन्द हैं, सब उसी ईश्वर की महिमा का वर्णन करते हैं। वह सब छन्दों या वेद-वाणियों में व्याप्त विश्वरूप वृषभ है या वर्षारूप प्राण है। उसी की महती वर्षण-शक्ति से विश्व जन्म ले रहा है। उन सब छन्दों को जिनका पर्यवसान ब्रह्म में है, कौन पूरी तरह जानता है? किसी की बुद्धि में सृष्टि के सब अर्थ प्रतिभासित हो सके हैं?

कश्छन्दसां योगमा वेद धीरः।

ऋग्०१०.११४.९॥

कवियों ने अपनी बुद्धि के बल से इस विश्व का यज्ञ के रूप में वर्णन किया है-

यज्ञं विमाय कवयो मनीषः।

ऋग्०१०.११४.६॥

और इस विराट् यज्ञ का यज्ञपति देव वही एक ब्रह्म है। उस यज्ञ के देव को अग्नि भी कहा है-

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥ ऋग्०१.१.१॥

वही यज्ञ का देवता है, वही पुरोहित, ऋत्विज और होता है और वही प्रत्येक अध्यात्मकेन्द्र में मन, प्राण और पञ्चभूत-इन सात रत्नों का आधान करनेवाला है। इन्हीं सात रत्नों को पुराणों की परिभाषा में **'महदादिविशेषान्ताः'** कहा गया है।

ऋग्वेद में जब ईश्वर को 'अग्नि' शब्द से कहा गया है तो सब देवों का उसमें अन्तर्भाव समझ लिया जाता है। ब्राह्मण-ग्रन्थों की स्पष्ट परिभाषा है-

अग्निः सर्वा देवताः। (शत०१.६.२.२०)

जहाँ अग्नि की सत्ता होती है, वहीं सब देवता निवास करते हैं। अग्नि के रूप में विश्व की सब दिव्य शक्तियाँ या देवगण मानव के अध्यात्मकेन्द्र में निवास करते हैं। मूलतः ऋग्वेद में ही अग्नि के सर्वदेवमय होने का विस्तार से उल्लेख किया गया है-

'हे अग्नि! तुम प्रतिदिन अपने तेज से प्रकाशित होते हो। तुम जलों के भीतर से और पाषाण के भीतर से एवं वन-वृक्षों और औषधियों के भीतर से प्रकट होते हो। हे मनुष्यों के सम्राट्! तुम्हारा शुद्ध रूप सब ओर से प्रकट हो रहा है।

'हे अग्नि! यज्ञ के साथ प्रधान ऋत्विज तुम ही हो, तुम ही हमारे गृहपति यजमान हो।

'हे अग्नि! तुम वृषभ इन्द्र हो। तुम ही त्रिलोकी को अपने तीन विराट् चरणों में नापनेवाले विष्णु हो। तुम ब्रह्मा और ब्रह्मणस्पति हो। तुम अपनी शक्ति से सबको धारण करते हो।'

'हे अग्नि! तुम व्रतधारी राजा वरुण हो। तुम ही सब चमत्कारों का विधान करनेवाले मित्र हो। तुम सत्पति अर्यमा हो। तुम ही अंशु सोम हो।

'हे अग्नि! तुम ही त्वष्टा हो।'

'हे अग्नि! तुम द्युलोक के महान् शक्तिशाली असुर रुद्र हो। तुम ही मरुद्गण हो और तुम ही अन्नपति हो। तुम ही वेगवान् वात के रूप में गमन करते हो। तुम ही रक्षक पूषा हो।

'तुम ही द्रविणोदा अर्थात् द्रविणरूप रत्नों के देने वाले हो। तुम ही सविता देव हो। तुम ही भग हो। तुम ही वसुओं के स्वामी हो।

'हे अग्नि! तुम्हें ही लोग पिता, भ्राता, पुत्र और सखा के रूप में मानते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हे अग्नि! तुम ही ऋभु हो और निकट होने से सदा पूजनीय हो।

'हे अग्नि! तुम ही इडा, भारती, सरस्वती- इन तीन देवियों के रूप हो।

'हे अग्नि! तुम ही श्रेष्ठतम प्राणशक्ति हो (उत्तमं वय:)। तुम ही श्री और तुम ही रयि हो।

'हे अग्नि! तुम ही आदित्य के मुख और देवों की जिह्वा हो। तुम्हारे द्वारा ही विश्वेदेव और मर्त्य-मनुष्य अन्न लेते हैं। तुम ओषधियों के पवित्र शिशु हो।

'तुम्हारी महिमा द्युलोक और पृथिवी में व्याप्त है।' (ऋग्०२.१.१-१५)

इस प्रकार इस सूक्त में सर्वदेवत्व या सर्वदेवमय अग्नि के स्वरूप का उपबृंहण पाया जाता है, जो ऋग्वेद का मौलिक दृष्टिकोण है। जहाँ अग्नि रहता है, वहीं वह अपने साथ सब देवों को ले आता है **(स देवाँ एह वक्षति)**। अथवा इसी को दूसरे प्रकार से कहें तो जो अग्नि को समर्पित किया जाता है, वह उसे सब देवों के पास ले जाता है अर्थात् अग्नि ही देवों तक पहुंचने का साधन है **(स इद्देवेषु गच्छति)**।

प्रश्न होता है कि यह अग्नि क्या है? एक ओर विराट्रूप में अग्नि ब्रह्म की संज्ञा है, जो ब्रह्म सब देवों का अधिष्ठान और आरम्भण है और दूसरी ओर अग्नि का स्वरूप प्राण है। इसे ही ऋग्वेद में और भगवद्गीता में वैश्वानर कहा गया है-

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रित:।
प्राणापानसमायुक्त: पचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥
(श्रीमद्भगवद्गीता १५.१४)

अर्थात् प्रत्येक अध्यात्मकेन्द्र या शरीर में प्राण और अपान के संघर्ष से युक्त जो वायु में अन्न को पचानेवाली शक्ति है, वही वैश्वानर अग्नि है और वही ईश्वर का रूप है। वह वैश्वानर एक ओर सब प्राणधारियों के भीतर है और दूसरी ओर समस्त विश्व के लिये वही सूर्यरूप में विद्यमान है। इसे ही अध्यात्म और अधिदैवत का नित्य सम्बन्ध कहते हैं। इसी के लिये ऋग्वेद में कहा है-

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्री:। इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण॥ ऋग्०१.९८.१॥

'वैश्वानर अग्नि इसी पाञ्चभौतिक देह में अभिव्यक्त होता है और यहीं उसकी समस्त चेष्टाएं होती हैं। प्राणापान के रूप में इस शरीर में विद्यमान रहते हुए वैश्वानर अग्नि सूर्य के साथ स्पर्धा करता है, अर्थात् विराट् सूर्य और आध्यात्मिक वैश्वानर इन दोनों का छन्द या स्पन्दन समान है।' जैसा कहा है-

प्राणो वै समञ्चनप्रसारणम्।
(शत०८.१.४.१०)

अर्थात् समस्त विश्व का संकोच-विकास अग्नि, प्राण या ब्रह्म के नियमित स्पन्दन का ही रूप है। यह ऋषियों का अनुभव था कि उसे ही अग्नि, हिरण्यगर्भ, प्रजापति, नारायण, प्राण-इन अनेक नामों से कहा गया है-

ब्रह्मयज्ञो वा एष यत् पूर्वेषां चयनम्।
(मै०उप०१.१)।

अयमग्निर्वैश्वानरो योऽयमन्त:पुरुषे।
(बृह०५.९.११; मैत्रा०२.६)।

अग्निर्वायुरादित्य: कालो यम: प्राणोऽन्नम्।
ब्रह्मा रुद्रो विष्णुरित्येकेऽन्यमभिध्यायन्ति॥
(मैत्रा०४.५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मणो वावैता अग्र्यास्तनवः परस्यांमृतस्याशरीरस्य।। (मैत्रा०४.६)।

ब्रह्म खल्विदं वाव सर्वम्। (मैत्रा०४.६)।

हिरण्यवर्णः शकुनो हृद्यादित्ये प्रतिष्ठितः।

मद्गुर्हंसस्तेजोवृषः सोऽस्मिन्नग्नौ यजामहे।।

(मैत्रा०उप०६.३४)।

इस प्रकार सृष्टि का जो मूलतत्त्व है, उसके ही अनेक नाम वेदों में आते हैं। वह प्राण या चेतनारूप है। जैसा कहा है-

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।

यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम्।।

नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे।

नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते।।

प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते।

प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम्।।

प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते।

प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्।।

अथर्व०११.४.१,२,१२,१५।।

इस प्रकार प्रणा ही प्रजापति और प्राण ही ईश्वर एवं प्राण ही ब्रह्म है। यह भारतीय अध्यात्म-विद्या की आधारशिला है। जो विराट् जगत् में ब्रह्म है, वही अध्यात्म में प्राण, प्राणचेतना, संवित् या आत्मा है। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि विराट् रूप में ब्रह्म है उसकी शक्ति अनादि, अनन्त है। अनेक नामों और रूपों से उसी की अभिव्यक्ति हो रही है। इस विश्व को एक वृक्ष या अश्वत्थ कहा गया है। इस प्रकार के अनन्त वृक्षों की समष्टि परात्पर ब्रह्मरूपी वन है। उस परात्पर ब्रह्म से परे और कुछ नहीं है-

तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास।।

ऋग्०१०.१२९.२।।

ऋग्वेद में प्रश्न किया है-

किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः। मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद् यदुध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन्।।

ऋग्०१०.८१.४।।

'वह कौन-सा वन था और कौन-सा वृक्ष था, जिससे गढ़-छीलकर द्युलोक और पृथिवी बनाया गया है? हे मनीषियो! अपने मन से उसका विचार करो, जिसने भुवनों को धारण कर रखा है और जो सबका अधिष्ठाता है।

इन प्रश्नों का उत्तर तैत्तिरीय ब्राह्मण में इस प्रकार पाया जाता है-

ब्रह्म तद्वनं ब्रह्म स वृक्ष आस

यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।

मनीषिणो मनसा प्रब्रवीनि वो

ब्रह्माध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन्।।

तै०ब्रा०२.८.९.६।।

अर्थात् ब्रह्म ही वह वन है और ब्रह्म ही वह वृक्ष है, जिससे गढ़-छीलकर द्युलोक और पृथिवी को बनाया गया। हे मनीषियो! मैं अपने मन के विचार से कहता हूँ कि ब्रह्म ही लोकों को धारण करते हुए इनका अधिष्ठाता है।

इस प्रकार वैदिक मान्यता के अनुसार ब्रह्म ही परमतत्त्व है। उसी में सब देवों, सब लोकों और सब यज्ञों का पर्यवसान है। वही महान् शक्तिसम्पन्न इन्द्र है। उसके समान और कोई नहीं है और न उससे बढ़कर कोई है। यदि यह आकाश और यह पृथिवी अनन्तगुणा बड़ी हो जायें तो भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस ईश्वर की महिमा को पूरी तरह प्रकट नहीं कर सकतीं। यह ऋषियों की युक्ति थी कि उस महान् ब्रह्म को कभी **सहस्रशीर्षः पुरुषः** के रूप में कहा है, कभी दशाङ्गुल पुरुष के रूप में, कभी महिमादेवों के रूप में, कभी विराट् के रूप में, तो कभी धाता-विधाता के रूप में। इस प्रकार उसके नाम और रूपों का अन्त नहीं है। वही सूर्य रूप में प्रत्यक्ष दर्शन दे रहा है। जैसा यजुर्वेद के ब्रह्मोद्य प्रकरण में स्पष्ट कहा है-

ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिः। यजु०२३.४८॥

अर्थात् जो सूर्य की ज्योति है, उससे ब्रह्म की ज्योति का कुछ आभास प्राप्त हो रहा है। यह सूर्य भी एक नहीं है-किन्तु इसी की सूत्ररेखा में पिरोये हुए कोटि-कोटि सूर्य इस अनन्त ब्रह्माण्ड में हैं और ब्रह्म की ज्योति उन सबसे महान् है। इस प्रकार ऋषियों ने देखा है कि ब्रह्म या देवतत्त्व नामरूपों का अन्त नहीं है। जहां तक सहस्राक्षरा वाणी का विस्तार है, सभी ब्रह्म के नाम हैं और जहाँ तक विश्व में रूपों का विस्तार है, सभी ब्रह्मतत्त्व की अभिव्यक्ति है।

इस पद्धति पर सोचते हुए वेदों में ऋषियों ने भगवान् का रुद्र रूप में वर्णन किया। उसकी भी दो कोटियां हैं। एक ओर कहा गया है-

एको रुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे।

अर्थात् रुद्र एक है दो नहीं। दूसरी ओर कहा है-

असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम्।
तेषांꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥

यजु०१६.५४

अर्थात् रुद्रों की संख्या नहीं है। वे अनन्त हैं। वस्तुतः जितने देव हैं, वे सब भगवान् रुद्र के ही रूप हैं। विश्व में जितने नर-नारी, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, वन-वनस्पति अथवा जितने भी प्राणधारी चेतन पदार्थ हैं, वे सब रुद्र की शक्ति से ही जीवित हैं। इनमें से लगभग शताधिक रुद्रों का परिगणन यजुर्वेद के शतरुद्री अध्याय में किया गया है। वह बहुत ही उदात्त वर्णन है, जिसमें व्यापक दृष्टि से विश्व और सामाजिक व्यष्टि और समष्टि जीवनपर दृष्टि डाले हुए अनेक प्राणियों का परिगणन पाया जाता है। उन नामों में साधु और असाधु, सत् और असत्, व्यक्ति और विराट्, अध्यात्म और अधिदैवत जगत् को रुद्र का रूप मानकर प्रणामभाव अर्पित किया गया है। **'नमस्ते रुद्र मन्यवे'** यही सबकी टेक है। रुद्र के दो रूप हैं। एक घोर, दूसरा अघोर या शान्त। तस्कर, स्तेन, व्रात आदि घोर रूप हैं। नाना व्याधियें और रोगादि भी रुद्र के घोर रूप हैं। जो अशिव और पापिष्ठ हैं, उन्हें शान्त और शिव बनाना यही रुद्रों के नमस्कार का फल है। आज संसार में हम देख रहे हैं, कि शस्त्रास्त्रधारी, निषंगी, कवची, उग्र, भीम, अग्रेवध, दूरेवध (दूर से मारनेवाले), हन्त्र और हनीयस, इषुकृत्, धनुष्कृत्-इन प्राचीन रुद्रों के अनेक नये-नये रूप दुर्मति एवं अघपूर्ण भावों से मानव-जाति को आतंकित कर रहे हैं। इनसे त्राण का एकमात्र उपाय भगवान् रुद्र की शिवरूप में आराधना है-

यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्॥

या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी।
शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे॥
मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव।

यजु०१६.४८,४९,५१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे॥ यजु०१६.१६॥

इन वाक्यों में आर्त मानव का भगवान् के समक्ष चीत्कार पाया जाता है कि उनकी करुणा का अवतार हमारे पुत्र-पौत्रों पर, गोष्ठ और गौओं पर, ग्राम और बस्तियों पर बना रहे और विध्वंस की ज्वालाओं से हमारी रक्षा हो।

रुद्र का घोर रूप मृत्यु या काल है, जो लोक का क्षय और संहार करने के लिये सदा प्रवृत्त है। अणु-अस्त्र और अन्न का अभाव दोनों महाकाल ही हैं। इनसे रक्षा का उपाय भगवान् के प्रति शुद्ध हृदय से किया हुआ नमस्कार या प्रणामभाव है। उसी के साथ भगवान् के अनन्त नामों का स्मरण है। नामों के अपरिमित और असंख्यात शब्दों में ऋषियों ने संग्रह या संक्षेप की रीति से ओंकार या प्रणव को ईश्वर का वाचक कहा है-

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥

कठोप०-१.२.१५॥

ओंकार बीजगणित के संकेत की भांति सब वेदों का सार कहा गया है। वेदों में चतुष्पाद ब्रह्म ही परमतत्त्व है। उसके एक पाद में निर्गुण ब्रह्म है और तीन पादों में त्रिगुणात्मक विश्व है। इसी को ओंकार की अ,उ,म् और चौथी अर्धमात्रा से व्यक्त किया है। ईश्वर के नामों का जो शब्दात्मक विस्तार है, उसे ही प्रणव के संक्षिप्त प्रतीक द्वारा व्यक्त किया है। **'तज्जपस्तदर्थभावनम्'** का फल यही है कि चतुष्पाद ब्रह्म के स्वरूप का स्थूल और सूक्ष्म अनुभव किया जाये, विश्व के जन्म, स्थिति और संहार के दुर्धर्ष नियम हैं, उनका परिज्ञान किया जाये और भगवान् की अनन्त करुणा का आवाहन करते हुए आत्मसमर्पण किया जाये।

भगवान् की महाकरुणा के आवाहन का एक उत्तम उदाहरण शुनःशेप की करुण प्रार्थना है। शुनःशेप के पिता अजीगर्त ने उसे वरुण की बलि देने के लिये यूप से बांध दिया। राजा हरिश्चन्द्र ने अपने पुत्र रोहिताश्व की रक्षा के लिये उसके स्थान पर शुनःशेप की बलि देनी चाही। इस प्रकार शुनःशेप के चारों ओर निष्ठुर मृत्यु का ताना-बाना बुन गया। उसने रक्षा का कोई उपाय न देखकर भगवान् वरुण से ही प्रार्थना की।

'हे देव वरुण! हम मनुष्य होने के नाते आपके व्रत का दिन-प्रति-दिन उलङ्घन करते हैं।

'हमें मृत्यु के अर्पण मत करो और अपने क्रोध का भागी मत बनाओ।

'हे वरुण! आपनी वाणियों से हम तुम्हारे हृदय को अपने अनुकूल बनाना चाहते हैं, जैसे कोई सारथि रश्मियों से अश्वों को वश में करता है।

'मेरे मनोभाव मुझसे दूर-दूर भागते हैं। केवल धनप्राप्ति की उनकी इच्छा है, जैसे पक्षी अपने घोंसलों में जाते हैं।

'कब हम दूर-द्रष्टा, शक्तिशाली, वरुण को प्रसन्न कर सकेंगे।

'मित्र और वरुण दोनों एक साथ विचरते हैं, व्रती उपासक कभी नहीं छोड़ते।

'हे वरुण! तुम आकाश में उड़नेवाले पक्षियों के और समुद्र में चलती हुई नावों के मार्ग को जानते हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'तुम घूमते हुए कालचक्र के बारह महीनों को और तेरहवें मलमास को भी जानते हो।

'तुम वायु के बृहत् मार्ग को और देवों के स्थानों को भी जानते हो।

'तुम व्रत को धारण करके मनुष्यों के बीच में निवास करते हुए संकल्पपूर्वक अपने साम्राज्य का संचालन करते हो।

'वहीं से तुम विश्व के भूत-भविष्य का अवलोकन करते हो।

'वह बुद्धिशाली आदित्य हमारे मार्गों को सुशोभन बनाये और आयुष्य प्रदान करे।

'स्वर्ण का परिधान पहने हुए वरुण ने अपने -आपको सुन्दर वेश में अलंकृत किया है। उसके गुप्तचर उसके सब ओर बैठे हैं।

'कोई शत्रु उसका पराभव नहीं कर सकता और कोई मनुष्यद्रोही उसका सामना नहीं करता और न कोई दुष्टकर्मा उस देव से विरोध करता है।

'जो मनुष्यों को सम्पूर्ण यश देता है, और हमें भी यशस्वी बनाता है।

'जैसे गौएं चरने के लिये वन में जाती हैं, वैसे ही हमारे मनोभाव वरुण के समीप जाते हैं।

'हे वरुण! तुम्हारे लिये मैंने मधु का संग्रह किया है। हम सब मिलकर तुम्हारी स्तुति करें। तुम्हें जो प्रिय हो उसका तुम भक्षण करो।

'मैंने उसके रमणीय रथ को पृथिवी पर आते हुए देखा है और उसने मेरे इस स्तोत्र को सुन लिया है।

'हे वरुण ! मेरे इस आवाहन को कृपापूर्वक सुनो। मैं रक्षा के लिये तुम्हें पुकार रहा हूँ।

'हे मेधावी देव! तुम समस्त पृथिवी और द्युलोक के स्वामी हो। अपने मार्ग पर चलते हुए तुम मेरा आवाहन सुनो।

'हे देव! हमारे जीवन की रक्षा के लिये तुम हमारे उत्तम, मध्यम और अधम बन्धनों से मुक्त करो। (ऋग्०१.२५.१-२१)

शुनःशेप की इस तरह करुण प्रार्थना से भगवान् वरुण प्रसन्न हुए और उसे उसके जीवन का वरदान दिया। हरिश्चन्द्र का यूप और अजीगर्त का परशु वरुण देव की कृपा से शुनःशेप का कुछ नहीं बिगाड़ सके।

इसी प्रकार की एक सच्ची प्रार्थना वरुण के लिये भक्त वसिष्ठ ने की थी-

'हे राजा वरुण! मैं मृत्यु के कारण इस पृथिवी की मिट्टी के घर में प्रवेश न करूं। हे बलधारी देव! प्रसन्न होओ। रक्षा करो।

'मैं मशक की तरह फूला हुआ अहंकार से फुरफुराता घूमता हूँ। हे बलधारी देव! प्रसन्न होओ, रक्षा करो।

'हे पवित्र और शक्तिशाली देव! अपने संकल्प की दीनता के कारण मैं तुमसे विपरीत रहा हूँ। हे बलधारी देव! प्रसन्न होओ, रक्षा करो।

'हे देव! जल के बीच में खड़ा हुआ भी मैं प्यासा हूँ। ह बलधारी देव! प्रसन्न होओ, रक्षा करो।

'हे वरुण! मनुष्य होने के नाते हमने जो पाप देवों के विरुद्ध किया है और हे देव! अपने चित्त की न्यूनता से हमने जो तुम्हारे धर्म का उल्लंघन किया है, उसके कारण हमारा विनाश मत करो।'

इस प्रकार सच्चे हृदय से भगवान् के प्रति अपने पापों की क्षमा-प्रार्थना मनुष्य को पापमुक्त करती है और वह नयी शक्ति प्राप्त करके पवित्र, दिव्य जीवन का अधिकारी बनता है। देव और मानव की सजातीयता का सिद्धान्त वेद को मान्य है-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्ति हि वः सजात्यं रिशादसो देवासो अस्त्याप्यम्। ऋग्०८.२७.१०॥

अतः मनुष्य का अधिकार है कि अपने दिव्य स्वरूप की अनुभूति करे और नाम-स्मरण एवं प्रार्थना के द्वारा अनन्त अनादि देवता के साथ सम्बन्ध स्थापित करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotiḥ
ISSN 2277-4351
Vol.1, No.2 (96-102) Jan-jun 2013

वेद का चरम लक्ष्य-वैदिक स्तुति-प्रार्थना-उपासना और उसका स्वरूप

(स्व०) युधिष्ठिर मीमांसक, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत (हरियाणा)

यद्यपि चिरकाल से लोक में यह प्रसिद्धि है कि वैदिक संहिताओं में केवल याज्ञिक कर्मकाण्ड का ही वर्णन है, अध्यात्म विषय केवल उपनिषदों में ही प्रतिपादित किया गया है।[1] वस्तुत: प्राचीन सिद्धान्तानुसार यह विचार सर्वथा मिथ्या है। प्राचीन मतानुसार वैदिक संहिताओं का कर्मकाण्ड में विनियोग होने पर भी वह उसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय नहीं है। उनका मुख्य प्रतिपाद्य विषय तो अध्यात्म ही है। वैदिक मन्त्रों का कर्मकाण्ड में विनियोग मात्र किया गया है और कई स्थानों पर तो वह विनियोग इतना अस्वाभाविक है कि साधारण संस्कृतज्ञ भी जान सकता है कि वह मन्त्रों के साथ बलात् जोड़ा गया है, मन्त्रार्थ का उसके साथ दूर का भी सम्बन्ध नहीं। इसके लिये हम यहाँ तीन उदाहरण उपस्थित करते हैं-

उद्बुध्यस्वाग्ने-मन्त्र बुधग्रह की पूजा में विनियुक्त किया गया है।

शन्नोदेवी-मन्त्र शनैश्चरग्रह की पूजा में विनियुक्त है।

दधिक्राव्णो अकारिषम्-मन्त्र दधिभक्षण में विनियुक्त है।

प्रथम मन्त्र में, **'बुध्यस्व'** क्रिया पद है। उसके एक देश बुध का बुध-ग्रह नामक साथ सादृश्य होने से वह बुध की पूजा में विनियुक्त किया गया है। 'शन्नो देवी' मन्त्र का सन्धिजरूप शन् का शनि-ग्रह के एक देश के साथ सादृश्य है और **'दधिक्राव्णो अकारिषम्'** के दधिभाग दही-वाचक दधि के साथ सादृश्यमात्र है। इन मन्त्रों का वस्तुत: बुध, शनि ग्रह और दधि (दही) के साथ दूर का भी सम्बन्ध नहीं है।

इसके विपरीत मन्त्रों में अध्यात्मविषय की प्रतीति स्पष्ट एवं युक्तिसंगत प्रतीत होती है। हां, यह प्रतीति प्राय: उन्हीं को होती है, जो सात्त्विक और सन्मात्रनिबद्धबुद्धि योगीजन हों। स्कन्दस्वामी ने निरुक्तभाष्यटीका ७.५ में इस विषय पर बहुत ही सुन्दर प्रकाश डाला है। वह लिखता है-

तत्र अध्यात्मविदस्तावत् सन्मात्रनिबद्धबुद्धय: शिथिलीभूतकर्मग्रहग्रन्थयो भिन्नविषयभवसंक्रमस्थानवैराग्याभ्यासवशात् समासादितस्थिरसमाधयो निरस्तबाह्यविषयैषणा निरुद्धान्त:-करणवृत्तयो निष्कम्पदीपकल्पा: क्षेत्रज्ञज्ञानमनना:...अन्यं न पश्यन्ति न शृण्वन्ति।

अर्थात् जो अध्यात्मवित् हैं, जिनकी बुद्धियाँ सन् मात्र (परमसत्ता ब्रह्म) में निबद्ध हैं, जिनके कर्मों की ग्रह-ग्रन्थियाँ शिथिलीभूत हो चुकी हैं, जिन्होंने विभिन्न विषयरूपी संसार-सागर में वैराग्य और अभ्यास के द्वारा स्थिर समाधि प्राप्त कर ली है; जिनकी बाह्य विषयों की एषणा समाप्त हो चुकी है, अन्त:करण की वृत्तियाँ निरुद्ध हो गयी हैं। निष्कम्प प्रदीप के समान, जो क्षेत्रज्ञ (ब्रह्म)-के ज्ञान में ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनन करनेवाले हैं, वे (परमात्मा से) अन्य को न देखते हैं, न सुनते हैं, (ऐसे महानुभावों को ही वेदों में अध्यात्मज्ञान की प्रतीति होती है, अन्य को नहीं)।

इतना ही नहीं, वेदों में अग्नि आदि के विप्र, कवि, द्विजन्मा, विपश्चित्, प्रमति आदि विशेषण बहुत अधिक होते हैं। ये विशेषण अभिधा (मुख्य) वृत्ति से चेतन-ज्ञानवान् पदार्थ में ही घट सकते हैं, भौतिक जड़ अग्नि से नहीं। शास्त्रकारों का सिद्धान्त है कि जहाँ मुख्यार्थ की बाधा हो वहाँ लक्षणार्थ की कल्पना की जाती है, अन्यथा नहीं। अतः यदि कथंचित् पहले यह निश्चित हो जाए कि मन्त्रों में श्रुत, अग्नि आदि भौतिक जड़ पदार्थों के ही वाचक हैं, किसी चेतन पदार्थ के नहीं, तब तो कवि आदि शब्दों में लक्षणार्थ की कल्पना स्वीकार की जा सकती है। वेद का मुख्यार्थ क्या है? इसमें वेद स्वयं स्वतः प्रमाण है। इस दृष्टि से कवि, विपश्चित् आदि पदों के सान्निध्य से अग्निपद उन-उन मन्त्रों में चेतन ब्रह्म वा आत्मा का ही वाचक है। आचार्य शंकर ने अग्नि आदि पदों को ब्रह्म का वाचक माना है। उन्होंने वेदान्तसूत्र (१.२.२८) के भाष्य में लिखा है-

अग्निशब्दोऽपि अग्रणीत्वादियोगाश्रयेण परमात्मविषय एव भविष्यति।

अर्थात् अग्नि शब्द भी 'आगे ले जानेवाला' आदि योगार्थ के द्वारा परमात्मविषयक ही होगा।

शंकराचार्य के इस वचन से यह भी स्पष्ट होता है कि यास्क के 'अग्रणीर्भवति' (निरु०७.४) आदि निर्वचन अध्यात्म प्रक्रिया में भी अनुगत हैं।

वेद स्वयं इस तत्त्व को निम्न ऋचा में अत्यन्त स्पष्ट रूप में दर्शाता है-

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।। ऋग्०१.१६४.४६।।

अर्थात् एक सत् (ब्रह्म)-को ही मेधावीजन इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान्, यम और मातरिश्वा कहते हैं।

इस प्रकार वेद की अन्तःसाक्षिता के पश्चात् हम प्राचीन वाङ्मय से कतिपय ऐसे वचन उद्धृत करते हैं, जिनसे स्पष्ट हो जायेगा कि वेदों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय अध्यात्म ही है। यथा-

१. कठोपनिषद् की एक श्रुति है-

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति।
तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।। (१.२.१५)

अर्थात् सब वेद जिस पद का अभ्यास (पुनः-पुनः कथन) करते हैं, सारे तपस्वी लोग जिसका कथन करते हैं, जिसकी चाहना करते हुए ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, उस पद को तुझे संग्रह से बताता हूं। वह 'ओम्' है।

२. उपर्युक्त कठश्रुति के अनुसार योगीराज श्रीकृष्ण ने भी कहा है-

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति।
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये।। गीता०८.११।।

अर्थात् जिस अक्षर अविनाशी ब्रह्म का वेदविद् कथन करते हैं, वीतराग यति लोग जिसमें प्रविष्ट होती हैं (जिसको प्राप्त करते हैं), जिसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहना करते हुए ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं, उस पद को संक्षेप में तुम्हारे लिये कहता हूँ।

३. आगे पुनः श्रीकृष्ण ने कहा है-

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः। गीता०१५.१५

अर्थात् सब वेदों से मैं (ब्रह्म) ही जानने योग्य हूँ।

४. महर्षि व्यास अपने पुत्र शुक को अध्यात्म का उपदेश करके अन्त में उपसंहार करते हुए कहते हैं-

दशेदमृक्सहस्राणि निर्मथ्यामृतमद्भुतम्।
नवनीतं यथा दध्नः काष्ठादग्निर्यथैव च।
तथैव विदुषां ज्ञानं पुत्रहेतोः समुद्धृतम्॥
महा०शान्ति०२४६.१४-१५॥

अर्थात् दस सहस्र ऋचाओं का मन्थन करके मैंने यह अद्भुत अमृत निकाला है। मक्खन जैसे दही से और अग्नि जैसे काष्ठ से मन्थन करके निकाली जाती है, उसी प्रकार विद्वानों-ब्रह्मविदों का ज्ञान पुत्र के लिये (१० सहस्र ऋचाओं का मन्थन करके) निकाला है।

५. आचार्य कात्यायन ने ऋग्वेद के देवता (प्रतिपाद्य विषय) का निर्देश करनेवाले 'सर्वानुक्रमणी' ग्रन्थ के आरम्भ में लिखा है-

समस्तानां प्रजापतिः। ओङ्कारः सर्वदेवत्यः पारमेष्ठ्यो ब्राह्मो वा दैव आध्यात्मिकः।

अर्थात् समस्त ऋचाओं का प्रजापति देवता (=प्रतिपाद्य विषय) है। ओङ्कार सर्वदेवतावाला है। परमेष्ठी वा ब्रह्मरूप देव अध्यात्मविषयक है।

६. यास्क मुनि ने भी निरुक्त ७.४ में लिखा है- **महाभाग्याद्देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते।**

अर्थात्-अत्यन्त ऐश्वर्यशाली विविध शक्तिसम्पन्न होने से एक ही आत्मा बहुत प्रकार से (विभिन्न गुणों द्वारा) स्तुति किया जाता है।

यदि उपर्युक्त उद्धरणों पर गम्भीरता से विचार किया जाये, तो ज्ञात होगा कि कठश्रुति का **'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति'** लेख तभी उपपन्न होगा, जब कि सम्पूर्ण वेद उसी एक पद 'ओ३म्' का आमनन=अभ्यास=बार-बार कथन=उपदेश करते हों। यदि वेद ओ३म्=ब्रह्म=अध्यात्म का प्रतिपादन नहीं करते, केवल यज्ञों के ही प्रतिपादक हों, तो कठश्रुति का लेख प्रमाद-वचन होगा। गीता के दोनों वचनों में कठश्रुति की ही प्रतिध्वनि है। अतः गीता का भी यह मत है कि वेद अध्यात्म के प्रतिपादक हैं। चतुर्थ प्रमाण में स्पष्ट कहा है कि ऋग्वेद की दस सहस्र ऋचाओं का मन्थन करके उक्त अध्यात्म-ज्ञानरस मक्खन निकाला है। व्यास जी ने यहाँ दही से नवनीत और काष्ठ से अग्नि के निकालने के दो दृष्टान्त बड़े ही सुन्दर दिये हैं। इनसे उक्त विषय अति स्पष्ट हो जाता है। तात्पर्य यह कि जैसे दही के प्रत्येक अंश में विद्यमान नवनीत का अंश ही मन्थन द्वारा पृथक् किया जाता है अथवा प्रकट किया जाता है, उसी प्रकार ऋग्वेद की सभी ऋचाओं में अध्यात्म ज्ञान के अंश विद्यमान हैं, उन्हीं को मन्थन द्वारा प्रकाश में लाया गया। पांचवें प्रमाण में कात्यायन ने स्पष्ट कह दिया कि समस्त ऋचाओं का प्रजापति ओंकार ही देवता-प्रतिपाद्य विषय है। छठे प्रमाण में यास्क का वचन भी यही ध्वनित करता है कि वेद में एक ही महान् देव की विभूतियों-गुणों का भिन्न-भिन्न रूप से गान किया गया है।

इतना ही नहीं, ऋग्वेद का एक मन्त्र तो कहता है-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति।

ऋग्०१.१६४.३९॥

अर्थात् जो अक्षर अविनाशी परब्रह्म को नहीं जानता वह ऋचाओं से क्या करेगा? वेदाध्ययन का क्या फल पायेगा? अर्थात् उसका वेद पढ़ना व्यर्थ ही है।

इसी ऋचा का अधिक स्पष्टीकरण उपनिषद् के निम्न मन्त्र में मिलता है-

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति नो चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।

अर्थात् यदि इसी जन्म में ईश्वर को जान लिया तब तो ठीक है, अन्यथा महान् विनाश है (जीवन का)।

इसी प्रकार कतिपय आचार्यों के ऊपर उद्धृत वचनों से स्पष्ट है कि वेद का मुख्य प्रतिपाद्य विषय अध्यात्म ही है। इतना ही नहीं, इस युग के महान् वेदाभ्यासी और योगी स्वामी दयानन्द सरस्वती और अरविन्द घोष की भी यही मान्यता है कि वेद का मुख्य प्रतिपाद्य विषय अध्यात्म ही है। इन दोनों अध्यात्म ज्ञान की विभूतियों ने इस बात का प्रतिपादन अपने ग्रन्थों में पर्याप्त विस्तार तथा युक्तिप्रमाण-पुरस्सर किया है। अध्यात्मज्ञान के प्रेमियों को स्वामी दयानन्द सरस्वती की **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका** और श्री अरविन्द घोष का **वेद-रहस्य** अवश्य देखना चाहिये।

ईश्वर-प्राप्ति के वैदिक उपाय-

वेद ईश्वरप्राप्ति का प्रधान उपाय आत्मज्ञान बताता है। पुरुषसूक्त का एक प्रसिद्ध मन्त्र है-

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥ यजु०३१.१८॥

अर्थात् मैं उस महान् आदित्य के समान प्रकाशमान, अविद्या आदि तमों से परे वर्तमान पुरुष को जानता हूँ। उसी को जानकर मनुष्य मृत्यु का उल्लङ्घन करता है (अमृत हो जाता है), और कोई मार्ग (भवसागर से) छूटने का नहीं है।

किन्तु उस पुरुष वा आत्मा वा परमात्मा का ज्ञान भी तो सरल नहीं है। गीता के शब्दों में-

अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्॥

अर्थात् अनेक जन्म में प्रयत्न करते-करते मनुष्य सिद्धि को प्राप्त करता है।

महर्षियों ने ईश्वर-प्राप्ति का साधन योगाभ्यास बताया है। महर्षि पतञ्जलि ने योगदर्शन में उसी योग की विस्तृत व्याख्या की है। योग का लक्षण निम्न प्रकार है-

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। (योगदर्शन १.२)

अर्थात् चित्त की वृत्तियों का, जो बाह्य विषयों में भटक रही हैं, निरोध हो जाना। और निरोध होने पर-

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्। (योगदर्शन १.३)

सबके द्रष्टा प्रभु के स्वरूप में स्थित हो जाना ही योग है। इसी के दो भेद हैं-सम्प्रज्ञात समाधि और असम्प्रज्ञात समाधि।

चित्तवृत्तिनिरोध के उपाय-

परन्तु यह चंचल प्रमाथी मन निरुद्ध कैसे हो, इसका उपाय पतञ्जलि ने बताया है-

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः।

(योगदर्शन १.१२)

अर्थात् अभ्यास और वैराग्य के द्वारा ही मन का निरोध सम्भव है। यही उपदेश भगवान् श्रीकृष्ण ने भी गीता में दिया है-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥

(६.३५)

इन दो उपायों में अभ्यास क्या है? वैराग्य क्या है? इसका विचार करना चाहिये।

वैराग्य नाम है सांसारिक विषयों से वितृष्ण होना, उनकी इच्छा से रहित होना। यह विषयों से वितृष्णा सम्यग् ज्ञान से ही सम्भव है। सम्यग् ज्ञान होना अत्यन्त दुष्कर है और आजकल के समय में जब कि संसार में सर्वत्र अज्ञानवर्धक, भोगेच्छावर्धक सामग्री वा दृश्यों की ही भरमार है। इसलिये आजकल के समय में ईश्वर की प्राप्ति या संसार से मुक्ति कैसे हो, इसका विचार करना अत्यावश्यक है।

हमारे विचार में इसका एकमात्र उपाय अभ्यास एक तत्त्वचिन्तन है। वह एकतत्त्व का चिन्तन कैसे किया जाये और किसका किया जाये, इसका उत्तर भगवान् पतञ्जलि देते हैं-

तस्य वाचकः प्रणवः। तज्जपस्तदर्थभावनम्।

(योगदर्शन १.२७-२८)

अर्थात् परम प्रभु का वाचक सर्वश्रेष्ठ नाम है-प्रणव अर्थात् ओम्'। उसका जप और उसके अर्थ की भावना करनी चाहिये।

इसी को सन्त लोग **भगवन्नामस्मरण** के रूप में बताते हैं। इस स्मरण में जप और अर्थ की भावना दोनों का ही अन्तर्भाव हो जाता है।

नाम-स्मरण की दूसरी प्रक्रिया-

भगवन्नाम-स्मरण की एक प्रक्रिया का उल्लेख हमने योगदर्शन सूत्रों द्वारा किया। उसकी दूसरी प्रक्रिया है-

स्तुति-प्रार्थना-उपासना।

स्तुति का लक्षण है-किसी भी पदार्थ में विद्यमान गुणों का यथोचित रूप में वर्णन करना। इस दृष्टि से जब हम कहते हैं कि 'देवदत्त बहुत श्रेष्ठ व्यक्ति है, सदाचारी है, सत्यवादी है' तब हमारा अभिप्राय केवल इतना ही नहीं होता कि हम जिससे देवदत्त की स्तुति करते हैं, वह उसके गुणों को जान जाये। अपितु हमारी इच्छा होती है कि वह व्यक्ति जिसके प्रति हम देवदत्त के गुणों का वर्णन करते हैं, वह उसके समीप जाये, उससे भेंट करे, उसका संग करे और उससे लाभ उठाये। जब हम भगवान् राम के मर्यादा-पुरुषोत्तमत्व के गुणों का बखान करते हैं तो हमारी इच्छा होती है कि संसार उनके आदर्शों पर चले।

इसलिये स्तुति तब तक निरर्थक ही रहती है जब तक उसके अनन्तर क्रिया प्रार्थना वा उपासना न की जाये। अतः स्तुति का अन्त होता है प्रार्थना में अथवा उपासना में।

प्रार्थना नाम है-स्तुत्य के गुणों का बखान करके उससे उन गुणों की प्राप्ति के लिये सामर्थ्य याचना करना और उपासना नाम है-उस स्तुत्य के गुणों को अपने अन्दर धारण करके उसके समीप बैठना। जब तक उपास्य और उपासक में एकरूपता न होगी, उपासना-समीप बैठना, समीप जाना वा बन्धुत्व-प्राप्ति करना नितान्त असम्भव है; क्योंकि **समानशीलव्यसनेषु मैत्री**-समान गुण-कर्मवालों में ही मैत्री होती है। भगवान् हों ज्ञान के पुञ्ज, सत्यव्रत, सर्वदोषविवर्जित और हम हों अज्ञानान्धकार से आवृत्त, अनृतवादी, सर्वदोषयुक्त-तब कभी भी उपासना नहीं हो सकती। इसलिये वेद में स्तुति के साथ प्रार्थना वा उपासना दोनों में से एक अंग अवश्य सम्बद्ध रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब हम कतिपय ऐसे मन्त्र उपस्थित करते हैं, जिनमें प्रभु की स्तुति-प्रार्थना और उपासना का हृदयकारी वर्णन है जिन्हें गाकर भक्त की आत्मा मस्ती में झूम उठती है।

वैदिक स्तुति-प्रार्थना-उपासना-

(१). **त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ । अधा ते सुम्नमीमहे॥** ऋग्०८.९८.११॥

'हे वसो! सबको बसानेवाले, सारे संसार को आच्छादित करनेवाले अर्थात् सबसे महान् तुम ही हमारे पिता हो, पालक हो, रक्षक हो। हे शतक्रतो! सैंकड़ों सहस्रों प्रकार के कार्यों को करने वाले विविध ब्रह्माण्ड के रचयिता प्रभो! तुम ही हमारी माता हो। तुम-जैसे सर्वतोमहान् माता-पिता को पाकर तुमसे ही तुम्हारे उस सुख की, उस आनन्द की कामना करते हैं, याचना करते हैं जो तुम्हारे में है। जिससे तुम आनन्दस्वरूप हो। वही नित्यानन्द हमें भी प्राप्त कराओ।'

२. **स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये॥** ऋग्०१.१.९॥

हे अग्ने! प्रकाशमान् ज्ञानस्वरूप प्रभो! आप हमारे पर वैसे ही कृपालु होओ, वैसे ही सुखों के प्राप्त करानेवाले होओ। जैसे पिता अपने पालकों के सुख की कामना करता है और हमें स्वस्ति-नित्य रहने वाले अखण्ड कल्याण के लिये समर्थ करो।'

(३). **विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद् भद्रं तन्न आ सुव॥**

ऋग्०५.८२.५॥

'हे सम्पूर्ण संसार के प्रकाशक और उत्पन्न करने वाले देव! हमारे सम्पूर्ण दुरितों को, पापों को-पापमयी वासनाओं को हमसे दूर करिये और जो कुछ भी संसार में भद्र है, हमारे लिये कल्याणकारी है, ऐसे उत्तम श्रेष्ठ गुणों वा पदार्थों को प्राप्त कराइये।'

(४) **नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा। भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः॥**

अथर्व०११.२.१६॥

'हे भव! सारे संसार को उत्पन्न करनेवाले और सुखस्वरूप तथा सर्वजीवों के सभी दुःखों के नाश करनेवाले प्रभो! तुम्हारे दोनों स्वरूपों के लिये हम प्रातः-सायं, दिन-रात बहुधा नमस्कार करते हैं। आप कृपा करके हमारे लिये सुख देनेवाले और दुःखों को दूर करनेवाले होइये।'

(५) **अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्य१स्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम॥** ऋग्०१.१८९.१॥

'हे मार्गदर्शक नेता! आप हमें धन, सम्पत्ति वा आत्मिक कल्याण के लिये अच्छे मार्ग से-शुभमार्ग से ले चलिये। हे देव! आप हमारे सब कर्मों को जानने वाले हैं, क्योंकि आप घटघटवासी हैं। इतना ही नहीं, हे प्रभो! हम आपकी बहुत प्रकार से स्तुति-प्रार्थना करते हैं।'

(६) **यद्ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये। यदेनश्चकृमा वयमिदं तदवयजामहे स्वाहा॥**

यजु०३.४५॥

'हे पापों के दूर करने वाले प्रभो! हमने जो ग्राम में, जो सभा में, जो अपनी इन्द्रियों के विषय में अर्थात् अपने और पराये के लिये जो भी पाप-बुरा कर्म, बुरा आचरण मनसा-वचना-कर्मणा किया है, उसको हम इसी समय आपकी प्रत्यक्षता में आपको सर्वद्रष्टा जानते हुए छोड़ रहे हैं, स्वाहा यह हमारी प्रतिज्ञा सुआह बने-सच्ची बने। हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी प्रतिज्ञा के निभाने के लिये समर्थ हों। प्रभो! हमें इस शुभ प्रतिज्ञा के निभाने के लिये सामर्थ्य दो।'

इस प्रकार वेद में प्रभु की सर्वत्र विविध नामों से स्तुति करके अपने दोषों को दूर करने और शुभगुणों की प्राप्ति के लिये प्रार्थनाएं मिलती हैं। उपनिषद् की एक प्रार्थना सर्व-प्रसिद्ध है-

असतो मा सद् गमय।

तमसो मा ज्योतिर्गमय।

मृत्योर्मामृतं गमय॥

हे प्रभो! हमें असत् से-अज्ञान से सत्=ज्ञान की प्राप्ति कराओ। ज्ञान प्राप्त होने पर तम-अन्धकार को दूर करके अपनी शुभ ज्योति-प्रकाश को प्राप्त कराओ और मृत्यु से-जन्म-मरण के चक्र से छुड़ाकर अमृत को प्राप्त कराओ।

वैदिक प्रार्थनाओं का एक वैशिष्ट्य

वैदिक प्रार्थनाओं का एक सर्वतोमुख वैशिष्ट्य यह है कि उसमें प्राय: समष्टि का निर्देश है। सर्वत्र बहुवचन का प्रयोग है। इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक धर्म में समष्टि को व्यक्ति से प्रधानता दी है। अर्थात् अपने सुख की वा कल्याण की अपेक्षा सामूहिक कल्याण को महत्त्व दिया गया है। इसी के अनुरूप हम भगवान् वाल्मीकि के शब्दों में आज भी कामना करते हैं-

सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया:।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दु:खभाग् भवेत्॥

अर्थात् सब सुखी हों, सब स्वस्थ हों, सब कल्याण के भागी हों। कोई भी दु:खी न रहे।

सब मन:कामनाएं, चाहे वे लौकिकी हों चाहे पारलौकिकी, प्रभु की प्रार्थना, प्रभु की भक्ति, प्रभु के नामस्मरण और उसके यथार्थ अर्थ की भावना से पूर्ण होती है।

ओम् खं ब्रह्म॥

पाद-टिप्पणी-

१ तस्मिंश्च वेदे द्वौ काण्डौ-कर्मकाण्डो ब्रह्मकाण्डश्च। बृहदारण्याख्यो ग्रन्थो ब्रह्मकाण्ड:, तद्व्यतिरिक्तं शतपथब्राह्मणं संहिता चेत्यनयोर्ग्रन्थयो: कर्मकाण्डत्वम्। (काण्वसंहिता सायणभाष्य उपक्रमणिका)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotiḥ
ISSN 2277-4351
Vol.1, No.2 (103-109) Jan-jun 2013

भक्ति - एक वैदिक दृष्टिकोण

(सन्दीप कुमार चौहान, शोधच्छांत्र-वेदविभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार)

हमारी वेदस्वरूपा सनातन संस्कृति का परमतत्व भगवान् है और भक्ति उसका हृदयधाम। किसी चरित्र के गुण, माहात्म्य, कृपा का स्मरण कर चित्त द्रवीभूत हो जाए और अखण्ड धारा प्रवाह में मन की वृत्तियाँ उस चरित्र में ही रहे, उसी को भक्ति कहते हैं।[1] "पूज्येष्वनुरागो भक्ति" पूज्य वर्ग में अनुराग का नाम भक्ति है।

भक्ति को सभी आचार्यों ने विभिन्न शब्दों में परन्तु एक स्वर से भगवान के प्रति अनुराग कहा है। शाण्डिल्य अपने भक्ति सूत्र में स्पष्ट कहते हैं- **सा परानुरक्तिरीश्वरे**।[2]

अर्थात् वह (भक्ति) ईश्वर के प्रति परम अनुराग है। यहाँ यह बात विशेष ध्यान देने योग्य हैं, ईश्वर के प्रति केवल 'अनुराग' होना भक्ति नहीं है। मनुष्य का अनुराग कई स्थानों पर एक साथ हो सकता है। वह प्रायः धन, मन, सांसारिक भोग, सुख आदि के प्रति एक साथ अनुरक्त रहता है और इसके साथ ही उसका अल्प अनुराग ईश्वर के प्रति भी रहता है। वह पूजा आदि करता है मन्दिर जाता है भजन कीर्तन आदि में भाग लेता है। उसका यह अनुराग भक्ति नहीं है। भले ही यह सब भक्ति प्राप्ति के मार्ग में सहायक हो, किन्तु यह भक्ति नहीं है। **भक्ति है ईश्वर के प्रति परम अनुराग, हृदय में ईश्वर व ईश्वर प्रेम के अतिरिक्त और कुछ भी न होना**। इस परम-प्रेम के हृदय में उदित होते ही भक्त समस्त जगत् को ईश्वरमय ही देखता है। अतः उसका प्रेम केवल ईश्वर के प्रति ही रहता है। ऐसी परम अनुरक्ति का नाम ही भक्ति है। देवर्षि नारद भी अपने भक्ति सूत्र में कहते हैं- **सा त्वस्मिन् परम प्रेमरूपा**।[3] अर्थात् वह (भक्ति) इष्ट में प्रेमरूपा है। देवर्षि इससे एक पग और आगे बढ़कर भक्ति का लक्षण करते हुए कहते हैं- **अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्**।[4] और **मूकास्वादनवत्**।[5]

अर्थात् प्रेमभक्ति का स्वरूप अनिर्वचनीय है, वह गूँगे के स्वाद के समान है। इसका तात्पर्य यह नहीं हैं कि 'भक्ति' उसी प्रकार की है जैसे गूँगा मिठाई का स्वाद न बता सकता हो[6] क्योंकि गूँगा तो कुछ बता ही नहीं सकता। वास्तव में इसका आशय यह है कि जैसे गूँगा किसी भी विषय को वाणी द्वारा नहीं समझा सकता, उसी प्रकार भक्ति के प्रेम सुख को न बता पाना।

देवर्षि नारद और महर्षि शाण्डिल्य द्वारा भक्ति का उक्त स्वरूप अथवा परिभाषा भक्ति के वैदिक दृष्टिकोण को अपने शब्दों में व्यक्त करना मात्र है। भगवती श्रुति के मंत्रों में भक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के महान गुरुओं द्वारा दी गई 'भक्ति' की परिभाषा (स्वरूप) का दिग्दर्शन करने के लिए वैदिक भक्ति की भावना और उसकी प्रक्रिया को समझना आवश्यक है।

वैदिक भक्ति के सोपान स्तुति, प्रार्थना व उपासना कहे गए हैं। "स्तुति से ईश्वर में प्रीति उसके गुण कर्म स्वभाव से अपने गुण कर्म स्वभाव का सुधारना।"[7]

यहाँ ध्यान देना चाहिए कि ईश्वर में प्रीति का नाम, स्तुति और उसके गुण, कर्म, स्वभावों से अपने गुण कर्म सुधारने से है।

दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि ईश्वर के गुण, कर्म व स्वभाव को जानकर उससे प्रीति हो जाएगी और फिर उससे अपने गुण, कर्म, स्वभावों को भी हम ईश्वर की भाँति बनाने का प्रयत्न करेंगे तो यह प्रक्रिया 'स्तुति' कहलाएगी।

मनोवैज्ञानिक रूप से किसी वस्तु अथवा व्यक्ति से प्रीति का कारण उस वस्तु अथवा व्यक्ति के गुण कर्म स्वभाव हैं अर्थात् यदि हम किसी व्यक्ति से प्रीति (प्रेम) करना चाहते हैं तो हमें उसके गुण कर्म स्वभाव जानकर उनको अपने मन में ध्यान करना और वाणी से वाचन करना होता है। जितना हम मन-वचन में उन गुण आदि का प्रयोग करते जाते हैं, उसके प्रति हमारी प्रीति वा प्रेम प्रगाढ़ होता जाता है। यह मनो योग 'स्तुति' का मूलाधार है जो कालान्तर में भक्ति की परिभाषा के रूप में प्रस्फुटित हुआ।

सामवेद में एक मंत्र आता है-

पावमानीः स्वस्त्ययनीः सुदुघा हि घृतश्चुतः। ऋषिभिः संभृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतं हितम्॥[8]

(पावमानीः हि) पवित्र वेद की ऋचाएं ही (स्वस्त्ययनी) स्वस्ति सम्पादिका (सुदुघा) सुदुहा (घृतश्चुतः) घृत क्षरा अर्थात् स्नेह (प्रेम) वर्षाने वाली हैं। (रसः) रस = अनुराग = सोम = मधु है (ऋषिभिः सम्भृतः) ज्ञानियों द्वारा = भक्तों द्वारा भरा जाता है (ब्राह्मणेषु अमृतं हितम्) ब्राह्म जीवन जीने वाले = भक्तों में वह अमृत निहित होता है।

इस मंत्र में ऋचाओं को पावमानी अर्थात् अन्तकरण को पवित्र करने वाली कहा गया है। ऋचाओं का अर्थ स्तुति कर्म होता है। ऋगर्चनी अर्थात् ऋक् अर्चनी = स्तुति वाली है।[9] मंत्र में 'घृत क्षरा' शब्द है जो घृत के स्नेहन गुण के लक्षण के कारण यहाँ आया है। स्नेहन, अत्यन्त अनुराग और प्रेम का द्योतक है।[10] महर्षि दयानन्द ने ईश्वर के 'मित्र' नाम की व्याख्या में लिखा है कि "मेद्यति स्निह्यति स्निहयते वा' अर्थात् जो सबको स्नेह करने और प्रीति करने योग्य हैं"[11] और अंत में मंत्र में कहा गया है कि ब्राह्मणों में (जो ब्रह्ममय जीवन जीते हैं) वह मधु रस = अनुराग रहता है।

इसका अर्थ हुआ कि वेद की स्तुति युक्त ऋचाओं के गायन से ईश्वर में प्रेम व अनुराग बढ़ता जाता है। वेद में स्तुति के पर्याय 'स्तोम' जरिता, गरिता व गायत्र आदि भी हैं।

देवर्षि नारद ने गर्गाचार्य का मत उद्धृत करते हुए लिखा है- **कथादिष्विति गर्गः।**[12]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् भगवान् की कथा आदि में अनुराग होना ही भक्ति है।

यहाँ कथा के सम्बन्ध में भाई हनुमान प्रसाद पोद्दार का कहना है कि भगवान की महिमा, उनके गुण और नामों के कीर्तन तथा श्रवण में मन लगाना निस्संदेह भक्ति का प्रधान लक्षण हैं।" महर्षि शाण्डिल्य ने तो प्रत्यक्ष कहा है **रागार्थ प्रकीर्त्ति साहचर्याच्चेतरेषाम्।**[13] अर्थात् कीर्तन करना अनुराग अर्थ में कहा है उसके साथ होने से नाम, श्रवण-वन्दन का भी यही फल है।

इस विवेचन से स्पष्ट हुआ है कि 'भक्ति' में प्रेम = अनुरक्ति = अनन्य प्रेम चाहिए और वह अपने इष्ट के गुण, कर्म व स्वभावों को मन में दृढ़ करके उनके बार-बार वाचन से होता है।

वेद में 'स्तुति' सम्बन्धी अनेक मंत्र हैं जो व्यक्ति के ईश्वर की भक्ति में अनन्य प्रेम की अवधारणा के मूल हैं।

इस प्रकरण में हम सबसे पहले गायत्री[14] मंत्र के नाम से प्रसिद्ध मंत्र को लेते हैं।[15]

ओ३म्[16] भूर्भुवः स्वः।[17] तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥

इसका अर्थ है-

भूः - (भूरिति वैः प्राणः)* जो सब जगत् के जीने का हेतु और प्राण से भी प्रिय है, इससे परमेश्वर का नाम 'भूः' है।

भुवः - (भुवरित्यपानः)* जो मुक्ति की इच्छा करने वालों मुक्तों और अपने सेवक धर्मात्माओं को सब दुःखों से अलग करके सर्वदा सुख में रखता है इसलिए परमेश्वर का नाम 'भुवः' है।

स्वः - (स्वरिति व्यानः) जो सब जगत् में व्यापक होके सबको नियम में रखता और सबके ठहरने का स्थान तथा सुखस्वरूप है, इससे परमेश्वर का नाम 'स्वः' है।

सवितुः - सकलजगदुत्पादक, सकल ऐश्वर्यदाता

देवस्य - सुखप्रदाता

वरेण्यं - अत्यन्त ग्रहण करने योग्य

भर्गः - शुद्ध विज्ञानस्वरूप, दुःखविनाशक तेजस्वरूप का

तत् - उसका

धीमहि - हम लोग सदा प्रेमभक्ति से निश्चय करके अपने आत्मा में धारण करें।

यः - जो पूर्वोक्त सविता देव परमेश्वर है वह

नः - हमारी

धियः - बुद्धियों को

प्रचोदयात् - कृपा करके सब बुरे कामों से अलग करके सदा उत्तम कामों में प्रवृत्त करे।

मंत्र का प्रत्येक शब्द मंत्रार्थ[18] के द्वारा भक्ति से ओत-प्रोत दृष्टिगोचर होता है-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहली महाव्याहृति 'भुवः' का अर्थ ध्यान से देखने पर पता लगता है कि संसार में जीव के लिए सबसे प्रिय वस्तु प्राण है और इसका स्रोत भगवान है अतः वस्तु से अधिक उसका स्रोत और भी अधिक प्रिय रहेगा।[19] इसी आधार पर वेद में ईश्वर को "भुवः" अर्थात् प्राणों से भी प्रिय कहा गया है।

अत्यन्त प्रिय के प्रति ही अनन्य प्रेम और परम अनुरक्ति हो सकती है।[20]

अन्य महाव्याहृतियों में भी इसी प्रकार ईश्वर की स्तुति है और सवितुः, देवस्य, वरेण्यं और भर्गः ईश्वर के विभिन्न गुण-कर्म-स्वभावों का वर्णन कर रहे हैं जो स्तुति ही है।

'वरेण्यं' अत्यन्त ग्रहण करने योग्य अर्थात् अनन्य भक्ति के योग्य" के भाव को प्रकट करते हुए स्वामी समर्पणानन्द जी ने कहा है[21] कि- पूर्ण रूप से धारण किया गया तब समझना चाहिए जब वह स्वादुतम अन्न के समान आग्रहपूर्वक वरण करके खाया जाए (अर्थात् अनन्य प्रेम = परम अनुरक्ति) जो अन्न-खिन्न मन से जैसे-तैसे गले के नीचे उतार लिया जाता है वह 'धकेलेन्यम' भले ही हो 'वरेण्यम्' नहीं कहला सकता। वह स्वाद भी साधारण नहीं अलौकिक हो जिसे 'तत्' कहकर अनिवर्चनीयता का रूप दे दिया जाए।[22]

'धीमहि' में तो स्पष्ट ही प्रेम भक्ति का अत्युच्च भाव व उपदेश- आदेश है।

'धियो यो नः प्रचोदयात्' ये दोनों ही समर्पणात्मक और शरणागति को ध्वनित करते हैं। जहाँ कहा गया है कि हम धारण करते हैं और यह धारण किया गया हमारी बुद्धि और कर्मों को उत्तम प्रेरणा करें।[23]

सामवेद में एक मंत्र है-

इन्द्र जठरं नव्यं न पृणस्व मधोर्दिवो न। अस्य सुतस्य स्वा३र्नोप त्वा मदाः सुवाचो अस्थुः ॥[24]

अर्थात् हे जीवात्मा अपने अन्तकरण को नवीन सुन्दर द्यौ के समान मधु से भर, इसके आनन्द से तुझे सुप्रसन्नताएँ प्राप्त हों। यहाँ प्रेम भक्ति करने का उपदेश प्राप्त होता है। ऋग्वेद में अनन्य भक्ति के लिए कहा गया है-

वयं सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः।[25]

अर्थात् हे भक्त वत्सल प्रभु हम तो आप के मधुर मिलन के लिए ही इस मन को अपने तन में धारण कर रहे हैं।

यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम्।
स्युष्टे सत्या इहाशिषः ॥[26]

हे प्राणधन! अब तो मैं आपकी भव-भय हारिणी पावन भक्ति द्वारा तुझमें इतना तन्मय हो गया हूँ कि मैं तू बन गया, और तू मैं बन गया हूँ।

उत स्वया तन्वा३ सं वदे तत्कदा न्व१न्तर्वरुणे भुवानि। किं मे हव्यमहृणानो जुषेत कदा मृळीकं सुमना अभि ख्यम् ॥[27]

हे प्रभु! वह दिन कब आयेगा, जब मैं तेरी प्रेममयी गोद में बैठकर तुझसे मधुर वार्तालाप करूँगा। हे अन्तर्यामिन! कब मैं तेरे दिव्य स्वरूप में इतना लवलीन हो जाऊँगा कि अपनी सुधबुध भूल जाऊँगा। नाथ कब आप मेरे हृदय मन्दिर के द्वार पर स्वयं आकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नि:शंकरूप से मेरी भेंट स्वीकार करोगे। हे प्रभु वह कौन सी शुभ घड़ी होगी, जब मैं अपने शुद्ध, पवित्र और निर्मल अन्त:करण द्वारा तेरे मंगलमय परमानन्द स्वरूप के दर्शन कर कृतकृत्य हो जाऊँगा, और अपने को धन्य समझूँगा।

यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मयइवापो न तृष्यते बभूथ। तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्॥[28]

हे इन्द्र! जैसे तू पूर्व के सभी भक्तों के लिए प्रेमरस के प्यासों के लिए जल के समान सुखदायक होता है। मैं तुझको उसी भक्तिभाव से बार-बार पुकारता हूँ, जिससे हम पाप वारण बल व जीवन विज्ञान को प्राप्त कर लें।

स्वामी वेदानन्द जी ने इस मंत्र की व्याख्या में कहा है कि "प्यास सता रही है। जल मिलते ही वह शान्त हो जाती है। प्यासे को तो जल ही अमृत है, प्यासे को वस्त्र दो नहीं लेगा, प्यासे को भोजन दो नहीं लेगा। वस्त्र और भोजन उपयोगी हैं परन्तु प्यास नहीं बुझा सकते। अत: प्यासे के लिए ये सुखदायी नहीं। इसी प्रकार यहाँ भक्त उसी भक्ति भावना से, प्रेमाभक्ति से, परम अनुरक्ति के वशीभूत संसार ताप से झुलस कर शान्ति के लिए पुकार रहा है।[29] अनन्य प्रेम को प्रदर्शित करते वेद के कुछ अन्य मंत्र देखिए-

स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम्। उतो न्वऽस्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु॥[30]

यह प्रभु-प्राप्ति का रस अत्यन्त स्वादु है, अत्यन्त मधुर है, और अत्यन्त तीव्र अर्थात् तेज है। इतना तेज कि एक बार जिसको इस प्रभु-प्राप्ति के पावन रस का नशा चढ़ गया, फिर कभी उतरता नहीं। संसार के क्षणिक नशे तो थोड़ी देर तक रहते हैं। परन्तु यह नशा तो सदा ही बना रहता है।

प्र सम्राजे बृहदर्चा गभीरं ब्रह्म प्रियं वरुणाय श्रुताय।[31]

अर्थात् (सम्राजे) जो सबका सम्राट है (श्रुताय) जिसकी महिमा सर्वत्र सुनायी दे रही है ऐसे (वरुणाय) सबके वरण करने योग्य और सबको बचाने वाले भगवान के लिए (प्रियम्) प्यार से भरी (गभीरम्) गहरी (ब्रह्म) वेद विहित- स्तुति (बृहत्) खूब (प्र-अर्च) अच्छी तरह गा।

अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो हृदि स्तोम उपश्रितश्चिदस्तु।[32]

अर्थात् हे (स्वधाव:) शक्तिशाली और अन्नदाता (वरुण) वरणीय भगवन् (तुभ्यम्) तेरे लिए (अयम्) यह मेरी (स्तोम) भक्ति (हृदि) तेरे हृदय में (सु) अच्छी तरह (उपश्रितश्चित्) प्राप्त (अस्तु) होवे।

आधुनिक काल के वेदभाष्यकार शिरोमणि महर्षि दयानन्द का पुनीत जीवन प्रभु प्रेम से ओत-प्रोत था। उनके सभी ग्रन्थ भगवद् भक्ति से भरे हुए हैं।[33] उन्होंने अपने वेदभाष्य में वेद मन्त्रों के भक्ति परक अर्थ करते हुए जितना ईशगुणगान किया है।[34] उतना किसी अन्य वेदभाष्यकार ने नहीं किया। महर्षि ने मनुष्यों में भगवद् भक्तिभाव की अमृतदायिनी धारा प्रवाहित करने के लिए वेदमंत्रों पर आधारित एक ग्रन्थ लिखा है।[35]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसमें वेद मंत्रों में प्रभु प्रेम, अनन्य भक्ति व परम अनुराग के दिग्दर्शन सहज हैं[36]-

आर्याभिविनय में महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि-

1. हे 'अंग' मित्र! जो भक्त आपको आत्मादि दान करता है उसको भद्रम् व्यवहारिक और पारमार्थिक सुख अवश्य देते हो। हे 'अंगिर' प्राणप्रिय! यह आप का सत्यव्रत है कि स्वभक्तों को परमानन्द देना।[37]
2. हे परमैश्वर्यवान् आपको प्रीतिपूर्वक हृदय में अत्यन्त प्रेम से गावें, यथावत् स्तुति करें।[38]
3. आपकी कृपा से हम विद्वानों का दिव्यगुणों के साथ उत्तम प्रीतियुक्त आप में रमण और आप का सेवन करने वाले हों।[39]
4. हे परमात्मन्! आपके बिना हमारा कल्याण करने वाला और कोई नहीं। प्रभो! हमको आपका ही सब प्रकार से भरोसा है, सो आप ही पूरा करेंगे।[40]
5. हम लोग आपकी ही अत्यन्त स्पर्धा अर्थात् प्राप्ति की इच्छा करते हैं। जो प्राप्त होने में आप थोड़ा भी विलम्ब करेंगे, तो हमारा कुछ भी ठिकाना न लगेगा।[41]

इस प्रकार ज्ञान-विज्ञान की समस्त विधाओं के समान ही 'भक्ति' नामक परमतत्व प्राप्ति का ज्ञान अर्थात् उसका स्वरूप, साधन, साध्य, उसका फल और क्रिया का मूलाधार भी वेद है और भक्ति में उसके आचार्यों द्वारा समर्थित प्रेम, अनुराग, समर्पण के साधन आदि का जैसा विशुद्ध रूप वेदों में प्राप्त होता है वह अन्यत्र असम्भव ही है अर्थात् वैदिक भक्ति सर्वोत्तम मनुष्य को शीघ्र अध्यात्म लाभ देने वाली कामधेनु है।

पाद-टिप्पणियां-

१ भक्ति तत्व, कल्याणमल लोढ़ा, पृष्ठ 1

२ भक्ति सूत्र संख्या - 2

३ भक्तिसूत्र - 2

४ नारद भक्तिसूत्र - 51

५ तदेव - 52

६ यह केवल लाक्षणिक भाव है। अन्यथा किसी भी स्वाद का वर्णन कोई भी व्यक्ति नहीं कर सकता। यह केवल और केवल अपना व्यक्तिगत अनुभव होता है। हमारी दृष्टि में 'मूकास्वादनवत्' का अर्थ यही है कि किसी भी स्वाद की अनिर्वचनीयता के समान।

७ सत्यार्थ प्रकाश - सप्तम समुल्लास महर्षि दयानन्द सरस्वती, पृष्ठ 163

८ क्रमांक 1300

९ निरुक्त 7/1

१० स्नेहयुक्त पदार्थों का प्रत्येक अणु एक दूसरे से अत्यन्त अनुराग रखता है। इसी अनुराग के कारण वे एक दूसरे से मिले रहते हैं। द्रष्टव्य - वेद प्रवचन- पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय, पृष्ठ 185

११ सत्यार्थ प्रकाश प्रथम समुल्लास, पृष्ठ 13

१२ नारद भक्तिसूत्र - 17

१३ शाण्डिल्य भक्ति सूत्र - 57

१४ "गायत्र गायते स्तुति कर्मण:" अर्थात् गायत्र गायति (गाने) से है, स्तुति कर्म से है। दूसरे अर्थ में गायत्री और स्तुति परस्पर पर्याय है। निरुक्त - 1/7

१५ यह मंत्र ऋग्वेद- 3/62/10, यजुर्वेद - 3/35,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

22/9, 30/2, 36/3, सामवेद - 1462 है।

[१६] यह मंत्र का भाग नहीं है।

[१७] ये महा व्याहृतियां यजुर्वेद - 36/3 में ही हैं। अन्य स्थानों पर इनके बिना ही यह वेद मंत्र प्राप्त होता है।

* तैत्तिरीयोपनिषद् - शिक्षावल्ली - 5/3

[१८] पञ्चमहायज्ञविधि - महर्षि दयानन्द सरस्वती, पृष्ठ - 9 से लिया गया है।

[१९] महामंत्र - महात्मा आनन्द स्वामी, पृष्ठ 67

[२०] तुलना करें-सा परानुरक्तिरीश्वरे। शाण्डिल्य भक्तिसूत्र - 2

सा त्वस्मिन् प्रेमरूपा। नारद भक्ति सूत्र - 2

[२१] गायत्री मंत्र की इतनी महत्ता क्यों? पृष्ठ 3

[२२] तुलना करें-अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्। मूकास्वादनवत्। नारद भक्तिसूत्र - 51 व 52

[२३] तुलना करें-यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धोभवति, अमृतोभवति, तृप्तोभवति।

यत्प्राप्य न किञ्चिद्वाञ्छति न शोचति न द्वेष्टि न रमते नोत्साही भवति। नारद भक्तिसूत्र 4 व 5

[२४] क्रमांक - 953

[२५] 10/57/6

[२६] ऋग्वेद - 8/44/23

[२७] तदेव - 7/86/2

[२८] तदेव - 1/175/6

[२९] स्वाध्याय सन्दोह - पृष्ठ 115

[३०] ऋग्वेद - 6/47/1

[३१] तदेव - 5/85/1

[३२] तदेव - 7/86/8

[३३] द्रष्टव्य- सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पंचमहायज्ञविधि, संस्कारविधि आदि।

[३४] विस्तार के लिए वेदभाष्य का अवलोकन अपेक्षित है।

[३५] आर्याभिविनय

[३६] प्रभुभक्त दयानन्द और उनके आध्यात्मिक उपदेश, आचार्य भद्रसेन, पृष्ठ 36

[३७] आर्याभिविनय प्रथम प्रकाश, विनय संख्या - 6

[३८] तदेव - विनय संख्या - 9

[३९] तदेव - विनय संख्या - 18 का भाग

[४०] आर्याभिविनय-द्वितीय प्रकाश-विनय संख्या-३९

[४१] तदेव - विनय संख्या - 46

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotiḥ
ISSN 2277-4351
Vol.1, No.1 (110-113) Jan-Jun 2013

वेद प्रतिपादित देवहित आयु और उसका स्वरूप

प्रशस्यमित्र शास्त्री, बी०-२९ आनन्द नगर (जेल रोड) रायबरेली-२२९००१ (उ०प्र०)

ऋग्वेद का निम्न प्रसिद्ध मन्त्र है, जिसे हम स्वस्तिवाचन में पढ़ने के साथ ही यजमान आदि की दीर्घ आयुष्य, आशीर्वाद एवं शुभ कामना प्रकट करने के लिये भी पढ़ते हैं-

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥ ऋग्०१.८९.८

इस मन्त्र में 'देवहित-आयु' की प्रार्थना की गयी है। अब प्रश्न होता है कि यह देवहित आयु क्या है तथा इसका परिणाम कितना है? यही नहीं अपितु अनेक वेदमन्त्रों में चक्षुरादि इन्द्रियों के सबल होने के साथ ही जीवन एवं स्वास्थ्य आदि की जब कामना की जाती है तो वहां भी विशेषण के रूप में 'देवहित' शब्द प्रयुक्त होता है। जैसे-

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥ यजु०३६.२४

आचार्य सायण का अर्थ : यज्ञमय जीवन-

चारों वेदों के सुप्रसिद्ध भाष्यकार आचार्य सायण 'भद्रं कर्णेभिः' आदि ऋग्वेदीय मन्त्र की व्याख्या में 'देवहितं यदायुः' इस पद का भाष्य करते हुए लिखते हैं-

''यदायुः षोडशाधिकशत प्रमाणं विंशत्यधिकशतप्रमाणं वा'' अर्थात् 'देवहित-आयु' का तात्पर्य है कि ११६ वर्ष की आयु अथवा १२० वर्ष की आयु।

अब प्रश्न होता है कि सायणाचार्य के इस अर्थ का आधार क्या है? ''देवहित-आयु'' का प्रमाण ११६ या १२० वर्ष ही क्यों माना जाय? इसका उत्तर हमें छान्दोग्य-उपनिषद् के निम्न वाक्य में प्राप्त होता है-

पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विंशति वर्षाणि तत्प्रातः सवनं चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री यानि चतुश्चत्वारिंशद् वर्षाणि तन्माध्यन्दिनं सवनं चतुश्चत्वारिंशदक्षरास्त्रिष्टुप् यान्यष्टाचत्वारिंशद् वर्षाणि तत् तृतीयं सवनम् इति अष्ट चत्वारिंशद् अक्षरा जगती।

छान्दोग्यपोनिषद् ३.१६.१

अर्थात् मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन ही एक यज्ञ है। इस यज्ञमय जीवन के प्रारम्भिक २४ वर्ष प्रातःसवन है जबकि अगले ४४ वर्ष माध्यन्दिन सवन है तथा अग्रिम ४८ वर्ष तृतीय सवन के रूप में समझना चाहिये। इस प्रकार इसका कुल योग ११६ वर्ष होता है।

यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि सोमयाग के प्रातः माध्यन्दिन एवं तृतीय सवन क्रमशः गायत्र, त्रैष्टुभ, जागत कहे जाते हैं। ये छन्द क्रमशः २४, ४४ एवं ४८ अक्षरों वाले होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ तक १२० वर्ष का प्रश्न है, सम्भव है कि छान्दोग्योपनिषद् के किसी संस्करण में माध्यन्दिन सवन को भी ४८ वर्ष का स्वीकार किया गया है।

मनुष्य की औसत आयु एक सौ वर्ष-

वैदिकग्रन्थों में मनुष्य की औसत आयु एक सौ वर्ष मानी गयी है। ऐतरेय आरण्यक में लिखा है-

शतं वर्षाणि पुरुषायुषो भवति।

(ऐ०आर०२१.२९)

अर्थात् पुरुष की सामान्य आयु एक सौ वर्ष होती है। अन्यत्र भी इसी प्रकार का भाव वैदिक-ग्रन्थों में उपलब्ध है-

शतायुर्वै पुरुषः शतवीर्यः

(मैत्रायणी संहिता १६.४)

शतायुः पुरुषः शतेन्द्रियः

(तैत्ति०संहिता २.३.११५)

माध्यन्दिन यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय का द्वितीय मन्त्र है-

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतंसमाः।

अर्थात् मनुष्य कर्म करते हुए सक्रिय सबल स्वस्थ रहकर ही एक सौ वर्ष पर्यन्त जीवन की कामना करे। यहाँ एक सौ वर्ष से तात्पर्य औसत रूप से एक सौ वर्ष है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि एक सौ वर्ष से अधिक जीवन नहीं है। क्योंकि मन्त्रों में भी है-

भूयश्च शरदः शतात्॥

(माध्यन्दिन यजु०३६.२४)

माध्यन्दिन शतपथब्राह्मण में लिखा है-

अपि हि भूयांसि शताद् वर्षेभ्यः पुरुषो जीवति (मा०शतपथ १९.३.१९)

सम्प्रति भारतवर्ष में औसत अधिकतम आयु ६५ वर्ष-

भारतवर्ष में इस समय मनुष्यों की आयु औसत रूप में केवल ६०-६५ वर्ष के बीच मानी गयी है। जबकि संयुक्त राष्ट्र के विश्व स्वास्थ्य संगठन के १९९५ के आंकड़ों के हिसाब से अमेरिका, यूरोप तथा जापान प्रभृति विकसित देशों में मनुष्य की औसत आयु पचहत्तर वर्ष तक मानी गयी है। इन देशों में पौष्टिक भोजन एवं आम चिकित्सा सुविधाओं की अच्छी व्यवस्था होने से ऐसा है-

अफ्रीका महाद्वीप के कई देशों जैसे-सोमालिया, इथियोपिया, युगाण्डा आदि में तो औसत आयु मात्र ४० वर्ष ही मानी गयी है। इन देशों में अत्यधिक गरीबी, कुपोषण के साथ ही साथ चिकित्सा व्यवस्था की जर्जर स्थिति होने से मृत्यु दर भी अधिक है। अतः औसत आयु बहुत कम है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अभी विश्व में वेद प्रतिपादित एक सौ वर्ष की औसत आयु विश्व में कहीं भी परिलक्षित नहीं हो पा रही है।

''जरा'' ही देवहित आयु है-

वास्तव में पूर्ण आयुष्य अर्थात् कम से कम एक सौ वर्ष की आयु के साथ ही स्वस्थ निरोग रहते हुए वृद्धावस्था के द्वारा मृत्यु को प्राप्त करना ही 'देवहित-आयु' की प्राप्ति है। रोग द्वारा अल्प समय में मृत्यु या दुर्घटना आदि के द्वारा आकस्मिक-मृत्यु की प्राप्ति का अभाव तथा पूर्ण निरोग रहते हुए वृद्धावस्था को प्राप्त कर मृत्यु की प्राप्ति की स्थिति का नाम ही देवहित-आयु की प्राप्ति है। इस सम्बन्ध में वैदिक-ग्रन्थों में निम्न प्रमाण द्रष्टव्य हैं-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जरा वै देवहितम् आयुः।

(मैत्रायणी संहिता १.७.५)

यही वाक्य काठक संहिता तथा कपिष्ठल कठ संहिता में भी प्राप्त होता है। जैसे--

जरा वै देवहितमायुः।

(काठक संहिता ९.२) तथा (कपिष्ठल कठ संहिता ८.५)

अभीष्ट आयु एवं आरोग्य प्राप्ति के लिये यज्ञ-श्रीमद्भगवद्गीता में लिखा है-

सह यज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्ट कामधुक्॥

(३.१०)

अर्थात् यज्ञ की रचना के साथ ही प्रजापति का यह निर्देश भी हुआ कि जो मनुष्य निरन्तर यज्ञ का अनुष्ठान करता है, वह अभीष्ट कामनाओं को निरन्तर प्राप्त करता रहता है। अभीष्ट एवं यथाकाम आयु की प्राप्ति में यज्ञ सहायक होता है। अथर्ववेद में निम्न मन्त्र द्रष्टव्य है-

न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते।
यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते॥

(१९.३८.१)

अर्थात् जो अग्नि होम में गुग्गुल का प्रयोग करता है, उसे क्षय आदि रोग नहीं होता।

चिकित्साशास्त्रों में जहाँ विविध रोगों के निवारण के लिये विधिध प्रकार की औषधियों एवं उनके द्वारा चिकित्सा करते हुए रोगों की मुक्ति का उल्लेख है, वहीं इष्टियों एवं यज्ञों के सम्पादन का भी संकेत करते हुए इनके माध्यम से मनुष्य को निरोग होने तथा उसकी आयु में वृद्धि का उल्लेख प्राप्त होता है। जैसे-

प्रयुक्तया ययाचेष्ट्या राजयक्ष्मा पुरा जितः।
तां वेदविहिताम् इष्टिमारोग्यार्थी प्रयोजयेत्॥

(चरक चिकित्सा स्थान ८.१२१)

जो लोग यज्ञ नहीं करते, उनका चिन्तन, मनन याज्ञिकों के समान सात्त्विक नहीं हो पाता तथा वे सदाचार की ओर भी उन्मुख नहीं हो पाते। दुराचारी एवं अधर्मात्मा व्यक्ति की आयु भी अल्प संभावित है, अतः महाभारत में भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर से कहा है-

अधर्मज्ञा दुराचारास्ते भवन्ति गतायुषः।

(अनुशासन पर्व....)

जबकि चरित्रवान् एवं धार्मिक याज्ञिक प्रकृति के लोगों के बारे में वे कहते हैं-

'शतं वर्षाणि जीवति' वे स्वस्थ सबल नीरोग होकर पूर्ण एक सौ वर्ष की आयु प्राप्त कर जरावस्था के द्वारा मृत्यु को प्राप्त करते हैं। यही वेद प्रतिपादित 'देवहित-आयु' भी है।

दीर्घ संध्या से दीर्घ आयु-

मनुस्मृति के चतुर्थ अध्याय में लिखा है कि ऋषियों ने दीर्घकाल तक दीर्घ सन्ध्या एवं गायत्री जप आदि के द्वारा दीर्घ आयु प्राप्त किया-

ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः।
प्रजां यशश्च कीर्तिंच ब्रह्मवर्चसमेव च॥

(मनु०४.९४)

अथर्ववेद के एक अन्य मन्त्र (१९.७१.१) से भी संकेत मिलता है कि गायत्री-जप से आयुप्राण, कीर्ति आदि की प्राप्ति में वृद्धि होती है।

पञ्चमहायज्ञों में नृयज्ञ अर्थात् अतिथियज्ञ या घर में आये हुए विद्वान् सदाचार सफल अतिथि की पूजा का विधान भी 'यज्ञ' शब्द से बोध्य है। 'यज्ञ' का अर्थ बहुत व्यापक है। 'यज्ञ' शब्द पञ्चमहायज्ञों का वाचक है। इसका अर्थ केवल देवयज्ञ या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्निहोत्र ही नहीं है। ब्रह्मयज्ञ अर्थात् संध्या तथा अतिथि यज्ञ आदि भी यज्ञ के अन्तर्गत आते हैं। इसी कारण विद्वान् अतिथि के प्रति नमन या सत्कार मात्र से तथा उसके द्वारा प्रयुक्त आशीर्वचन मात्र से भी मनुष्य की आयु की वृद्धि सम्भावित है। इसी कारण मनुस्मृति में कहा है-

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥

(मनु० २.१२१)

अस्तु कुछ भी हो वास्तव में 'देवहित-आयु' अर्थात् यज्ञमय जीवन का निर्माण करते हुए समस्त इन्द्रियों से स्वस्थ सबल सक्रिय रहते हुए कम से कम ११६ वर्ष जीवन बिताकर जरावस्था द्वारा मृत्यु की प्राप्ति हो तभी हम वैदिक भावना को हृदयांगम कर सकते हैं। वेद ने हमें संकेतों में ही इसका उपदेश दिया है। हम वेद के इन संदेशों को ठीक तरह से समझें तथा जीवन में क्रियान्वित करें तो निश्चय ही सार्थकता को प्राप्त कर सकते हैं। वेदमन्त्रों के उपदेश हमें जीवन की सफलता एवं उसके उद्देश्य के प्रति निरन्तर प्रेरित करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotiḥ
ISSN 2277-4351

Vol.1, No.2 (114-122) Jan-jun 2013

गोभिल गृह्यसूत्र के परिप्रेक्ष्य में अग्निहोत्र की प्राचीन विधि

(दिनेशचन्द्र शास्त्री, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, वेदविभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार)

अग्निहोत्र आदि गृह्यकर्मों के करने का अधिकार उन्हें है जो कि आहिताग्नि होते हैं, इस लेख में गोभिलीय गृह्यसूत्र के आधार पर अग्न्याधान तथा अग्निहोत्र की विधि का वर्णन संक्षेप से लिखा जाता है। गोभिल गृह्यसूत्र का आरम्भ अग्न्याधान तथा अग्निहोत्र की विधि से होता है।

अग्न्याधान के काल तथा स्थान-

अग्न्याधान का अभिप्राय है-अग्नि का आधान करना अर्थात् अग्नि की स्थापना करना। ब्रह्मचारी जब गृहस्थ में प्रवेश किया करता था तो प्रायः वह अपनी नवीन अग्नि का अपने गृह में स्थापन किया करता था जो कभी बुझने न पाती थी। दैनिक अग्निहोत्र आदि कर्म इसी स्थापित अग्नि के द्वारा किये जाया करते थे।

गोभिल गृह्यसूत्र में अग्न्याधान के काल तथा स्थान के सम्बन्ध में निम्नलिखित सूत्र आये हैं। यथा-

''ब्रह्मचारी वेदमधीत्यान्त्यां समिधमभ्याधास्यन्''॥ १.१.७॥

''जायाया वा पाणिं जिघृक्षन्''॥ १.१.८॥

''प्रेते वा गृहपतौ परमेष्ठिकरणम्''॥ १.१.१२॥

''तथा तिथि नक्षत्रपर्व्वसमवाये''॥१.१.१३॥

''दर्शे वा पौर्णमासे वाऽग्निसमाधानं कुर्वीत''॥१.१.१४॥

''वैश्यकुलाद्वा ऽम्बरीषाद्वा ऽग्निमाहृत्याभ्यादध्यात्''॥१.१.१६॥

''अपिवा बहुयाजिन एवागाराद् ब्राह्मणस्य वा, राजन्यस्य वा, वैश्यस्य वा''॥१.१.१६॥

''अपिवाऽन्यं मथित्वाऽभ्यादध्यात्॥१.१.१॥

''यथा कामयेत तथा कुर्यात्''॥१.१.१९॥

''ब्रह्मचारी एक, दो या समग्र वेदों का नियमपूर्वक अध्ययन कर ब्रह्मचर्यकाल की समाप्ति के समय अन्तिम अग्निहोत्र की समिधाओं का जब आधान करने लगे तब वह नवीन अग्नि का आधान करे'' १.१.१॥ इस नवीन स्थापित अग्नि में अब से नियमपूर्वक अग्निहोत्र किया करे।

''या जब वह विवाह के निमित्त किसी कन्या का पाणिग्रहण करने लगे तब अग्न्याधान करे अर्थात् नवीन अग्नि का आधान करे, स्थापना करे।'' १.१.८॥

ब्रह्मचारी जिसे कि ब्रह्मचर्यकाल में ही किसी ने कन्यासम्बन्धी वाग्दान कर दिया हो वह ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यकाल की अन्तिम समिधा नवीन अग्नि में दे सकता है, दूसरा नहीं।

इस अवस्था में अर्थात् अन्तिम समिधा जब नवीन स्थापित अग्नि में दी गयी हो तब इसी अग्नि में ही विवाह सम्बन्धी होम भी होना चाहिये। और विवाह के पश्चात् यही अग्नि आगे के लिये गृहकृत्यों तथा गृह संस्कारों के काम में भी लानी चाहिये। परन्तु जिस ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्यकाल में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही कन्या सम्बन्धी वाग्दान न मिला हो वह स्नातक होते समय तथा उस के पश्चात् भी जब तक कि उसे वाग्दान न मिल जाये या वह विवाह के निमित्त प्रवृत्त न हो-अपना अग्निहोत्र अपने पिता द्वारा स्थापित अग्नि में करता रहे। और ब्रह्मचर्यकाल में आचार्य की अग्नि में अग्निहोत्र करता रहे।

''अथवा गृहस्वामी अर्थात् घर के बुजुर्ग पिता माता की मृत्यु पर अग्न्याधान करना चाहिये।'' १.१.१२॥

यह तीसरा विकल्प है। पिता माता की मृत्यु पर भाई नियमानुसार पैतृक सम्पत्ति को आपस में बांट लेते हैं। उस समय उनके पृथक् पृथक् हो जाने पर उनके अग्निहोत्र आदि गृह्यकर्मों के लिये उनकी अग्नियाँ भी पृथक् पृथक् हो जानी स्वाभाविक प्रतीत होती हैं। इस विकल्प के अनुसार ब्रह्मचर्यकाल की समाप्ति पर या विवाह के समय पृथक् अग्न्याधान की कोई आवश्यकता नहीं।

''उपरोक्त तीनों विकल्पों में जब भी अग्न्याधान करना हो तब उत्तम तिथि, उत्तम नक्षत्र और उत्तम पर्व का ध्यान करके ही अग्न्याधान करना चाहिये।'' १.१.१३॥

''अथवा नक्षत्र का ध्यान न करते हुए अमावास्या या पौर्णमासी के दिन अग्नि का आधान अर्थात् स्थापना कर लेनी चाहिये।'' १.१.१४॥

इस अग्न्याधान के सम्बन्ध में इतना स्मरण रखना चाहिये कि विवाह होने से पूर्व स्नातक यदि अग्न्याधान करे तो वह अकेले ही इसका आधान करेगा, परन्तु विवाह के अनन्तर यदि अग्न्याधान किया जायेगा तो पति और पत्नी मिलकर ही अग्न्याधान करें। सूत्र १४वें में जो **''अग्निं समाधानम्''** में सम् उपसर्ग है, उसका अभिप्राय टीकाकारों ने यह दर्शाया है कि पति और पत्नी इकट्ठे होकर अर्थात् पति भार्या के साथ मिलकर ही अग्नि की स्थापना करे।

अग्नि कहां से ली जाये?

''वैश्य के कुल अर्थात् गृह से या भट्ठी से अग्नि लाकर उसका आधान करे।'' १.१.१५॥

''अथवा बहुत यज्ञ करने वाले के ही घर से, चाहे वह ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो या वैश्य, अग्नि लाकर उसका आधान करे॥'' १.१.१६॥

''अथवा नई अग्नि को मथ कर उसका आधान करे॥'' १.१.१७॥

''जिस प्रकार जिस तरह चाहे उस तरह अग्नि का आधान करे॥'' १.१.१९॥

अग्निस्थापन का प्रकार

अनुगुप्ता अप आहृत्य, प्रागुदक् प्रवणं देशं समं वा परिसमूह्योपलिप्य, मध्यतः प्राचीं रेखामुल्लिख्योदीचीञ्च संहतां पश्चात्, मध्ये प्राचीस्तिस्र उल्लिख्याभ्युक्षेत्॥ १.१.९॥

''सुरक्षित जल लाकर, पूर्व या उत्तर की ओर झुकाव वाले अथवा समतल स्थान को ठीक प्रकार कुशाओं के द्वारा समतल स्थान को ठीक प्रकार कुशाओं के द्वारा साफ कर, उसे (गोबर द्वारा) लीप कर, इस स्थल में (दक्षिण की ओर) पश्चिम से पूर्व की ओर एक रेखा (१२ अंगुल की, कुशा द्वारा) खींचकर, इसके पश्चिम में इससे स्पर्श करती हुई एक रेखा (२१ अंगुल की) दक्षिण से उत्तर की ओर खींचकर, इस पिछली रेखा के बीच में (सात सात अंगुल के अन्तर से) पूर्व की ओर जाती हुई तीन रेखाएं (प्रादेश प्रमाण की) खींच कर जल छिटके॥''

भूर्भुवः स्वरित्यभिमुखमग्निं प्रणयन्ति॥ १.१.११॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्पश्चात् **''ओ३म् भूर्भुवः स्वः''**-इस मन्त्र को बोलकर अपने सम्मुख (रेखांकित स्थण्डिल पर) अग्नि को स्थापित करते हैं।''११॥

गृह्य अग्नि

स यदेवान्त्यां समिधमभ्यादधाति, जायाया वा पाणिं जिघृक्षन् जुहोति तमभिसंयच्छेत्॥

१.१.२०॥

स एवास्य गृह्योऽग्निर्भवति॥१.१.२१॥

''वह स्नातक जिस अग्नि में अन्तिम समिधा का आधान करता है, या पत्नी का पाणिग्रहण करता हुआ जिस अग्नि में लाजाहोम करता है, उस अग्नि की सम्यक् प्रकार से रक्षा करे''॥१.१.२०॥

''वह ही अग्नि इसकी गृह्य अग्नि अर्थात् गृह्यकर्मों-अग्निहोत्र तथा संस्कार आदि कर्मों-के निमित्त होती है,,॥१.१.२१॥

इस अग्नि को गृह्य, औपवसथ्य तथा औपासन भी कहते हैं।

प्रातरग्निहोत्र

तेन चैवास्य प्रातराहुतिर्हुता भवति॥

१.१.२२॥

''अर्थात् अन्तिम समिधा का आधान जिस दिन प्रात:काल किया जाये या विवाह सम्बन्धी होम जब प्रात:काल किया जाये तब समझ लेना चाहिये कि मेरा आज का प्रात:काल का अग्निहोत्र इस समिधाधान द्वारा या विवाह होम द्वारा सम्पन्न हो गया। इस दिन प्रात:काल और अग्निहोत्र के करने की आवश्यकता नहीं।

दैनिक अग्निहोत्र

सायमाहुत्युपक्रम एवात ऊर्ध्वं गृह्येऽग्नौ होमो विधीयते॥ १.१.२३॥

जब सायंकाल की आहुति से अग्निहोत्र प्रारम्भ किये जाते हैं, और आगे से जो अग्निहोत्र गृह्य अग्नि में ही किये जाते हैं॥१.१.२३॥

इसका अभिप्राय यह है कि अन्तिम समिधा का आधान या विवाह होम जब दिन में किया हो तब उसी दिन सायंकाल से अग्निहोत्र का आरम्भ समझ कर अगले दिन प्रात:काल के अग्निहोत्र में दैनिक अग्निहोत्र की समाप्ति समझनी चाहिये। अर्थात् प्रथम दिन के सायंकाल के अग्निहोत्र को तथा अगले दिन के प्रात:काल के अग्निहोत्र को एक कर्म समझना चाहिये।

यदि विवाह-होम रात्र में हो तब इसी विवाह-होम द्वारा समझ लेना चाहिये कि अगले दिन का भी प्रात:काल का अग्निहोत्र हो गया।

इस अवस्था में दैनिक अग्निहोत्र इस अगले दिन के सायंकाल से आरम्भ होकर तीसरे दिन के प्रातः काल में अग्निहोत्र समाप्त होगा।

इसका अभिप्राय यह है कि दैनिक अग्निहोत्र में जिस हवि द्वारा (पकायी हुई या स्वाभाविक, दही अथवा दूध) सायंकाल का अग्निहोत्र प्रारम्भ करना चाहिये। उसी हवि द्वारा ही प्रात:काल का अग्निहोत्र समाप्त करना चाहिये। यह न होना चाहिये कि सायंकाल का अग्निहोत्र तो एक हवि द्वारा किया और अगले दिन प्रात:काल का अग्निहोत्र दूसरी हवि द्वारा कर दिया। इससे ये दो कर्म हो जायेंगे और ये दोनों अग्निहोत्र मिलकर एक कर्म न कहलायेंगे।

कई आचार्य यह भी मानते हैं कि दैनिक अग्निहोत्र प्रात:काल से प्रारम्भ होता है और सायंकाल के अग्निहोत्र से समाप्त होता है। इसलिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक समय का किया गया अग्निहोत्र असमाप्त अग्निहोत्र ही जानना चाहिये।

अग्निहोत्र के काल

सायंकाल का अग्निहोत्र सूर्यास्त के समय होना चाहिये या उसके आगे पीछे, इसी प्रकार प्रात:काल का अग्निहोत्र सूर्योदय के समय होना चाहिये या उसके आगे पीछे, इस सम्बन्ध में गोभिल गृह्यसूत्र में निम्नलिखित दो सूत्र ध्यान देने के योग्य हैं। यथा-

पुराऽस्तमयादग्निं प्रादुष्कृत्यास्तमिते सायमाहुतिं जुहुयात्॥ १.१.२७॥

पुरोदयात् प्रातः प्रादुष्कृत्योदितेऽनुदिते वा प्रातराहुतिं जुहुयात्॥ १.१.२८॥

'सूर्य के अस्त होने से पहिले, स्थापित अग्नि को, प्रकट कर सूर्य के अस्त हो जाने पर सायं काल की आहुति अग्नि में देनी चाहिये॥ १.१.२७॥

प्रात:काल सूर्य के उदय होने से पूर्व, स्थापित अग्नि को, प्रकट कर सूर्य के उदित हो जाने पर या उसके उदित होने से पूर्व ही प्रात:काल की आहुति अग्नि में देनी चाहिये॥ १.१.२८॥

मनु ने प्रात:काल के अग्निहोत्र के तीन काल लिखे हैं। अनुदित काल, समयाध्युषित काल और उदित काल। रात्रि का अन्तिम भाग जब कि ग्रह तथा नक्षत्र दिखायी देते हो, अनुदित काल है। इस समय में अग्निहोत्र हो सकता है। इसके अनन्तर प्रभात के समय जब कि ग्रह और नक्षत्र दीखने बन्द हो जावें और सूर्य का दर्शन अभी तक न हो, इस काल को समयाध्युषित कहते हैं। इस समय में भी अग्निहोत्र के करने की विधि है। तीसरा काल है-उदित काल। सूर्य-रश्मियों से समन्वित हुआ-हुआ जब, रेखामात्र दिखायी दे उस समय भी अग्निहोत्र का विधान है। इस काल को उदित काल कहते हैं। इन तीनों कालों की इस प्रकार की व्याख्या गोभिल आचार्य के पुत्र ने अपने ग्रन्थ 'गृह्या संग्रह' में की है। इसलिये उदितकाल के अग्निहोत्र के सम्बन्ध में यदि गोभिलाचार्य के २८वें सूत्र तथा उसके पुत्र के विचारों को एकत्र किया जाये तो परिणाम यह निकलता है कि प्रात:काल में उदित काल के अग्निहोत्र का काल सूर्य के रेखामात्र दीखने के काल से लेकर सूर्य जब तक पूर्णमण्डल में नहीं आ लेता और इस पूर्ण मण्डल रूप में जब तक वह लगभग एक हाथ और क्षितिज के ऊपर नहीं चढ़ जाता तब तक है। इन दोनों कालों के मध्य में प्रात:काल का उदित पक्ष का अग्निहोत्र समाप्त हो जाना चाहिये।

गोभिल आचार्य ने २८वें सूत्र में अनुदित होम की भी विधि विकल्प द्वारा दर्शायी है। इसकी व्याख्या ऊपर हो चुकी है। अग्निहोत्र के करने वालों को यह सदा ध्यान में रखना चाहिये कि उपर्युक्त तीन कालों में से अग्निहोत्र के लिये किसी एक काल के चुन लेने में अग्निहोत्र के करनेवाले को पूर्ण स्वाधीनता है। परन्तु एक बार इन तीनों कालों में से किसी एक काल के चुन लेने पर फिर उसे काल के बदलने का अधिकार नहीं रहता। यदि कभी काल का अतिपात हो जाये तो प्रायश्चित्त कर लेने पर वह उस काल के अग्निहोत्र को प्रदर्शित अन्य कालों में भी कर सकता है और आगे से वह पूरा यत्न करे कि उसके चुने हुए काल का कभी अतिपात न होने पाए। तो भी आचार्यों ने उदित काल को अग्निहोत्र के निमित्त अधिक उत्तम माना है। प्रात:काल के अग्निहोत्र के सम्बन्ध में ये तीन विकल्प हैं। सायंकाल के अग्निहोत्र के काल का वर्णन २७वें सूत्र में कर दिया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्निहोत्र के समय आचमन आदि के निमित्त जलसंग्रह की विधि-

पुरा प्रादुष्करणवेलायाः सायं प्रातरनुगुप्ता अप आहरेत् परिचरणीयाः॥१.१.२४॥

अपि वा सायम्॥१.१.२५॥

अपि वा कुम्भाद्वा मणिकाद्वा गृह्णीयात्॥१.१.२६॥

"अग्निहोत्र की अग्नि को प्रकट करने से पूर्व सायंकाल तथा प्रातःकाल दोनों समयों में पृथक्-पृथक् सुरक्षित जल को लाया करे, जिसके द्वारा कि आचमन आदि करने होते हैं॥१.१.२४॥

"अथवा सायंकाल के समय में ही जल लाये और इसी जल द्वारा प्रातःकाल के कृत्यों को भी करे"॥१.१.२५॥

"यदि बाहर से जल इस प्रकार न लाना चाहे तो घर के घड़े से अथवा मटके से जल ले लिया करे॥१.१.२६॥

अग्निहोत्र की विधि

उदगग्नेरुत्सृप्य प्रक्षाल्य पाणी पादौ चोपविश्य त्रिराचमेत् द्विः परिमृजीत्॥१.२.५॥

इन्द्रियाण्यद्भिः संस्पृशेत्॥१.२.७॥

हृदयस्पृशस्त्वेवाप आचामेत्॥१.२.२९॥

(क) 'स्थापित अग्नि के उत्तर में जाकर, हाथों और पैरों को धोकर, बैठकर तीन बार आचमन करे और दो बार मुख धोए॥१.२.५॥

"पश्चात् जल द्वारा इन्द्रिय-स्पर्श करे॥१.२.७॥

"आचमन में इतने इतने जल से आचमन करे कि जल केवल हृदय तक नीचे जा पाए, पेट तक नहीं।"॥१.२.२९॥

अग्निमुपसमाधाय परि१समूह्य दक्षिणजान्वक्तो दक्षिणेवाग्निमदितेऽनुमन्यस्वेत्युदकाञ्जलिं प्रसिञ्चेत्॥१.३.१॥

अनुमतेऽनुमन्यस्वेति पश्चात्॥१.३.२॥

सरस्वत्यनुमन्यस्वेत्युत्तरतः॥१.३.३॥

देव सवितः प्रसुवेति प्रदक्षिणमग्निं पर्य्युक्षेत् सकृद्वात्रिर्वा॥१.१.४॥

पर्य्युक्षणान्तान् व्यतिहरन्नभिपर्य्युक्षन् होमीयम्॥१.१.५॥

(ख) "स्थापित अग्नि को प्रकट करके अर्थात् उसके ऊपर आयी हुई भस्म को हटाकर, होम काल के समीप उसे इन्धन द्वारा सम्यक् प्रदीप्त करे, पश्चात् अग्नि के चारों ओर पड़ी मिट्टी आदि को एकत्र कर, दाहिने घुटने को पृथिवी पर टेक कर, अग्नि की दक्षिण दिशा में "अदितेऽनुमन्यस्व" इस मन्त्र को पढ़कर (अञ्जलि का अग्रभाग पूर्व की ओर कर) जलाञ्जलिं से सींचे॥१.३.१॥

"अनुमतेऽनुमन्यस्व' इस मन्त्र को पढ़कर पश्चिम में जलाञ्जलि से सींचे, (इस अवस्था में अञ्जलि का अग्रभाग उत्तर की ओर हो)"॥१.३.२॥

"सरस्वत्यनुमन्यस्व" इस मन्त्र को पढ़कर उत्तर की ओर जल सींचे, (इसमें अञ्जलि का अग्रभाग पूर्व की ओर होना चाहिये)।"१.३.३॥

"देव सवितः प्रसुव....." इत्यादि मन्त्र पढ़कर अग्नि के चारों ओर, प्रदक्षिणा के रूप में, जलाञ्जलि की धारा द्वारा जल सींचे, एक बार इस प्रकार जल सींचे या तीन बार सींचे।"१.३.४॥ तीन बार सींचने के पक्ष में साथ साथ इस मन्त्र का भी तीन बार उच्चारण करें।

"चारों ओर जल सींचते समय जलाञ्जलि धारा के आरम्भ तथा अन्त को क्रमशः अन्दर और बाहर रखे, अथवा दोनों को परस्पर मिला दे, या अधिकाधिक दूर दूर करता चला जाये। अग्निहोत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आहुति के निमित्त जो वस्तु लाई गयी हो, उसे भी उदक धारा से घेरे अथवा उसे जल से स्पर्श करे॥ '१.३.५॥

(ग) **अथ हविष्यस्यान्नस्याग्नौ जुहुयात् कृतस्य वा ऽकृतस्य वा॥१.३.६॥**

अकृतं चेत् प्रक्षाल्य जुहुयात् प्रोदकं कृत्वा॥१.३.७॥

अथ यदि दधिपयोयवागूं वा, कंसेन वा चरुस्थाल्या वा स्रुवेणैव वा॥१.३.८॥

अग्नये स्वाहेति पूर्वां, तूष्णीमेवोत्तरां, मध्ये चैवापराजितायाञ्चैव दिशीति सायम्॥१.३.९॥

अथ प्रातः, सूर्याय स्वाहेति पूर्वां, तूष्णीमेवोत्तरां, मध्ये चैवापराजितायाञ्चैव दिशि॥१.३.१०॥

समिधमाधायानुपर्य्युक्ष्य तथैवोदकाञ्जलीन् प्रसिञ्चेदन्वमंस्था इति मन्त्र विशेषः॥१.३.११॥

प्रदक्षिणमग्निं परिक्रम्यापां शेषं निनीय पूरयित्वा चमसं प्रतिष्ठाप्य यथार्थम्॥१.३.१२॥

''इसके पश्चात् (समिधा डालकर) हवि के योग्य किसी अन्न का अग्नि में होम करे, चाहे यह अन्न कृत अर्थात् सिद्ध किया हुआ हो, चाहे अकृत अर्थात् सिद्ध किया हुआ न हो।

हवि के योग्य अन्नों में जौं मुख्य माने जाते हैं और उससे कुछ घटिया, धान माने जाते हैं। ये जौं या धान गन्दे या कीट आदि से दूषित न होने चाहियें। आहुति जब द्रव वस्तु की देनी हो तो स्रुव द्वारा देनी चाहिये। और यदि कठिन वस्तु की आहुतिं देनी हो तो हाथ द्वारा देनी चाहिये। अग्नि को और अधिक प्रदीप्त करने की यदि आवश्यकता जान पड़े तो पंखे आदि द्वारा उसे प्रदीप्त कर लेना चाहिये। कइयों में यह भी लिखा है कि मुख की फूंक द्वारा भी इस अग्नि को प्रदीप्त कर लेना अनुचित नहीं। कृत या सिद्ध अन्न से अभिप्राय भात या सत्तू आदि का है। और अकृत या न सिद्ध किये हुए अन्न से अभिप्राय धान आदि का है, जिसके ऊपर कि छिलका अभी साथ रहता है। धान पर से जब तुष अर्थात् छिलका उतार दिया जाये तब जो चावल निकलते हैं-जिन्हें कि अग्नि पर चढ़ाकर भात के रूप में बदला नहीं-वे कृताकृत हैं अर्थात् एक दृष्टि से (धान की दृष्टि से) वे कृत अर्थात् सिद्ध हैं, और दूसरी दृष्टि से (भात की दृष्टि से) वे अकृत हैं, अभी सिद्ध नहीं हैं। इस प्रकार हव्य पदार्थ तीन प्रकार के हुए। कृत, अकृत तथा कृताकृत।

''हवि यदि अकृत हो अर्थात् धान आदि के रूप में हो तो उसे धोकर और पुनः सुखाकर उसकी आहुति देनी चाहिये।''१.३.७॥

अर्थात् एक समय बहुत सा धान धोकर उसे सुखा लेना चाहिये, पश्चात् दैनिक अग्निहोत्र इस धान की आहुति द्वारा करते रहना चाहिये।

''और यदि दही, दूध या जौं की लस्सी की आहुति दे तो कांसी के बर्तन द्वारा, चरुस्थाली द्वारा या स्रुव द्वारा दिया करे॥'' १.३.८॥

धान और जौं के न होने पर दही द्वारा भी आहुति दी जा सकती है और दूध द्वारा भी। दही और दूध के भी न होने पर जौं की लस्सी द्वारा आहुति देनी चाहिये।

''अग्नये स्वाहा''-इस मन्त्र को पढ़कर प्रथम आहुति दे। ''प्रजापतये स्वाहा'-इस मन्त्र को मन से बोल कर द्वितीय आहुति दे। प्रथम आहुति अग्नि के मध्य में, तथा द्वितीय अग्नि की पूर्वोत्तर दिशा में देनी चाहिये। यह सायंकाल की आहुतियां हैं। १.३.९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''अब प्रात:काल की आहुतियाँ कही जाती हैं। ''सूर्याय स्वाहा''-इस मन्त्र को पढ़कर प्रथम आहुति दे, ''प्रजापतये स्वाहा''-इस मन्त्र को मन में बोल कर द्वितीय आहुति दे। प्रथम आहुति अग्नि के मध्य में, तथा द्वितीय अग्नि की पूर्वोत्तर दिशा में देनी चाहिये।''१.३.१०॥

-पूर्व लिखा जा चुका है कि गोभिल आचार्य के मत में दैनिक अग्निहोत्र सायंकाल के अग्निहोत्र से आरम्भ होता है और अगले दिन के प्रात:काल के अग्निहोत्र में समाप्त होता है। गोभिल आचार्य यह भी मानते हैं कि इस दैनिक अग्निहोत्र की समाप्ति के लिये इन दोनों कालों में आहुति पदार्थ भी एक ही होना चाहिये। अर्थात् उपर्युक्त हवियों में से जिस हवि की आहुतियां सायंकाल की हैं, उसी हवि की आहुतियाँ अगले दिन प्रात:काल भी देनी चाहियें। ऐसा न होना चाहिये कि सायंकाल की आहुति एक हवि से हो और अगले दिन प्रात:काल की आहुति दूसरी हवि से। अग्निहोत्री को उतनी अवश्य स्वतन्त्रता है कि वह चाहे तो एक दिन के अग्निहोत्र को एक प्रकार की हवि द्वारा समाप्त करले और दूसरे दिन के दैनिक अग्निहोत्र को दूसरे प्रकार की हवि द्वारा समाप्त कर ले।

''अब पुन: समिधाओं का आधान करे (बिना मन्त्र बोले), तत्पश्चात् 'देव सवित: प्रसुव०'- इत्यादि मन्त्र पढ़कर पूर्वोक्त विधि से अग्नि के चारों ओर उदक सींचे और अन्त में 'अदितेऽन्वमंस्था:'-इस मन्त्र को पढ़कर (अग्नि के पश्चिम भाग में) जलाञ्जलि दे, और 'सरस्वत्यन्वमंस्था:'-इस मन्त्र को पढ़कर (अग्नि के उत्तर भाग में) जलाञ्जलि दे।'' १.३.१२॥

यहाँ गोभिल गृह्यसूत्र के टीकाकार ने यह लिखा है कि ''अगले उचित कार्य'' से अभिप्राय है वामदेव्य साम के गान आदि का अथवा प्रात:काल के अग्निहोत्र के पश्चात् ब्रह्मयज्ञ के करने का।

अग्निहोत्र स्वयं करे या अन्यों से भी करा लिया करे

एवमत ऊर्ध्वं गृह्येऽग्नौ जुहुयाद्वा हावयेद्वाऽऽजीवितावभृथात्। १.३.१३॥

अथाप्युदारहन्ति॥ १.३.१४॥

कामं गृह्येऽग्नौ पत्नी जुहुयात् सायं प्रातर्होमौ, गृहा: पत्नी, गृह्य एषो ऽग्नि भवतीति॥ १.३.१५॥

''इसके आगे अर्थात् एक दिन सायंकाल के तथा प्रात:काल के अग्निहोत्र के आगे, पूर्वोक्त विधि के अनुसार इस स्थापित गृह्य अग्नि में या तो गृहपति स्वयं यज्ञ किया करे अथवा किसी द्वारा अग्निहोत्र कर दिया करे, जीवनावधिपर्यन्त यह अग्निहोत्र होता रहे॥ १.३.१४॥

''दूसरे से अग्निहोत्र करा लेने के सम्बन्ध में ब्राह्मण में लिखा भी है।'' १.३.१४॥ यथा:-

''चाहे गृह्य अग्नि में पत्नी अग्निहोत्र कर दिया करे, सायंकाल का अग्निहोत्र भी और प्रात:काल का अग्निहोत्र भी। क्योंकि गृह का अर्थ पत्नी है अत: गृह्य-अग्नि का अर्थ है ''पत्नी सम्बन्धी अग्नि।'' १.३.१५॥

इस मन्त्र की टीका में पण्डित चन्द्रकान्त तर्कालंकार भट्टाचार्य ने व्यर्थ का शब्दजाल बिछाया है। सूत्रकार तो विचारों में उदार प्रतीत होता है। वह सूत्र १.३.१५ में स्पष्ट शब्दों में अग्निहोत्र का अधिकार पत्नी को दे रहा है। यह बात पौराणिक पण्डितों से कैसे सही जाये। बस, टीकाकार ने इधर-उधर के प्रमाण इकट्ठे कर इस सूत्र के स्वच्छन्द और स्वतन्त्र भाव को छिपाना चाहा है, उस पर परदा डाल देना चाहा है। टीकाकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखता है कि **''यावता होमनिष्पत्तिर्भवति, तावन्मात्रं पत्नीमध्यापयेत्।''** अर्थात् ''पत्नी को उतना ही पढ़ा देना चाहिये जिससे कि वह अपने अग्निहोत्र के कर सकने के योग्य बन सके।''

सूत्रकाल ने तो पत्नी के पढ़ाने या न पढ़ाने के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा। परन्तु, चूंकि पत्नी के अनपढ़ होने के कारण पत्नी अग्निहोत्र कर ही नहीं सकती, इसीलिये टीकाकार को भय लगा की कि पत्नी कहीं अधिक न पढ़ा दी जाये, उसने अपनी टीका में पत्नी की पढ़ाई का बन्धन लगा देना आवश्यक समझा।

सूत्रकार का हृदय पत्नी के पढ़ने के सम्बन्ध में संकुचित प्रतीत होता। बलिवैश्वदेवयज्ञ के सम्बन्ध में सूत्रकार निम्नलिखित सूत्र लिखता है। यथा:-

स्वयं त्वेवैतान् यावद्वसेद् बलीन् हरेत्॥१.४.१५॥

अपि वाऽन्यो ब्राह्मणः॥१.४.१६॥

दम्पती एव॥१.४.१७॥

स्त्री ह सायं प्रातः पुमानिति॥१.४.१९॥

अर्थात् ''पति स्वयं बलिवैश्वदेव यज्ञ करे''॥१.४.१५॥

''या अन्य कोई ब्राह्मण यह यज्ञ कार्य कर देवे''॥१.४.१६॥

''वास्तव में दम्पती अर्थात् पति और पत्नी ही बलिवैश्वदेव यज्ञ किया करें॥ ''१.४.१७॥

''स्त्री सायंकाल और पुरुष प्रात:काल बलिवैश्वदेवयज्ञ किया करें॥१.४.१९॥

इस प्रकार इस प्रकरण के सम्बन्ध में भी सूत्र १.४.१६ केवल खण्डन के लिये ही सूत्रकार ने लिखा प्रतीत होता है। इसी कल्पना के अनुसार अगले दो सूत्र १.४.१७ एवं १.४.१९ चरितार्थ हो सकते हैं।

सूत्र १.४.१९ पर टीकाकार एक और टिप्पणी चढ़ाते हैं। आप लिखते हैं कि **''अमन्त्रम्, तूष्णीम् इत्यर्थः''**। अर्थात् पत्नी जब बलिवैश्वदेवयज्ञ करे तो मन्त्रों का वह उच्चारण न करे, वह चुपचाप इस यज्ञ को करे।

टीकाकार से पूछना चाहिये कि सूत्रकार ने तो सूत्र में ''अमन्त्रम्'' पद पढ़ा नहीं, तो तुम्हें क्या अधिकार है कि इस प्रकार की टिप्पणी सूत्रकार के सूत्र पर चढ़ा दो। क्या सूत्रकार लिखना चाहता तो सूत्र में ''अमन्त्रम्'' पद न लिख सकता था। वास्तव में यह लेख भी टीकाकार के हृदय की अनुदारता का ही द्योतक है।

वैसे तो उचित है कि पति और पत्नी दोनों मिलकर अग्निहोत्र किया करें, ऐसा अभिप्राय सूत्रकार का प्रतीत होता है। क्योंकि सूत्र १.३.१५ में सूत्रकार कहता है कि गृहस्थी का अग्निहोत्र जिस अग्नि में होता है उसका 'गृह्य अग्नि' यह नाम ही पत्नी के सम्बन्ध से पड़ा है। इस अवस्था में अग्निहोत्र में मुख्य अधिकार पत्नी का ही प्रतीत होता है। हां, यदि पत्नी भी विशेष कार्य वश अग्निहोत्र न कर सके तो ऐसी अवस्था में अन्य किसी से-अर्थात् ऋत्विक् आदि से-भी अग्निहोत्र करा लेना होता है। अग्निहोत्र पहले तो पति और पत्नी को स्वयं ही करना चाहिये, इसके निमित्त ऋत्विक् की कोई आवश्यकता नहीं। परन्तु यदि पति और पत्नी अग्निहोत्र करने में असमर्थ हों तब भले ही ऋत्विक् द्वारा अग्निहोत्र कराया जा सकता है। ऐसी अवस्था में चार ऋत्विजों की आवश्यकता नहीं अपितु एक ही ऋत्विज् चाहिये। कई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टीकाकारों की सम्मति है कि एक ऋत्विक् ''होता'' होना चाहिये। कई टीकाकार यह भी लिखते हैं कि पति या पत्नी यदि स्वयं पृथक्-पृथक् भी अग्निहोत्र के करने में असमर्थ हों तो भी ऋत्विक् द्वारा, अग्निहोत्र के काल में किसी एक को अग्नि के समीप उपस्थित रहना आवश्यक है, चाहे वह लेटा रहे या किसी भी सुखस्थिति में बैठा रहे। पति या पत्नी में से किसी की समक्षता में ही अग्निहोत्र हो, यह आवश्यक है।

कई टीकाकार यह भी लिखते हैं कि पति या पत्नी की असमर्थता में पुत्र, कुमारी, अथवा शिष्य भी उनके अग्निहोत्र को कर सकते हैं।

पाद-टिप्पणी-

१ समिधा अंगूठे से अधिक स्थूल न होनी चाहिये, न वह त्वचा से रहित होनी चाहिये, न कीटदूषित होनी चाहियें, न फाड़ी हुई होनी चाहियें, न पत्तों सहित होनी चाहियें और न सारहीन होनी चाहिये। वह प्रादेश मात्र लम्बी होनी चाहिये। अंगूठे और उसके पास की अंगुली को यदि एक-दूसरे से परे जहाँ तक हो सके फैलाया जाये तो इतने परिमाण को प्रादेश कहेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotiḥ Vol.1, No.2 (123-130) Jan-jun 2013
ISSN 2277-4351

भार्गव-वारुणी विद्या का जीवन में महत्त्व

(दिनेश आर०माछी, संस्कृतविभागाध्यक्ष, सरकारी विनयन कालेज शहेरा, जिला, पंचमहल, गुजरात)

कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयारण्यक के नवम प्रपाठक में एवं तैत्तिरीयोपनिषद् की भृगुवल्ली में अनुवाक १ से ६ तक भार्गवी वारुणी विद्या का निरूपण किया गया है। इस विद्या का सम्प्रदायप्रवर्त्तक वरुण है, इसलिये यह **वारुणी विद्या** कहलाती है। शंकराचार्य तैत्तिरीयोपनिषद् के शाङ्करभाष्य में कहते हैं-**सैषा भार्गव भृगुणा विदिता वरुणेन प्रोक्ता वारुणी विद्या**[१] अर्थात् यह भार्गवी-भृगु की जानी हुई और वारुणी-वरुण की कही हुई विद्या है। तैत्तिरीयारण्यक में सायणाचार्य भी कहते हैं- **भृगुणा लब्धा भार्गवी। वरुणेन प्रोक्ता वारुणी।**[२] भारतीय संस्कृति में वारुणि शब्द पैतृकवंश ही होगा ऐसा मानना आवश्यक नहीं है वह विद्यावंश भी हो सकता है, ऐसा प०पू०पाण्डुरङ्ग शास्त्री कहते हैं। यहाँ वारुणि शब्द विद्यावंश के सन्दर्भ में भी हो सकता है, जिस तरह जन्मवंश है, इस तरह विद्यावंश भी हो सकता है। यहाँ परम्परा से विद्या मिलती है, वह विद्यावंश कहलाता है।[३] पं० भगवद्दत्त ने भी भृगु को इतिहास पुराण की विद्या की परम्परा को चलाने वाला कहा है।[४] शंकराचार्य भी कहते हैं-**आख्यायिका विद्या स्तुतये**[५] अर्थात् यह आख्यायिका विद्या की स्तुति के लिये है।

आत्मतत्त्व का जिज्ञासु भृगु अपने पिता वरुण के पास जाता है और उससे प्रश्न करता है कि - **अधीहि भगवो ब्रह्मेति।** हे भगवन्! आप मुझे ब्रह्म का उपदेश कीजिये। पिता वरुण ने अपने पास विधिपूर्वक आये हुए उस पुत्र से यह वाक्य कहा- **अन्नं प्राणं चक्षुः श्रोत्रं मनो वाचमिति।**[६] अर्थात् अन्न, प्राण, नेत्र, श्रोत्र, मन और वाक् ये ब्रह्म की उपलब्धि के द्वार हैं। इस प्रकार इन द्वारभूत अन्नादिको बतलाकर उसने उस भृगु को ब्रह्म का लक्षण बतलाया। वह क्या है? सो बतलाते हैं-**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व। तद्ब्रह्मेति।**[७] तात्पर्य यह है कि उत्पत्ति, स्थिति और लयकाल में प्राणी जिसकी तद्रूपताका त्याग नहीं करते यही उस ब्रह्म का लक्षण है। तू उस ब्रह्म को विशेषरूप से जानने की इच्छा कर, अर्थात् जो ऐसे लक्षणों वाला ब्रह्म है, उसे अन्नादि के द्वारा प्राप्त कर।

पं०पू०पाण्डुरंग शास्त्रीजी इस श्रुति में एक दूसरा आश्वासन भी बताते हैं, प्राणीमात्र की उत्पत्ति भगवान् से हुई है, मेरी उत्पत्ति भी भगवान् से हुई है। जीव और शिव दोनों साथ में बैठे थे, शिव उपवास करके वहीं बैठे रहे और जीव स्वादु अत्ति करने के लिये इस शरीर में आया। इसलिये उपनिषद्कार कहते हैं-पुत्र डर नहीं, जिससे यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टि-निर्माण हुई, मनुष्य निर्माण हुआ, तूं निर्माण हुआ, उसको ब्रह्म समझ। उसका ही आधार लेकर जिन्दगी जीना चाहिये-येन जातानि जीवन्ति। वह सबको जीवित रखता है। सम्भालता है, इसलिये उस पर विश्वास रखो। इस तरह **यतो वा इमानि भूतानि..** इस मन्त्र में यह रहस्य छुपा है। श्रुति जीवात्मा को सान्त्वना देती है।[८]

उस भृगु ने अपने पिता से ब्रह्म की उपलब्धि के द्वार और ब्रह्म का लक्षण सुनकर ब्रह्मसाक्षात्कार के साधनरूप से तप किया। इस आख्यायिका में तप का बहुत महत्त्व है। वरुण पुत्र भृगु को बार-बार तप करने के लिये कहता है। इसलिये यहाँ तप का अर्थ क्या है, वो भी जानना आवश्यक है। शंकराचार्य कहते हैं कि जिनके साध्य विषय नियत हैं, उन साधनों में तप ही सबसे अधिक सिद्धि प्राप्त करानेवाला साधन है-यह बात लोक में प्रसिद्ध ही है। इसलिए पिता के उपदेश न देने पर भी भृगु ने ब्रह्मविज्ञान के साधनरूप से तप को स्वीकार किया। वह तप बाह्य इन्द्रिय और अन्तःकरण का समाहित करना ही है, क्योंकि ब्रह्मप्राप्ति उसी के द्वारा होनेवाली है। यहाँ शंकराचार्य ने महाभारत का भी उदाहरण दिया है-**मनसश्चेन्द्रियाणां च ह्यैकाग्र्यं परमं तपः।**[९] अर्थात् मन और इन्द्रियों की एकाग्रता ही परम तप है।

यहाँ तप का जो बार-बार उपदेश दिया गया है, वह उसका प्रधान साधनत्य प्रदर्शित करने के लिये है। अर्थात् जब तक ब्रह्म का लक्षण निरतिशय न हो जाये और जब तक तेरी जिज्ञासा शान्त न हो जाये तब तक तप ही तेरे लिये साधन है। तात्पर्य यह है कि तू तप से ही ब्रह्म को जानने की इच्छा कर। उस भृगु ने तप करके **अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्। अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। अन्नेन जातानि जीवन्ति। अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति।**[१०] अर्थात् अन्न ब्रह्म है ऐसा जाना। क्योंकि निश्चित अन्न से ही ये सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होने पर अन्न से ही जीवित रहते हैं तथा प्रयाण करते समय अन्न में ही विलीन हो जाते हैं।

अन्नब्रह्म की उपासना से जीवन शुद्ध होता है। **अन्नाद्वै प्रजा प्रजायन्ते। याः काश्च पृथिवीम् आश्रिताः। अथो अन्नेनैव जीवन्ति।**[११] अर्थात् अन्न से ही प्रजा उत्पन्न होती है। जो कुछ प्रजा पृथिवी को आश्रित करके स्थित है, वह सब अन्न से ही उत्पन्न होती है, फिर वह अन्न से ही जीवित रहती है और अन्त में उसी में लीन हो जाती है, क्योंकि अन्न ही प्राणियों का ज्येष्ठ (पहले उत्पन्न होनेवाला) है। इसी से वह सर्वौषध कहा जाता है। जो लोग अन्न ही ब्रह्म है, इस प्रकार उपासना करते हैं, वे निश्चय ही सम्पूर्ण अन्न प्राप्त करते हैं। अन्न ही प्राणियों में बड़ा है, इसलिये वह सर्वौषध कहलाता है। जिस देश के पास अन्न सामग्री है, वह देश अन्न के बारे में स्वावलम्बी है। यदि शस्त्रसामग्री, यन्त्रसामग्री और औद्योगिक सामग्री कम होगी तो चलेगा लेकिन अन्नसामग्री ज्यादा नहीं चाहिये। क्योंकि अन्न मनुष्य की मुख्य आवश्यक चीज है। राष्ट्र की दृष्टि से भी अन्न को प्रधानता देनी चाहिये। जिस तरह ब्रह्म सबका है, सब के लिये है, इस तरह अन्न भी सब का है, सबके लिये है। हमारे अर्थशास्त्र, राज्यशास्त्र और धर्मशास्त्र ऐसे होने चाहियें कि समाज में सभी को अन्न मिले। गीताकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने जो उदरपरायण लोग केवल अपने लिये ही अन्न पकाते हैं, उनको पापी कहा है- **तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः। भुञ्जते ते त्वंघ पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।**[१२] इसलिये उन देवों द्वारा दिये हुए अन्न को बांटकर भुगतना चाहिये। वही अर्थ में अन्न को ब्रह्म समझकर उपासना करने का उपदेश दिया है। यदि "**अन्नं ब्रह्म**" है तो सभी को मिलना चाहिये, यह प्रथम बात है, परोपकार ये दूसरी बात है और लोक सेवा ये तीसरी बात है।

भृगु ने इस तरह अन्न को ब्रह्म समझकर अभ्यास किया। वह भावनामय जीवन जीने लगा। वह फिर से पिता के पास गया। आचार्य सायण कहते हैं- **पुनरपि मन्त्रपुरःसरं गुरुमुपससारैव न त्वालस्यं कृतवान्।**[१३] पिता के पास जाकर बोला- "**अधीहि भृगवो ब्रह्मेति**" हे भगवन्! मुझे ब्रह्म का उपदेश कीजिये। पिता ने फिर से तप करने के लिये कहा और तप से ब्रह्म को जानने के लिये कहा। पिता ने ऐसा कहा तो भृगु सोचने लगा। भृगु ने विचार किय कि "**अन्नं ब्रह्म**" ये बात सही है, किन्तु प्राण नहीं होगा तो अन्न का क्या मतलब? मनुष्य में प्राण ही नहीं होगा तो अन्न का कोई मतलब नहीं है। अन्न से भी ज्यादा महत्त्ववाला दूसरा कोई होगा और वह प्राण है, जिसके ऊपर अन्न अवलम्बित है, इसलिये भृगु ने सोचा की प्राण को ब्रह्म समझकर उपासना करनी चाहिये। शरीर में प्राण ही मुख्य तत्त्व है। प्राण से ही जीवन है। भूतमात्र प्राण से ही उत्पन्न होते हैं। **प्राणेन जातानि जीवन्ति**। उत्पन्न होने पर प्राण से ही प्राणी जीवित रहते हैं और **प्राणं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।**[१४] - मरणोन्मुख होने पर प्राण में ही लीन हो जाते हैं। सायणाचार्य कहते हैं- **प्राणाभावे तु देहं नोत्यादयतीत्यर्थः। यथोत्पत्तिहेतुत्वं तथा जीवनहेतुत्वमपि कौषीतकिभिराम्नायते- 'यावदस्मिञ्शरीरे प्राणो वसति तावदायुः' इति। प्राणोत्क्रान्तौ देहस्य मरणं प्रसिद्धम्।**[१५]

भृगु ऋषि ने प्राण को ब्रह्म समझकर उसकी उपासना की। प्राणब्रह्म की उपासना से प्राण तेजस्वी बनता है। प्राण सबको प्रिय है।- "**आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति।**"[१६] प्राण को ब्रह्म समझना अर्थात् जीवन में चैतन्य लाना, तेजस्विता लाना, आत्मीयता लाना, सरलता, भावमयता लाना। जिस तरह मुझमें प्राण है, इस तरह दूसरे में भी प्राण है। मुझे मेरे प्राण ऊपर प्रेम है, इस तरह दूसरों के भी प्राण ऊपर प्रेम होना चाहिये। याज्ञवल्क्य, वसिष्ठ, पतंजलि, शंकराचार्य, तुकाराम, स्वामी विवेकानन्द, गाँधीजी, पाण्डुरंग शास्त्री जी आदि के जीवन तेजस्वी थे, उन्हें सबके ऊपर निःस्वार्थ भाव से प्रेम किया यही प्राणोपासना कही जाती है। जिसने जीवन में से सभी पातक निकाल दिये, जिसने जीवन को क्षुद्र नहीं रखा और जीने का हेतु भी क्षुद्र नहीं है, ऐसे श्रद्धावान्, ध्येयनिष्ठ और तेजस्वी मनुष्य प्राण ब्रह्म की उपासना के अधिकारी हैं। भृगु ने इस तरह प्राण को ब्रह्म समझकर उपासना की, प्राण को ब्रह्म समझकर वह फिर अपने पिता वरुण के पास आया और बोला भगवन् मुझे ब्रह्म का उपदेश दीजिए। वरुण ने फिर से तप करने के लिये कहा तब उसने तप किया और तप करके "**मनो ब्रह्मेति व्यजानात्**"[१७] मन ब्रह्म है-ऐसा जाना, क्योंकि मन से ही ये मनुष्य उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होने पर मन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा ही जीवित रहते हैं और अन्त में प्रयाण करते हुए मन में ही लीन हो जाते हैं।

मनोब्रह्म की उपासना से मन भव्य बनता है। वेदान्त के सिद्धान्तानुसार सारा जगत् मन ने ही उत्पन्न किया है। ये जगत् दीर्घ स्वप्न है। मन वासना से जगत् निर्माण करता है।[१८] जिन्दगी में जो कुछ आनन्द मिलता है वो मन से ही मिलता है। मन से ही जगत् का निर्माण होता है और अन्त में मन में ही विलीन हो जाता है- "**मनः प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति**"। मन ही ब्रह्म के पास पहुंचता है इसलिये भी मन को ब्रह्म कहा जाता है। बन्धन और मोक्ष का कारण वह मन ही है। **मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः बन्धाय विषयासक्तं मुक्तये निर्विषयं स्मृतमिति॥**[१९] मनो ब्रह्म की उपासना के लिये मन को उदात्त, व्यापक, सुखी, आनन्दी, उत्साही और तेजस्वी बनाना होगा। अगर मन दुःखी और असमाधानी रहे तो मनो ब्रह्म की उपासना नहीं होगी, सायणाचार्य के मतानुसार मन चेतन है-**प्राणस्य जडत्वाद्ब्रह्मत्वमयुक्तम्। "प्रज्ञानं ब्रह्म विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" इत्यादौ ब्रह्मणश्चेतत्वं प्रतीयते। मनश्च ज्ञानशक्तित्वाच्चेतनम्। जन्मादिकारत्वं लक्षणं च मनसि विद्यते।**[२०]

भृगु का जीवन शुद्ध हुआ, प्राण तेजस्वी बना, मन भव्य और दिव्य हुआ, तब वह पिता के पास गया। पिता ने कहा "**तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति।**"-तू तप से ब्रह्म को जानने की इच्छा कर, तप ही ब्रह्म है। तब भृगु ने तप किया और तप करके "**विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्।**"[२१] क्योंकि विज्ञान से ही यह जीव उत्पन्न होते हैं। उत्पन्न होने पर विज्ञान से ही जीवित रहते हैं। और फिर मरणोन्मुख होकर विज्ञान में ही प्रविष्ट हो जाते हैं।

इस मन्त्र के सन्दर्भ में सायणाचार्य अपने भाष्य में कहते हैं-**मनसश्चक्षुरादिवत्करणत्वेन कर्तृपरतन्त्रत्वान्न ब्रह्मत्वं युक्तम्। विज्ञानस्य तु कर्तृत्वं 'विज्ञानं यज्ञं तनुते' इति स्पष्टमेवाऽऽम्नातम्। तल्लक्षण च तत्र सुलभम्। कर्म द्वारा देहोत्पत्तिहेतुत्वात्। 'यत्कर्म कुरुते तदभिसंपद्यते। पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन।" इत्यादिश्रुतेः...तस्माल्लक्षणलक्षितस्य विज्ञानस्य ब्रह्मत्वं युक्तम्।**[२२]

भृगु ने विज्ञान को ब्रह्म समझकर उपासना की। भृगु ने सोचा कि यह सारा संसार ज्ञा है और वह ज्ञान ही ब्रह्म है। सारा जीवन ही ज्ञान है। ज्ञान से ही सब जीते हैं, ज्ञान ही जीवन है। सुबह आँख खुलने से ही ज्ञान का आरम्भ होता है। सारा जगत् ज्ञान के ऊपर ही आश्रित है। अतः ज्ञान को ही ब्रह्म समझो। ज्ञान को विशिष्ट प्रकार का करना वो ही ज्ञान की उपासना है। विशिष्ट प्रकार का ज्ञान मतलब जो ज्ञान जीवन में साकारित हुआ है, वही ब्रह्म है। उसको ही विज्ञान कहा जाता है। ब्रह्म सर्वव्यापक है, ये जो हम समझते हैं, वही ज्ञान है। और उस ज्ञान की मनुष्य अपने जीवन में अनुभूति करे तब उसे विज्ञान कहा जाता है। विज्ञान मतलब विशेष प्रकार का ज्ञान, जीवन में साकारित हुआ ज्ञान। उसको ही ब्रह्म समझो-ऐसा श्रुति कहती है। जीवन में प्राप्त किये ज्ञान को कर्त्तव्य में लाना चाहिये, यथा मनुष्य को '**सत्यं वद**' ऐसा ज्ञान होता है। किन्तु कुछ प्रसंग ऐसा आ जाये कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य सत्य बोल नहीं पाता। '**धर्मं चर**' ऐसा ज्ञान है लेकिन धर्म का आचरण नहीं होता। इसलिये जीवन में साकारित किया ज्ञान कर्त्तव्य में लाना चाहिये।

भृगु ने इस प्रकार विज्ञान ब्रह्म की उपासना की। वह पुन: पिता वरुण के समीप गया और बोला- '**अधीहि भगवो ब्रह्मेति।**'। वरुण ने उससे कहा- **तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति।** तब उसने तप किया और तप करके अन्त में **आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्।**[२३] अर्थात् ब्रह्म आनन्द है ऐसा जाना, क्योंकि आनन्द से ही ये सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होने के बाद आनन्द के द्वारा ही जीवित रहते हैं और प्रयाण करते समय आनन्द में ही समा जाते हैं।

अब श्रुति इस भार्गवी वारुणी विद्या का महत्त्व और फल दिखलाती है-**सैषा भार्गवी वारुणी विद्या परमे व्योमन् प्रतिष्ठिता। स य एवं वेद प्रतितिष्ठति। अन्नवानन्नादो भवति। महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन। महान् कीर्त्या॥**[२४] अर्थात् वह यह भृगु की जानी हुई और वरुण की उपदेश की हुई विद्या परमाकाश में स्थित है। जो ऐसा जानता है वह ब्रह्म में स्थित होता है, वह अन्नवान् और अन्न का भोक्ता होता है; प्रजा, पशु और ब्रह्म तेज के कारण महान् होता है। जो ऐसा जानता है वह ब्रह्म में स्थित होता है, वह अन्नवान् और अन्न का भोक्ता होता है; प्रजा, पशु और ब्रह्मतेज के कारण महान् होता है। ब्रह्म तेज, अर्थात् शम, दम एवं ज्ञानादि के कारण होने वाले तेज से महान् होता है। तथा कीर्ति के कारण भी महान् होता है। कीर्ति अर्थात् शुभाचरण के कारण होनेवाली ख्याति से वह महान् हो जाता है।

इस प्रकार तैत्तिरीयारण्यक के नवम प्रपाठक में अनुवाक १-६ तक एवं तैत्तिरीयोपनिषद् में भृगुवल्ली में प्रथम अनुवाक् से षष्ठ अनुवाक् तक यह भार्गवी वारुणी विद्या का निरूपण किया गया है। षष्ठ अनुवाक् में भार्गवी वारुणी विद्या का महत्त्व और फल दिखाया गया है। यहां शङ्कराचार्य अपने भाष्य में इस विद्या का तात्पर्य दिखलाने के लिये कहते हैं- तप से शुद्धचित्त हुए भृगु ने प्राणादि में पूर्णतया ब्रह्म का लक्षण न देखकर धीरे-धीरे भीतर की ओर प्रवेश कर तपरूप साधन द्वारा ही सबकी अपेक्षा अन्तरतम आनन्द को ब्रह्म जाना। अत: जो ब्रह्म को जानने की इच्छावाला हो उसे साधन रूप से बाह्य इन्द्रिय और अन्त:करण का समाधान रूप परम तप ही करना चाहिये-यह इस प्रकरण का तात्पर्य है। अब आख्यायिका से निवृत्त होकर श्रुति अपने ही वाक्य से आख्यायिका से निष्पन्न होनेवाला अर्थ बतलाती है-अन्नमय आत्मा से प्रारम्भ हुई यह भार्गवी वारुणी विद्या परमाकाश से अर्थात् हृदयाकाशस्थित गुहा के भीतर अद्वैत परमानन्द में प्रतिष्ठित है अर्थात् वही इसका पर्यवसान होता है। इसी प्रकार जो कोई दूसरा पुरुष भी इसी क्रम से तपरूप साधन के द्वारा क्रमश: अनुप्रवेश करके आनन्द को ब्रह्मरूप से जानता है वह इस प्रकार विद्या से स्थिति लाभ करने से आनन्द और परब्रह्म से स्थिति प्राप्त करता है, यानि ब्रह्म ही हो जाता है।

पू०पाण्डुरंग शास्त्री (पू०दादा) अपने तैत्तिरीयोपनिषद् के प्रवचन में प्रस्तुत षष्ठ अनुवाक्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का तात्पर्य इस प्रकार दिखलाते हैं-भृगु ने तप किया और अन्त में **आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्।** आनन्द ही ब्रह्म है, यह निर्णय पर आया। सभी प्राणीमात्र आनन्द से ही उत्पन्न होते हैं यह एक विशेष बात है- **आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।** समग्र विश्व की भेदविवक्षा खड़ी हुई है वह खेलने के लिये है। भगवान् ने यह जगत् निर्माण किया है वो तो सिर्फ लीला ही है-**लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्** समग्र विश्व आनन्दमय है, क्योंकि समग्र विश्व आनन्द से भरा हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति में आनन्द है, किन्तु इधर-उधर के लोग रुलाते हैं, इसलिए लोग रोतें हैं, लेकिन वह अज्ञान है, उसको ही माया कहते हैं। विश्व में भिन्न-भिन्न प्रकार के आनन्द हैं, वैषयिक लोगों का कुछ आनन्द होता है, वो वित्त, कीर्ति एवं स्त्री तक मर्यादित हैं। दूसरा विद्या का आनन्द है, तीसरा ईश्वरभक्ति का आनन्द है, एक स्वयं का भी आनन्द होता है। मनुष्य की सभी दौड़ आनन्द-प्राप्ति के लिये चल रही है। आनन्द ही ब्रह्म है, यह बिल्कुल सत्य बात है। समग्र विश्व एवं समग्र जीवन में आनन्द ही है, इसलिये आनन्द को ब्रह्म समझकर उसकी उपासना करनी चाहिये। **सुखार्थं सर्वभूतानाम्** अर्थात् सुख के लिये ही प्राणीमात्र प्रयत्न कर रहे हैं।

आनन्द स्वाश्रयी होना चाहिये। दूसरा आये या न आये, मैं आनन्दित हूँ। मनुष्य जीवन में **शान्तिरस्तु पुष्टिरस्तु तुष्टिरस्तु-** ये तीन बात आ जाये तो वहाँ आनन्द की परिसमाप्ति है। आनन्द भोगने के बाद उस में से शान्ति मिलनी चाहिये, जीवन पुष्ट होना चाहिये और समाधान मिलना चाहिये। आनन्द उसको कहा जाता है, जिसमें शक्ति पुनर्सर्जित होती है। स्त्री, वित्त एवं कीर्ति के आनन्द में शक्तिक्षीणता, पराश्रय आदि दोष आते हैं; उसमें शान्ति, पुष्टि और तुष्टि नहीं होती।

इस तरह पू०दादाजी के मतानुसार आनन्द स्वाश्रयी होना चाहिये। अब पू०पाण्डुरंग शास्त्रीजी यह भार्गवी वारुणी विद्या का ब्रह्मज्ञान किसको प्राप्त नहीं होता, उसका निरूपण करते हैं। भगवद्द्रोह करनेवाला, सच्चे ब्राह्मण का द्वेष करने वाला, भगवान् का हिस्सा हो उसके ऊपर स्वयं का हक्क करने वाला, संस्कृति का द्रोह करनेवाला, वेदों का विद्वेष करनेवाला, दुर्वृत्त व्यक्ति का पोषण करनेवाला, परस्त्री की ओर विकार की दृष्टि से देखनेवाला और गुरु का अनिष्ट करनेवाला यह विद्या प्राप्त नहीं कर सकता अर्थात् उपर्युक्त लोग ब्रह्मज्ञान के अधिकारी नहीं हैं।[२५]

भृगु ऋषि ने अपने जीवन में से सारे दुर्गुण और दोष निकाल दिया और अपना जीवन निर्दोष कर दिया। इसलिये उसको ज्ञान हुआ। ज्ञान ये कोई प्राप्त करने की चीज नहीं है, जीवन में से अज्ञान निकालना है। ज्ञान तो जगत् में है, और ज्ञान ही ब्रह्म है। ब्रह्म सर्वत्र है अतः ज्ञान को किस तरह ले जाया जायेगा? अज्ञान की निवृत्ति हो जाये तो ज्ञान आ जाता है। इसलिये जीवन में से अज्ञान निकालना होगा। श्रुति हमें धीरे-धीरे ऊपर की ओर ले जाती है। अन्नब्रह्म की उपासना से जीवनशुद्ध होता है, प्राणब्रह्म की उपासना से प्राण तेजस्वी बनता है, मनोब्रह्म की उपासना से मन भव्य और दिव्य बनता है और विज्ञानब्रह्म की उपासना से जीवनज्ञान आत्मस्पर्शी होता है। यहाँ भृगु ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिलकुल जल्दी नहीं की है, उन्होंने बहुत धीरज, रखी है। भृगु ने कितने साल तप किया होगा? अनेक वर्ष चले गये होंगे फिर भी इस अभ्यास के साथ जुड़े रहें **स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेविता दृढ़भूमिः।**[२६]

यहाँ भृगु ने प्रथम अन्न को ब्रह्म समझकर उपासना की, बाद में प्राण, मन और विज्ञान को ब्रह्म समझकर उपासना की है। इसका मतलब ये नहीं होता की आगे की उपासना निरर्थक हुई। ये सब ब्रह्म को जानने के लिए सीढ़ियां हैं। ये सब बार-बार तप से मजबूत होते हैं। पिता को गुरु समझकर उसके पास जाना चाहिये, क्योंकि पिता प्रथम गुरु है।[२७] जीवन का ध्येय और दृष्टिकोण पिता देता है। इस दृष्टि से भृगु को जिज्ञासा हुई और स्वयं पिता के पास जाता है। पिता वरुण पुत्र का कल्याण करना चाहता था इसलिये जानते हुए भी उन्होंने भृगु को त्वरित ब्रह्म का उपदेश नहीं किया, भृगु स्वयं अपने पुत्र थे, फिर भी पिता ने ब्रह्मविद्या नहीं दी, क्योंकि अध्यात्म में बिलकुल लागवग नहीं चलती। पिता ने कहा इसलिये भृगु ने बार-बार तप चालू रखा, कठोर तपश्चर्या की। आचार्य सायण भी कहते हैं-**एकाग्रचित्तस्योत्तमाधिकारिणः सेयं विद्या सुलभा।**[२८] ज्ञान को रटन की आवश्यकता नहीं है। ज्ञान परब्रह्म है, ज्ञान का वर्णन नहीं कर सकते; जिस तरह ब्रह्म अनिर्वचनीय है, इस तरह ज्ञान भी अनिर्वचनीय है।

भार्गवी-वारुणी विद्या में जीवनदर्शन है। जिसने यह विद्या जीवन में प्रतिष्ठित की है, उसके पास तेज, शक्ति और जीवन का वैभव है। यह विद्या जीवन में पचाने से इहलोक और परलोक में महान् कीर्ति मिलती है। तेजस्वी जीवन जीने की आसक्ति निर्माण होती है। जीवन दैवी बनता है, मनुष्य को प्रगति करने की मनीषा निर्माण होती है, इस विद्या से मनुष्य महान् बनता है। यहाँ श्रुति का भी कथन है-**प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन महान् कीर्त्या।**[२९] इस विद्या का श्रवण, चिन्तन और मनन से जीवन अलौकिक बनता है। यह राजविद्या है, क्योंकि यह जीव को राजा बनाती है। जगत् में मैं राजा हूँ, मैं किसी का गुलाम नहीं हूँ, इस प्रकार का गौरव जीवात्मा महूसस करता है। इस प्रकार भार्गवी वारुणी विद्या का मनुष्य जीवन में बहुत महत्त्व है।

पाद-टिप्पणियां-

१ तैत्तिरीयोपनिषद्, शां०भा०३.६.१॥

२ तैत्तिरीयारण्यकम्, सा०भा०९.६॥

३ तत्त्वज्ञान-गुजराती, वर्ष-४६, पुष्प ७, पृ०५,६, जून २००८॥

४ वैदिक वाङ्मय का इतिहास (प्रथम भाग) पृ०१०७॥

५ तैत्तिरीयोपनिषद् ३.१.१॥

६ तदेव।

७ तदेव।

८ तत्त्वज्ञान, गुजराती, वर्ष-४६, पुष्प-७, पृष्ठ ८-९, जून २००८॥

९ तैत्तिरीयोपनिषद् शां०भा०३.२.१॥

१० तैत्तिरीयोपनिषद् ३.२.१॥

११ तैत्तिरीयोपनिषद् २.२.१॥

१२ श्रीमद्भगवद्गीता ३.१२,१३॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१३ तैत्तिरीयारण्यकम् सा०भा०९.३॥

१४ तैत्तिरीयोपनिषद् ३.३.१॥

१५ तैत्तिरीयारण्यकम्, सा०भा०९.३॥

१६ बृहदारण्यकोपनिषद्, २.४.५, गीताप्रेस गोरखपुर, उ०प्र०, सं०२०५२॥

१७ तैत्तिरीयोपनिषद् ३.४.१॥

१८ चित्तमेव हि संसारस्तत्प्रयत्नेन शोधयेत्। मैत्रायण्युपनिषद्, ४.३, १०८, उपनिषद्-ज्ञानखण्ड, ब्रह्मवर्चस्, शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार, पृ०४०६, सं०२००४॥

१९ मैत्रायण्युपनिषद् ४.३, तदेव, पृ०४०७॥

२० तैत्तिरीयारण्यकम्, सा०भा०९.४॥

२१ तैत्तिरीयोपनिषद् ३.५.१॥

२२ तैत्तिरीयारण्यकम्, सा०भा०९.५॥

२३ तैत्तिरीयोपनिषद् ३.६.१॥

२४ तदेव ३.६.१॥

२५ तत्त्वज्ञान, गुजराती, वर्ष-४६, पुष्प १२, पृ०३ थी १७, नवेम्बर-२००८॥

२६ तदेव, पुष्प-११, पृ०३ थ्री १६, ओकटोबर-२००८।

२७ तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् इति। तैत्तिरीयारण्यकम्, सा०भा०९.१॥

२८ तदेव, ९.६।

२९ तैत्तिरीयोपनिषद् ३.६.१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotiḥ
ISSN 2277-4351
Vol.1, No.2 (131-135) Jan-jun 2013

वेद और स्वामी दयानन्द

(भारतेन्दु द्विवेदी, एसो० प्रो०एवं विभागाध्यक्ष-सं०वि०, का०न०रा०स्ना०महाविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोही)

स्वामी दयानन्द युगद्रष्टा थे। स्वामी दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना के साथ आर्यसमाज के दस नियम बनाये। इन नियमों में स्वामी जी ने सत्य और वेद के महत्त्व को समझकर तीसरा नियम बनाया था-''वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।'' स्वामी जी ने वेद को सर्वोपरि स्थान दिया है और यह निर्देश दिया था कि वेदाध्ययन और वेद का प्रचार सब आर्यों के लिये अनिवार्य है। वेद को सब सत्य विद्याओं की पुस्तक के रूप में स्वीकार किया था। वेदों को गड़ेरियों का गीत कहने वाले पाश्चात्य विद्वानों ने भी वेदों के महत्त्व को अन्ततः स्वीकार किया है। ऋग्वेद की गणना विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ के रूप में स्वीकार की गयी है। पाश्चात्य देशों में वेदों के महत्त्व को स्वीकार कर उच्च शोधकार्य हो रहे हैं।

ऋग्वेद ज्ञानवेद है, यजुर्वेद यज्ञवेद है, सामवेद उपासना वेद है और अथर्ववेद विज्ञानवेद है। ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान वेद चतुष्टय के साधन हैं। ज्ञान, कर्म और उपासना का लक्ष्य विज्ञान है। वेदवित् वही है जिसने ज्ञान, कर्म और उपासना द्वारा विज्ञान की प्राप्ति की है। ऋक् से ज्ञान प्राप्त करते हुए, यजुः से कर्म-साधना और साम से उपासना करनी चाहिये। ज्ञान, कर्म और उपासना से विज्ञान लोक में प्रवेश होता है। इस प्रकार चारों वेदों का अध्ययन, मनन और चिन्तन एक आवश्यक धर्म है।

१. वेद ईश्वरीय ज्ञान है

स्वामी दयानन्द वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानते थे। उन्होंने **'आर्योद्देश्यरत्नमाला'** में लिखा है-जो ईश्वरोक्त सत्य विद्याओं से युक्त ऋक् संहितादि चार पुस्तक हैं, जिनसे मनुष्यों को सत्यासत्य का ज्ञान होता है, उनको वेद कहते हैं।[1]

सत्यार्थप्रकाश में स्वामी दयानन्द ने लिखा है-जो सबको उत्पन्न करके धारण कर रहा है, वह परमात्मा है, उस परमात्मा से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद प्रकाशित हुए।[2]

वेद कैसे प्रकाश में आये? इस सम्बन्ध में स्वामी जी ने लिखा है-'सृष्टि के आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अङ्गिरा-इन चार ऋषियों के आत्मा में एक-एक वेद को प्रकाशित किया।

अग्नेर्वा ऋग्वेदो जायते वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः। शत०ब्रा०[3]

स्वामी जी ने मनुस्मृति के एक श्लोक को उद्धृत करते हुए लिखा है-'जिस परमात्मा ने आदि सृष्टि में मनुष्यों को उत्पन्न करके अग्नि आदि चारों वेद ब्रह्मा को प्राप्त कराए और उस ब्रह्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य और तु अर्थात् अंगिरा से ऋक्, यजुः, साम और अथर्ववेद का ग्रहण किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्मं सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम्।।
मनु०१.१३[४]

ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका में भी स्वामीजी ने लिखा है-'जो सर्वशक्तिमान् परमेश्वर है, उसी से **(ऋचः)** ऋग्वेद, **(यजुः)** यजुर्वेद, **(सामानि)** सामवेद, **(आंगिरसः)** अथर्ववेद ये चारों उत्पन्न हुए हैं।'[५]

स्वामी जी ने लिखा है-''अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा-इन चारों मनुष्यों को जैसे वादित्र को कोई बचावे वा काठ की पुतली को चेष्टा करावे, इसी प्रकार ईश्वर ने उनको निमित्र मात्र किया था। क्योंकि उनके ज्ञान से वेदों की उत्पत्ति नहीं हुई। किन्तु इससे यह जानना कि वेदों में जितने शब्द, अर्थ और हैं, वे सब ईश्वर ने अपने ही ज्ञान से उनके द्वारा प्रकट किये हैं।''[६]

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने **सत्यार्थप्रकाश** में वेद ईश्वरकृत हैं, इसके क्या प्रमाण हैं, प्रश्न उपस्थित कर वेद ईश्वरकृत हैं, इस सम्बन्ध में निम्न प्रमाण दिये हैं-

उत्तर-(१) जैसा ईश्वर, पवित्र, सर्वविद्यावित्, शुद्धगुणकर्मस्वभाव, न्यायकारी, दयालु आदि गुणवाला है, वैसे जिस पुस्तक में ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल कथन हो, वह ईश्वरकृतः, अन्य नहीं।

(२) और जिसमें सृष्टिक्रम, प्रत्यक्षादि प्रमाण, आप्तों के और पवित्रात्मा के व्यवहार के विरुद्ध कथन न हो, वह ईश्वरोक्त।

(३) जैसा ईश्वर का निर्भ्रम ज्ञान वैसा जिस पुस्तक में भ्रान्तिरहित ज्ञान का प्रतिपादन हो, वह ईश्वरोक्त।

(४) जैसा परमेश्वर है और जैसा सृष्टि रक्खा है, वैसा ही ईश्वर, सृष्टि, कार्य, कारण और जीव का प्रतिपादन जिसमें होवे।

(५) और जो प्रत्यक्षादि प्रमाण-विषयों से अविरुद्ध शुद्धात्मा के स्वभाव से विरुद्ध न हो, वह परमेश्वरोक्त पुस्तक होता है।

इस प्रकार के वेद हैं।[७] इस प्रकार स्वामी दयानन्द ने सिद्ध किया है कि वेद ईश्वरोक्त हैं।

(२) वेद स्वतः प्रमाण हैं

स्वामी दयानन्द वेदों को एकमात्र प्रमाण मानते हैं। उनके अनुसार वेद स्वतः प्रमाण हैं। **ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका** में उन्होंने लिखा है-''ईश्वर की कही हुई जो चारों मन्त्र संहिताएं हैं, वे ही स्वयं प्रमाण होने योग्य हैं, अन्य नहीं, परन्तु उनसे भिन्न भी जो जीवों के रचे हुए ग्रन्थ हैं, वे भी वेदों के अनुकूल होने से परतः प्रमाण के योग्य होते हैं।''[८]

भ्रमोच्छेदन में स्वामी जी ने लिखा है ''ईश्वरोक्त है, वही वेद होता है। जीवोक्त को वेद नहीं कहते हैं। जितने ब्राह्मणग्रन्थ हैं, वे सब ऋषि, मुनि प्रणीत और संहिता ईश्वर प्रणीत हैं। जैसा ईश्वर के सर्वज्ञ होने से तदुक्त निर्भ्रान्त सत्य और मत के साथ स्वीकार करने योग्य होता है, जीवोक्त नहीं हो सकता क्योंकि वे सर्वज्ञ नहीं। वेद स्वतः प्रमाण और ब्राह्मण परतः प्रमाण हैं।''[९]

वेद स्वतः प्रमाण क्यों है तथा निर्भ्रम क्यों है? इसे स्वामी जी ने **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका** में स्पष्ट किया है। 'क्योंकि वेद ईश्वर के रचे हुए हैं और ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वविद्यायुक्त तथा सर्वशक्तिशाली है। इस कारण से उनका कथन निर्भ्रान्त और प्रमाण के योग्य है और जीवों के बनाए ग्रन्थ स्वतः-प्रमाण के योग्य नहीं होते क्योंकि वे सर्वविद्यायुक्त और सर्वशक्तिमान् नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते। इसलिये उनका कहना स्वत: प्रमाण के योग्य नहीं हो सकता। यह बात सिद्ध होती है कि वेद विषय में जहाँ कहींह प्रमाण की आवश्यकता हो, वहां सूर्य और दीपक के समान वेदों का ही प्रमाण लेना उचित है। अर्थात् जैसे सूर्य और दीपक अपने प्रकाश से प्रकाशमान् होके सब क्रिया वाले द्रव्यों को प्रकाशित कर देते हैं, वैसे ही वेद भी अपने प्रकाश से प्रकाशित होके अन्य ग्रन्थों का भी प्रकाश करते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि जो-जो ग्रन्थ वेदों से विरुद्ध हैं, तब भी अप्रमाण के योग्य नहीं ठहर सकते, क्योंकि वे तो अपने ही प्रमाण से प्रमाण युक्त हैं।[१०]

इस प्रकार स्वामी दयानन्द ने वेदों को स्वत: प्रमाण माना है।

(३) वेद नित्य हैं

सत्यार्थप्रकाश में वेद नित्य हैं या अनित्य इस प्रश्न को उपस्थित कर स्वामी दयानन्द ने लिखा है-''वेद नित्य हैं। क्योंकि परमेश्वर के नित्य होने से उसके ज्ञानादि गुण भी नित्य हैं। जो नित्य पदार्थ हैं, उनके गुण, कर्म, स्वभाव नित्य और अनित्य द्रव्य के साथ अनित्य होते हैं।''[११]

वेदों की नित्यता के सम्बन्ध में **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका** में स्वामी जी ने लिखा है- जैसे इस कल्प की सृष्टि में शब्द अक्षर अर्थ और सम्बन्ध, वेदों में हैं, इस प्रकार से पूर्वकल्प में थे और आगे भी होंगे, क्योंकि जो ईश्वर की विद्या है, सो नित्य एक ही रस बनी रहती है, उनके एक अक्षर का भी विपरीत भाव कभी नहीं होता। सो ऋग्वेद से लेकर चारों वेदों की संहिता अब जितनी प्रकार की हैं, कि इनमें शब्द, अर्थ, सम्बन्ध, पद और अक्षरों का जिस क्रम से वर्तमान है, इसी प्रकार का क्रम सब दिन बना रहता है, क्योंकि ईश्वर का ज्ञान नित्य है, उनकी वृद्धि, क्षय और विपरीतता भी नहीं होती, इस कारण से वेदों को नित्य स्वरूप ही मानना चाहिये।[१२]

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में स्वामी दयानन्द ने वैशेषिक सूत्रकार कणादमुनि, न्यायशास्त्रकार गौतममुनि, योगशास्त्रकार पतञ्जलि, वेदान्तशास्त्रकार कृष्ण द्वैपायन व्यासमुनि, सांख्यशास्त्रकार कपिलमुनि को उद्धृत करते हुए वेदों की नित्यता को प्रतिपादित किया है।

वेदों की नित्यता के सम्बन्ध में उपसंहार के रूप में स्वामी जी ने लिखा है-''जो सदा निर्विकार स्वरूप, अज, अनादि, नित्य, सत्य सामर्थ्य से युक्त और अनन्त विद्या वाला ईश्वर है, उसकी विद्या से वेदों के प्रकट होने और उसके ज्ञान में वेदों के सदैव वर्तमान रहने से वेदों को सत्यार्थयुक्त और नित्य सब मनुष्यों को मानना योग्य है। यह संक्षेप में वेदों के नित्य होने का विचार किया।[१३]

(४) चार वेद

वेद चार क्यों है? एक वेद क्यों नहीं? इस सम्बन्ध में स्वामी जी ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में इसके दो कारण बताये हैं (१) भिन्न-भिन्न विद्या जानने के लिये अर्थात् जो तीन प्रकार की गान विद्या है (उसको जानने के लिये वेदों का विभाग किया गया है), एक तो यह कि उदात्त और षड्जादि स्वरों का उच्चारण ऐसी शीघ्रता से करना जैसा कि ऋग्वेद के स्वरों का उच्चारण द्रुत अर्थात् शीघ्रवृत्ति में होता है, दूसरी माध्यमवृत्ति जैसे कि यजुर्वेद के स्वरों का उच्चारण ऋग्वेद के मन्त्रों से दोगुने काल में होता है, तीसरी विलम्बित वृत्ति है, जिसमें प्रथम वृत्ति से तिगुना काल लगता है, जैसा कि सामवेद के स्वरों के उच्चारण व गान में, फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हीं तीनों वृत्तियों के मिलाने से अथर्ववेद का भी उच्चारण होता है, परन्तु इसका द्रुतवृत्ति से उच्चारण अधिक होता है, इसलिये वेदों के चार विभाग हुए हैं।[१४] (२) ऋग्वेद में सब पदार्थों के गुणों का प्रकाश किया है, जिससे उनमें प्रीति बढ़कर उपकार लेने का ज्ञान प्राप्त हो सके, क्योंकि बिना प्रत्यक्ष ज्ञान के संस्कार और प्रवृत्ति का प्रारम्भ ही नहीं हो सकता और आरम्भ के बिना यह मनुष्य जन्म व्यर्थ ही चला जाता है, इसलिये ऋग्वेद की गणना प्रथम ही की है। यजुर्वेद में क्रिया काण्ड का विधान लिखा है, सो ज्ञान के पश्चात् ही कर्त्ता की प्रवृत्ति यथावत् हो सकती है, क्योंकि जैसा ऋग्वेद में गुणों का कथन किया है, वैसा ही यजुर्वेद में अनेक विद्याओं के ठीक-ठीक विचार करने में संसार के व्यवहारी पदार्थों से उपयोग सिद्ध करना होता है, जिनसे लोगों को नाना प्रकार का सुख मिले, ...इसलिये ईश्वर ने ऋग्वेदादि का उपदेश किया है कि जिनसे मनुष्य लोग ज्ञान और क्रिया-काण्ड को पूर्ण रीति से जान और आनन्द की उन्नति और अथर्ववेद से सर्वसंशयों की निवृत्ति होती है, इसलिये इनके चार विभाग किये हैं।[१५]

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में ही स्वामी जी ने लिखा है कि ज्ञानकाण्ड के लिये ऋग्वेद, क्रियाकाण्ड के लिये यजुर्वेद, इनकी उन्नति के लिये सामवेद और शेष अन्य रक्षाओं के प्रकाश करने के लिये अथर्ववेद की प्रथम, दूसरी, तीसरी और चौथी करके संख्या बांधी है। क्योंकि (ऋच स्तुतौ, यज् देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु, षो अन्तकर्मणि और साम सान्त्व प्रयोगे, अथर्व तिश्चरतिकर्मा) इन अर्थों के विद्यमान होने से चार वेदों अर्थात् ऋग्, यजु, साम और अथर्व की यह चार संज्ञा रखी हैं। अथर्ववेद का प्रकाश ईश्वर ने इसलिये किया है कि जिससे तीनों वेदों की अनेक विद्याओं के सब विघ्नों का निवारण और उनकी गणना अच्छी प्रकार से हो सके।[१६]

इस प्रकार चारों वेदों की आवश्यकता पर स्वामी ने अपने विचार स्पष्ट किये कि मूलरूप में वेद चार हैं, जो ईश्वर प्रदत्त हैं।

स्वामी दयानन्द ने स्पष्ट रूप से मार्गदर्शन करते हुए सत्यार्थप्रकाश में लिखा है-वेद परमेश्वरोक्त हैं। इन्हीं के अनुसार सब लोगों को चलना चाहिये और जो कोई किसी से पूछे कि तुम्हारा क्या मत है? तो यही उत्तर देना है कि हमारा मत वेद अर्थात् जो कुछ वेद में कहा है, हम उसको मानते हैं।[१७]

ईश्वरप्रदत्त ज्ञान पर सृष्टि के प्रारम्भ में ऋषियों ने समाज की सुदृढ़ आधारशिला पर आधारित समाज की स्थापना की थी। यह आधारशिला इतनी सुदृढ़ थी कि सदियाँ बीत जाने पर भी भारतीय समाज एक सूत्र में बंधा रहा। विश्व को ज्ञान की ज्योति प्रदान करने वाले वेदों ने भारतीय समाज का मार्गदर्शन कर अखण्डरूप में बनाये रखा। आज समाज वेदों के अध्ययन और स्वाध्याय से दूर होता जा रहा है। स्वामी दयानन्द को इसका पूर्व में ही अनुमान था। अत: उन्होंने वेदाध्ययन, वेदों का स्वाध्याय और प्रचार प्रत्येक आर्य का परमधर्म कहा था। उन्हें ज्ञात था कि भारतीय राष्ट्र और समाज को अखण्डरूप में स्थापित करने और जोड़े रखने में केवल ईश्वरीय ज्ञान वेद ही समर्थ है।

वेद ही एकमात्र सत्य है और वेद ही एकमात्र सत्य का मार्गदर्शन करने में समर्थ हैं। आज समाज और राष्ट्र में विघटनकारी शक्तियाँ अपना पैर फैला रही हैं, इसका प्रमुख कारण है अपने उन मूलभूत आदर्शों का परित्याग तथा वैदिक आदर्शों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परित्याग, जिन पर हमारा राष्ट्र और समाज खड़ा हुआ था। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक आर्य-परिवार महर्षि के बताये हुए मार्ग का अनुसरण करते हुए वेदों का स्वाध्याय, अध्ययन और प्रचार करे, इससे न केवल उसका वर्तमान ही सफल होगा, अपितु भविष्य भी सफल होगा।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका** में लिखा है-

''नावेदविन्मनुते तं बृहन्तमिति। यो मनुष्यो वेदार्थान्न वेत्ति, स नैव तं बृंहन्तं परमेश्वरं धर्मं विद्यासमूहं व वेत्तुमर्हति। कुतः? सर्वासां विद्यानां वेद एवाधिकरणमस्त्यतः।....॥

'वेदों को नहीं जानने वाला मनुष्य परमेश्वरादि सब पदार्थ विद्याओं को अच्छी प्रकार से नहीं जान सकता और जो-जो जहां-जहां भूगोल या पुस्तकों अथवा मन में सत्यज्ञान प्रकाशित हुआ है और होगा वह सब वेदों में से ही हुआ है। क्योंकि जो सत्य विज्ञान है सो ईश्वर ने वेदों में रखा है। इसी के द्वारा अन्य स्थानों पर भी प्रकाश होता है। विद्या के बिना मनुष्य अन्धे के समान होता है। इससे सम्पूर्ण विद्या के मूल को बिना पढ़े किसी मनुष्य को यथावत् ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिये सब मनुष्यों को वेदादिशास्त्र अर्थज्ञान सहित अवश्य पढ़ने चाहिएं।[१८]

पाद-टिप्पणियां-

१ आर्योद्देश्यरत्नमाला
२ सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ७
३ सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ७
४ सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास-७
५ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदोत्पत्तिविषयः
६ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका
७ सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास-७
८ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका
९ भ्रमोच्छेदन
१० ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका
११ सत्यार्थप्रकाश समुल्लास-७
१२ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका-वेद नित्यत्व विचार
१३ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका वेदानां नित्यत्व विचार
१४ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका
१५ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, प्रश्नोत्तर विषय।
१६ सत्यार्थप्रकाश समुल्लास-७
१७ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, प्रश्नोत्तर विषय
१८ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पठन-पाठन विषय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotiḥ
ISSN 2277-4351

Vol.1, No.2 (136-143) Jan-jun 2013

मनुस्मृति, आर्यसमाज एवं नारी : एक विवेचन

(भारती आर्य, द्वारा-विश्वभारती अनुसन्धान परिषद्, ज्ञानपुर, भदोही (उ०प्र०)

वेद भारतीय संस्कृति के आधार ग्रन्थ हैं। स्मृतियां भी भारतीय संस्कृति के आधार व प्रामाणिक ग्रन्थ हैं। महर्षि मनु के अनुसार श्रुति वेद हैं और स्मृतियाँ धर्मशास्त्र हैं। दोनों से ही धर्म का सन्देश मिलता है।

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।[१]

महर्षि मनु ने वेदों को धर्म का मूल कहा है **''वेदोऽखिलो धर्ममूलम्''।**[२]

वेद, स्मृतियाँ, श्रेष्ठ आचरण और अन्तरात्मा की प्रसन्नता-ये चार धर्म के साक्षात् लक्षण कहे गये हैं।

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।

एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम्।।[३]

मनु के अनुसार धर्म के प्रति जिज्ञासा करने वाले लोगों के लिये श्रुति ही सर्वोत्कृष्ट प्रमाण है।

प्रमाणं परमं श्रुतिः।[४]

जो मनुष्य धर्म का पालन करता है, उसे इस संसार में यश, उन्नति और परलोक में अनुपम सुख मिलता है।

वेदों में जिन तत्त्वों का संक्षेप में वर्णन है, उनका ही स्मृतियों में विस्तृत वर्णन है। स्मृतिग्रन्थ भारतीय आचार-संहिताएं हैं। ये हमें अन्धकार से प्रकाश की ओर, संकोच से विकास की ओर ले जाती हैं। इससे लौकिक और पारलौकिक मार्ग प्रशस्त होता है। इनमें मनुष्यों के कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, आचार-शिक्षा, व्यवहार-नीति, कर्म-विज्ञान, सांस्कृतिक ज़ीवन, ग्राह्य-अग्राह्य, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, आचार-अनाचार, दण्ड-व्यवस्था का विशद वर्णन मिलता है। इसलिये कालिदास ने कहा है **''श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्।''**[५]

वैदिककाल में स्त्रियों को बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। वे पराक्रमी, वीरांगना, सबला, पुरुषों के समान वेदपाठी, मन्त्रद्रष्टा और ऋषिकाएं थीं। वे शास्त्रार्थ भी करती थीं। उदाहरण के लिये गार्गी और याज्ञवल्क्य ऋषि का शास्त्रार्थ सुप्रसिद्ध है। आदि गुरु शंकराचार्य और उस समय के प्रसिद्ध विद्वान् मण्डन मिश्र के शास्त्रार्थ की अध्यक्षता और बाद में शंकराचार्य के साथ विदुषी भारती का शास्त्रार्थ विश्वविख्यात है।

ऋग्वेद की ऋचाओं में नारी के महिमामय, गौरवशाली महत्त्व को बताते हुए कहा गया है कि मैं ज्ञान में ध्वज के तुल्य अग्रणी, ज्ञानवाली विदुषी हूँ। जैसे शरीर में शिर का महत्त्वपूर्ण स्थान है, वैसे ही समाज और राष्ट्र में मूर्धा और शिर के तुल्य हूं। मैं तेजस्विनी बोलने वाली एवं विजयिनी हूँ। पति का आचरण मेरे अनुकूल है। मेरे पुत्र शत्रुओं का नाश करने वाले हैं। मेरी पुत्रियाँ तेजस्विनी और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुणवती हैं। मैं विजयिनी हूँ। पति के जीवन में मेरा यश उत्तम है।

अहं केतुरहं मूर्धा ऽहमुग्रा विवाचनी।
ममेदनु क्रतुं पतिः सेहानाया उपाचरेत् ॥[६]
मम पुत्राः शत्रुहणो ऽथो मे दुहिता विराट्।
उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः ॥[७]

वैदिक परम्परा में माता को ही प्रथम गुरु माना गया है। महाभारत में भी कहा गया है **''नास्ति मातृ समो गुरुः।''**[८]

माता से बढ़कर कोई गुरु नहीं है जो माता की भक्ति करता है, वह लोक व परलोक दोनों को जीत लेता है। माता-पिता, गुरु के समान ही पूज्य हैं। मनुस्मृति में कहा गया है-

उपाध्यायान् दशाचार्य, आचार्याणां शतं पिता। सहस्रं तु पितृन् माता, गौरवेणातिरिच्यते॥[९]

अर्थात् दश उपाध्यायों से बड़ा आचार्य, सौ आचार्यों से बड़ा पिता, पिता से भी हजार गुणा माता का महत्त्व अधिक है।

माता ही अपने बच्चों का सर्वांगीण विकास कर सकती है। वह बच्चों की प्रथम शिक्षिका है। माता अपने बच्चों को जैसा चाहे वैसा बना सकती है। गर्भ से ही बच्चों में अच्छे संस्कार डाल सकती है। महर्षि मनु ने संस्कारों पर बल दिया है। मनु ने माता को पृथिवी की मूर्ति माना है। **''माता पृथिव्या मूर्तिः''**।[१०] महाभारत में माता को भूमि के समान महान् माना गया है। **''माता गुरुतरा भूमेः।''**[११], **''माता मूर्तिः प्रजापतेः''**। माता को प्रजापति की मूर्ति माना गया है।

नास्ति मातृसमा छाया, नास्ति मातृ समागतिः। नास्ति मातृसमं त्राणं, नास्ति मातृसमा प्रिया॥[१२]

महाभारत में कहा गया है कि माता के समान कोई श्रेष्ठ रक्षक नहीं है, न माता के समान कोई आश्रयदाता है, न माता के समान कोई पालक है। न माता के समान कोई प्रिय है।

जो व्यक्ति सदा विद्वान् वृद्धों की सेवा करता है, उसकी आयु, विद्या, यश अर्थात् कीर्ति और बल बढ़ता है।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्॥[१३]

महर्षि मनु ऐसे महान् ऋषि हुए हैं, जिन्होंने उच्च गौरव और सम्मान स्त्रियों को दिया। जिस परिवार व समाज में स्त्रियों का आदर एवं सम्मान होता है, वहां देवता अर्थात् दिव्यगुण, दिव्य सन्तान और दिव्य लाभ आदि प्राप्त होते हैं। जहाँ इनका आदर व सम्मान नहीं होता है अर्थात् अपमान होता है वहां सदा विपत्तियाँ आती हैं।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैताः तु न पूज्यन्ते सर्वाः तत्राफलाः क्रियाः॥[१४]

महर्षि मनु ने स्त्रियों को सन्तान की उत्पत्ति करके, भोग्योदय करने वाली, आदर के योग्य, घर की ज्योति, गृहशोभा, गृहलक्ष्मी, घर का संचालन करने वाली, गृहस्वामिनी, घर को स्वर्ग बनाने वाली, संसार यात्रा की आधार स्तम्भ माना है। शोभा, लक्ष्मी और स्त्री में कोई अन्तर नहीं है। वे घर की प्रत्यक्ष शोभा हैं।

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु च विशेषोऽस्ति कश्चन॥[१५]

विद्या का मानव जीवन में बहुत अधिक महत्त्व है। माता-पिता का प्रमुख कर्त्तव्य है कि अपने बच्चों को उच्च एवं अच्छी शिक्षा प्रदान करें। विद्या से विनम्रता आती है, विनम्रता से योग्यता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आती है। योग्यता से धन प्राप्त होता है। धन से धर्म और धर्म से सुख प्राप्त होता है।

विद्या ददाति विनयं, विनयात् याति पात्रता। पात्रत्वाद् धनं आप्नोति, धनात् धर्मः ततः सुखम्॥ (हितोपदेश)

जो माता-पिता अपनी सन्तानों को पढ़ाते नहीं हैं। वे माता-पिता अपने बच्चों के शत्रु हैं। वे विद्वानों की सभा में तिरस्कृत और कुशोभित होते हैं। जैसे हंसों के मध्य में बगुला।

माता शत्रुः पिता वैरी, येन बालो न पाठितः। न शोभते सभा मध्ये, हंस मध्ये वको यथा॥ (हितोपदेश)

महर्षि मनु ने विद्या के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए विद्या को अमूल्य रत्न कहा है। ऊंच-नीच या बालक जिससे भी अच्छी प्रकार शिक्षा प्राप्त हो ग्रहण कर लेनी चाहिये।

विषादप्यमृतं ग्राह्यं, बालादपि सुभाषितम्।[२६]

महर्षि मनु ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि राजा सब कन्या और लड़कों को ब्रह्मचर्य में रखकर विद्वान् बनाये। जो कोई इस आज्ञा को न माने तो उसके माता-पिता को दण्ड देना चाहिये। राजा की आज्ञा से आठ वर्ष के पश्चात् लड़की व लड़के किसी को घर में नहीं रखना चाहिये अर्थात् आचार्य-कुल में रहे।

कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम्॥

वैदिक व मनुकाल में स्त्रियों को शिक्षा का अधिकार था। मुगल काल और अंग्रेजों के शासन काल में भारत में स्त्रियों को शिक्षा का अधिकार नहीं था। उस समय अनेक कुरीतियां प्रचलित थीं। उस समय भारतीय समाज में नारी की स्थिति अच्छी नहीं थी। सामाजिक संकीर्णता तथा कुरीतियों ने नारी की स्थिति को और भी दयनीय बना दिया था। उस समय बाल-विवाह, अनमेल-विवाह, बहु-विवाह, दहेजप्रथा, पर्दा-प्रथा, सती-प्रथा, विधवाओं की दयनीय स्थिति, विधवा-विवाह का निषेध, बालिका वध, अशिक्षा आदि अनेक कुरीतियां प्रचलित थीं। उनका पालन एवं समर्थन धर्म के नाम पर किया जा रहा था। भारतीय नारियों को शिक्षा एवं वेदाध्ययन के अधिकार से वंचित कर दिया गया था और वे घर पर ही रहती थीं।

ब्रह्म-समाज के प्रवर्त्तक राजाराम मोहन राय व महर्षि दयानन्द ने उस समय स्त्रियों की स्थिति सुधारने के अनेक कार्य किये। अन्य लोगों ने भी इसमें सहयोग किया। ईसाई मिशनरियों ने अपने धर्म के प्रचार के लिये लड़कियों के स्कूल खोले।

महाराष्ट्र में समाज सुधारक ज्योतिराव फुले, बंगाल में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने कन्याओं के लिये विद्यालयों की स्थापना की। इन सभी लोगों ने कन्याओं को साक्षर बनाने पर बल दिया।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की प्रेरणा से आर्यसमाज ने स्त्रियों को साक्षर बनाने के साथ-साथ वेद, वेदांग पढ़ने और गृहोपयोगी कलाओं को सिखाने पर बल दिया। आर्यसमाज ने १८८३ में महर्षि दयानन्द के निर्वाण के बाद शिक्षा कार्यक्रमों को तेजी से अपनाया ताकि ईसाई मिशनरियों के प्रचार और प्रसार के कारण उत्पन्न हुए भीषण संकट से भारत को बचाया जा सके। प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति का यथार्थ रूप नई पीढ़ी के सामने प्रस्तुत किया। ईसाई मिशनरियों की भांति आर्य उपदेशक तैयार किये गये। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये डी०ए०वी० विद्यालयों की स्थापना की गयी। वहाँ सन्ध्या-हवन करना छात्रों के लिये अनिवार्य था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन कालेजों में महर्षि दयानन्द सरस्वती के बताए हुए पाठ्यक्रमों का जैसे-वेद-वेदांग, व्याकरण, दर्शनशास्त्रों की शिक्षा व्यवस्था नहीं थी। इस पद्धति से असन्तुष्ट पं० गुरुदत्त विद्यार्थी, महात्मा मुंशीराम जैसे लोगों ने वैदिक धर्म और संस्कृति के प्रचार एवं प्रसार के लिये गुरुकुलों की स्थापना की। बालकों का पहला गुरुकुल पंजाब में १९०० ई० में गुजरांवाला में स्थापित किया गया।

महात्मा मुंशीराम जी ने अपनी डायरी में २६ जनवरी १८८६ ई० में लिखा है, जब वह कचहरी से लौटकर घर के अन्दर गये तो वेद कुमारी अर्थात् महात्मा जी की पुत्री दौड़ी आयी, जो पाठशाला से सीख कर आई थी, सुनाने लगी-.

एक बार ईसा बोल,
तेरा क्या लगेगा मोल?
ईसा मेरा राम रमैया
ईसा मेरा कृष्ण कन्हैया।।

इस गीत को सुनने से उन्हें लगा कि आर्यजाति की पुत्रियों को इस तरह के गीतों के साथ-साथ अपने धर्मग्रन्थों की निन्दा करना भी सिखाया जा रहा है। इस विषय पर महात्मा मुंशीराम जी ने अपने मित्रों और सहयोगियों से बात की, वे सब इस भी इस बात से चिन्तित थे।

महात्मा मुंशीराम जी और लाला देवराज जी, जो क्रमशः जालन्धर आर्यसमाज के प्रधान व मन्त्री थे। दोनों ने अनेक विघ्न-बाधाओं का सामना करते हुए वैदिक संस्कृति के आदर्शों एवं धर्म की रक्षा के लिये सन् १९०० में 'कन्या महाविद्यालय, जालन्धर' की स्थापना की और अपना तन-मन-धन सभी समर्पित कर दिया। इसके बाद 'गुरुकुल कांगड़ी' की स्थापना की।

इस प्रकार 'कन्या महाविद्यालय, जालन्धर' देवराज जी की त्याग-तपस्या का और 'गुरुकुल कांगड़ी' अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द अर्थात् (महात्मा मुंशीराम जी) की कल्पना का मूर्त रूप है। इन दोनों महापुरुषों को स्त्री-शिक्षा व गुरुकुल प्रणाली के जन्मदाता के रूप में सदा याद किया जायेगा। इसके बाद अनेक गुरुकुलों की स्थापना हुई। आचार्य रामदेव और आचार्य विद्यावती जी ने १९२३ में 'कन्या गुरुकुल, देहरादून' १९५६ में दिल्ली में 'नरेला कन्या गुरुकुल' की स्थापना हुई। पं० आनन्दप्रिय ने 'बड़ौदा कन्या महाविद्यालय' की स्थापना की। 'अनेक पुत्री पाठशालाएं' और कन्या विद्यालयों की स्थापना की गयी। इन विद्यालयों में कन्याओं को आर्य संस्कृति, सभ्यता, धर्म-शिक्षा, वेद, गीता, उपनिषद्, दर्शन, सत्यार्थप्रकाश आदि पढ़ाए जाते थे। नियमित रूप से सन्ध्या-हवन भी सिखाया जाता था। इन पाठशालाओं को सरकारी अनुदान मिलने के कारण प्रचलित विषय भी पढ़ाये जाते थे। इसलिये अध्यापिकाएं भी सरलता से मिल जाती थीं। ये पाठशालाएं आर्यसमाज के भवनों में चलायी जाती थीं। इन्हीं सभी लोगों के अथक प्रयासों से आज स्त्रियाँ सभी क्षेत्रों में आगे आईं।

विद्या अध्ययन के बाद जब छात्र शिक्षित होकर निकले, उसके बाद गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे अर्थात् विवाह करे। मनु ने विवाह-संस्कार में पति-पत्नी के गुण, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का विस्तृत वर्णन किया है। जिस प्रकार वायु सभी प्राणियों का आधार है, उसी प्रकार गृहस्थाश्रम भी सभी आश्रमों का आधार है। गृहस्थाश्रम सभी आश्रमों में सर्वश्रेष्ठ है। गृहस्थ ही ज्ञान और अन्न से अन्य आश्रमों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पालन करता है। ऋषि, देवता, पितृगण, प्राणी और अतिथि सभी गृहस्थ से सन्तुष्ट होते हैं।

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः॥[१७]

मनु के अनुसार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति के लिये गृहस्थ को प्रतिदिन पंचमहायज्ञ करने चाहियें। ब्रह्मयज्ञ अर्थात् सन्ध्या, देवयज्ञ अर्थात् हवन, पितृयज्ञ (माता-पिता की सेवा-शुश्रुषा), बलिवैश्वदेवयज्ञ अर्थात् पत्नी को प्रातःकाल और सांयकाल दोनों समय पके हुए भोजन की आहुतियां देनी चाहिये। अतिथियज्ञ को महर्षि मनु ने बहुत महत्त्व दिया है। अतिथि के आने की कोई तिथि नहीं होती है। अतिथि को जल, आसन, भोजन, मधुर वचन आदि से स्वागत करना चाहिये। यदि कुछ भी न मिले तो जल से सत्कार करना चाहिये। राजा, ऋत्विज, स्नातक, गुरुजन, दामाद, श्वसुर और मामा का मधुपर्क से सत्कार करना चाहिये।[१८] आर्यसमाज के संस्थापक धर्म-धुरन्धर, युग-प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने ग्रन्थों में पंचमहायज्ञों को प्रतिदिन करने का निर्देश दिया है।

पत्नी का कर्त्तव्य है कि पति, गुरु व अतिथि को खिलाकर खाए। मनु ने स्त्रियों के मुख्य कर्त्तव्य सन्तान उत्पन्न करना, सन्तान की रक्षा करना, अतिथियों का सत्कार करना, धार्मिक कृत्य, अग्निहोत्र, यज्ञ आदि करना, बड़े लोगों की सेवा-शुश्रुषा करना, पति की आज्ञापालन करना, पति को देवता के समान सम्मान देना, घर के सभी कार्यों को सुचारू रूप से चलाना आदि। पति की सेवा से स्त्री स्वर्गलोक को प्राप्त करती है।

अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च ह॥[१९]

सन्तानोत्पत्ति, धर्म कार्य, उत्तम सेवा, रति तथा अपना और पितरों का जितना सुख है यह सब स्त्रियों के अधीन है।

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहे कार्येषु दक्षया।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्त हस्तया॥[२०]

स्त्रियाँ सदा आनन्दित होके, चतुरता से कार्यों में लगी रहें। अन्नादि से उत्तम संस्कार, पात्र, वस्त्र, गृह आदि के संस्कार और घर के भोजनादि में जितना धन आदि लगे उसको उसको यथायोग्य करने में सदा प्रसन्न रहे।

पति अपनी पत्नी को अपने शरीर के तुल्य माने। वह पत्नी को भोजन, वस्त्र, आभूषण आदि से सन्तुष्ट रखे, उसे कभी दुःखित न होने दे। स्त्री को प्रसन्न रखने से पुत्र, यश, आयु प्राप्त होता है। जिस कुल में नित्य स्त्री से पति और पति से स्त्री प्रसन्न और सन्तुष्ट रहती है। उस कुल का निश्चय ही कल्याण होता है।

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता, भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं, कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥[२१]

जिस कुल में स्त्री, पुत्रवधु, बहन, भानजी, कन्या आदि शोक करती हैं। वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। जहाँ ये प्रसन्न रहती हैं, वह कुल सर्वदा उन्नति करता है।

शोचन्ति जामयो यत्र, विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता, वर्धते तद्धि सर्वदा॥[२२]

अपना कल्याण चाहने वाले कन्या के पिता, भाई, पति और देवर आदि को चाहिये कि वे सदा कन्या का आदर सत्कार करें तथा उसे वस्त्र आदि से अलंकृत करें।

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरस्तथा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः॥ [२३]

महर्षि मनु के अनुसार यदि माता-पिता अपनी कन्या का विवाह नहीं करते हैं तो कन्या पति को स्वयं वरण कर सकती है। उसे थोड़ा भी दोष नहीं लगता। [२४]

अथर्ववेद में भी इसका प्रमाण मिलता है-

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्। [२५]

कन्या ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदशास्त्रों का अध्ययन कर विदुषी बनकर अपने सदृश युवा पति का वरण करे। विवाह-पद्धति में अनेक अन्धविश्वास प्रचलित थे। आर्यसमाज ने इन दोषों को दूर करने का प्रयत्न किया। विवाह के लिये वर-कन्या के गुण, कर्म, स्वभाव की समानता को महत्त्व प्रदान किया। महर्षि मनु के अनुसार स्त्री की रक्षा बचपन में पिता, युवा अवस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र करते हैं।

पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने।

रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा, न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥ [२६]

स्त्रियों के सुखी जीवन की कामना से उनका सुझाव है कि गुणहीन व दुष्ट पुरुष से कभी भी विवाह न करें, चाहे जीवनपर्यन्त अविवाहित रहें। विधवाओं को पुनर्विवाह का अधिकार दिया है।

मनु ने विवाह को कन्या के आदर स्नेह का प्रतीक बताया है। अत: विवाह में किसी भी प्रकार के लेन-देन अर्थात् दहेज को अनुचित बताते हुए बल देकर उसका निषेध किया है। [२७] स्त्रीधन के बारे में बताते हुए कहते हैं कि विवाह में अग्नि के समक्ष माता-पिता के द्वारा जो दिया जाता है, विदाई में दिया गया धन, प्रेमवश पति के द्वारा प्राप्त धन, भाई आदि के द्वारा दिया गया धन, माता-पिता के द्वारा विधिध अवसरों पर दिया गया धन व सामान, बाद में मिलने वाली वस्तुओं, भेंटों को स्त्रीधन माना है। [२८] महर्षि मनु ने पुत्र और पुत्री को समान माना है। पुत्री भी पुत्र के समान आत्मरूप है। दोनों में कोई भेद नहीं करना चाहिये।

यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा॥ [२९]

मनु ने पुत्र के पुत्र पौत्र और पुत्री के पुत्र दौहित्र में कोई अन्तर नहीं माना। पुत्रहीन माता का समस्त धन दौहित्र को मिलता है। [३०] कुमारी कन्या को माता का धन मिलता है। [३१] माता के मरने पर सगे भाई-बहन धन को बराबर-बराबर बांट लें। [३२]

महर्षि मनु ने माता-पिता को बहुत ऊंचा स्थान दिया है। माता-पिता बालक के जन्म के समय जितना कष्ट उठाते हैं, उससे मनुष्य सौ वर्ष में भी उऋण नहीं हो सकता।

यं मातापितरौ क्लेशं सहेते संभवे नृणाम्।

न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि॥ [३३]

माता-पिता और आचार्य को सदा प्रसन्न रखें। इनके प्रसन्न होने से सारा तप पूर्ण होता है। मातृभक्ति से यह लोक, पितृभक्ति से अन्तरिक्षलोक और गुरुभक्ति से ब्रह्मलोक प्राप्त होता है।

माता-पिता, बहन, पुत्री और पत्नी से वाद-विवाद कलह और व्यर्थ की बहस नहीं करनी चाहिये। [३४] स्त्री की हत्या करने वाले को प्राणदण्ड देने का विधान है। [३५] वृद्ध माता-पिता, देवताओं, अतिथियों, पतिव्रता स्त्री, बालक और पुत्र का भरण-पोषण करना चाहिये। जो इनका भरण-पोषण नहीं करता, उसे राजा दण्ड दे। [३६] माता के समान मौसी, सास, बुआ, गुरुपत्नी, बड़ी बहन, बड़े भाई की पत्नी और सभी वृद्ध स्त्रियों के चरणस्पर्श कर प्रणाम करें। [३७]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्यसमाज ने समाज सुधार के क्षेत्र में अग्रणी और प्रशंसनीय भूमिका का निर्वाह किया है। आर्यसमाज ने बालविवाह का विरोध किया। १६ वर्ष से कम आयु की कन्या व २५ वर्ष से कम आयु के पुरुष का विवाह नहीं होना चाहिये। भारतीय क़ानून की दृष्टि में १८ वर्ष से कम आयु की लड़की और २१ वर्ष से कम आयु के लड़के का विवाह नहीं होना चाहिये।

विधवा-विवाह के निषेध के कारण समाज में सती प्रथा का प्रचलन था। जिसको दूर करने में राजा राममोहन राय और आर्यसमाज ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द व रानाडे ने विडोज रिमैरेज एक्ट पास करवाया और विधवा-विवाह करवाए। बहुविवाह का भी आर्यसमाज ने विरोध किया।

श्री मंगलदेव जी की प्रेरणा से आर्यसमाज ने 'श्रीमद् दयानन्द विधवा-आश्रम' और 'विधवा हितकारिणी सभा' की स्थापना की। इसका उद्देश्य निराश्रित विधवाओं के लिये विधवा आश्रम स्थापित करना, विधवाओं को दस्तकारी आदि कार्यों को सिखाकर आत्मनिर्भर और स्वावलम्बी बनाना था।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने कहा है कि जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश जलवायु आदि का उपयोग करने का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को है। उसी प्रकार ब्राह्मण, स्त्री, पुरुष चाहे वह नीच जाति का हो या उच्च जाति का सभी को परमात्मा द्वारा दिया गया वेद-ज्ञान सभी के लिये समान है।

महर्षि मनु ने भी कहा है कि धर्मज्ञान होने से स्त्रियां स्वयं अपनी रक्षा कर सकती हैं और सुरक्षित रहती है।[३८] इसलिये स्त्रियों को वेद पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनना, अच्छी बातों को ग्रहण करना और बुरी आदतों का त्याग करना चाहिये। जिससे दुःखों से मुक्ति और आनन्द प्राप्त हो।

'लेडिज फर्स्ट' का सन्देश महर्षि मनु ने पहले ही दे दिया था। उसके अनुसार नवविवाहितों, कुमारियों, रोगिणी, गर्भिणी, वृद्ध, भारवाहकों, गाड़ी वालों, स्नातकों, वर, राजा, स्त्रियों आदि के लिये पहले रास्ता छोड़ देना चाहिये। इन सबको भोजन कराने के बाद ही गृहस्थ को भोजन करना चाहिए। यही बड़ों के प्रति सम्मान और शिष्टाचार है।[३९] महर्षि मनु के अनुसार समाज के सभी लोगों का कर्त्तव्य है कि स्त्रियों की रक्षा करें।[४०] महर्षि मनु के इन कथनों का आज समाज में पालन किया जाये तो अत्याचार, बालिका-वध, बलात्कार, भ्रूण-हत्या आदि न हो।

इस सन्दर्भ में आर्यसमाज का और अधिक उत्तरदायित्व है कि वे समाज में फैली हुई बुराइयों, कुरीतियों को दूर करने का प्रयास करें और **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'** के उद्घोष को लेकर आर्यजन आगे बढ़ें।

पाद-टिप्पणियां-

१ मनु०२.१०

२ मनु०२.६

३ मनु०२.१२

४ मनु०२.१३

५ रघुवंश २.२

६ ऋग्०१०.१५९.१

७ ऋग्०१०.१५९.३

८ महा०शान्ति०प०३४२.२८

९ मनु०२.१६५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१० मनु०२.२२६
११ वनपर्व ३१२.६०
१२ शान्तिपर्व २६७.३१
१३ मनु०२.१२१
१४ मनु०३.५६
१५ मनु०९.२६
१६ मनु०२.२३९
१७ मनु०३.७७
१८ मनु०३.६७
१९ मनु-९.२८
२० मनु०५.१५०
२१ मनु०३.६०
२२ मनु०३.५७
२३ मनु०३.५५
२४ मनु०९.९०-९१
२५ अथर्व०११.५.१८
२६ मनु०९.३
२७ मनु०३.५१-५४
२८ मनु०९.१९४-१९५
२९ मनु०९.१३०
३० मनु०९.१३१
३१ मनु०९.१३१
३२ मनु०९.१९२-१९३
३३ मनु०२.२२७
३४ मनु०४.१८०
३५ मनु०९.२३२
३६ मनु०३.७२, मु०११.१० का परिशिष्ट
३७ मनु०२.१३१-१३३
३८ मनु०९.१२
३९ मनु०२.१३८, मनु०३.११४
४० मनु०९.४-८, मनु०९.३४९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotiḥ
ISSN 2277-4351
Vol.1, No.2 (144-148) Jan-jun 2013

वेदों में आदर्श परिवार की अवधारणा

(सुशील कुमार 'अमित', प्राध्यापक, गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर, हरिद्वार)

आज के इस भौतिकतावादी युग में जो परिवार वेदानुकूल आचरण करता है, वही परिवार सच्चे अर्थों में 'आदर्श' परिवार के रूप में जाना जाता है। श्रेष्ठता, शिष्टता, मधुरता, एकता, अखण्डता, उत्कृष्टता तथा सच्चरित्रता आदि गुणों से युक्त परिवार ही 'आदर्श परिवार' कहलाता है। छोटों के प्रति स्नेह, बड़ों के प्रति आदर तथा समान अवस्था वाले पुरुषों के प्रति मित्रता का भाव रखना ही 'आदर्श परिवार' का लक्षण है। इसी कारण 'आदर्श परिवार' की सम्पूर्ण समाज में प्रतिष्ठा होती है।

राष्ट्र और समाज का लघु रूप परिवार होता है, इसमें पति-पत्नी, माता-पिता, दादा-दादी, नाना-नानी, भाई-बहिन एवं पौत्र-पौत्री आदि पारिवारिक सदस्यों का समन्वित रूप होता है। 'आदर्श परिवार' सभी के लिये प्रेरणा का स्रोत होता है।

अथर्ववेद में 'आदर्श परिवार' के सम्बन्ध में अनेक निर्देश एवं उपदेश समुपलब्ध हैं। यथा-

ऊर्जं बिभ्रद् वसुवनिः सुमेधा अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण। गृहानैमि सुमना वन्दमानो रमध्वं मा बिभीत मत्॥ [1]

व्यक्ति को चाहिए कि वह बल को धारण करके, सशक्त होकर समाज में धन का दान करते हुए, सुन्दर बुद्धिवाला होकर, निर्दोष, शान्त, प्रेमपूर्ण, मैत्रीभाव से युक्त रहते हुए मानव दृष्टि से देखते हुए, प्रसन्नचित्त रहकर सबका आदर करते हुए ही घरों में रहे तथा कभी किसी से भय न करे।

अथर्ववेद के उक्त मन्त्र में पुरुषार्थ की वृद्धि, धन की वृद्धि, ज्ञान की वृद्धि तथा परिवार के प्रति सहज स्नेह-भावना का उपदेश दिया गया है।

'आदर्श परिवार' सदैव निर्भय रहे, विपत्ति में घबराये नहीं। इसी बात की पुष्टि यजुर्वेद के निम्नलिखित मन्त्र में हो रही है-

गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्जं बिभ्रत एमसि। ऊर्जं बिभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः॥ [2]

जिसका अभिप्राय यह है कि हे परिवार के सदस्यो! तुम गृहस्थाश्रम से मत डरो, तुम किसी प्रकार से भयभीत मत हो। शक्ति को धारण करने वाले बनो। प्रसन्नचित्त एवं बुद्धिमानी से रहकर धर्म एवं व्यवहार युक्त बनो।

'आदर्श परिवार' में साहस, धैर्य होना चाहिये। अगर परिवार में प्रसन्नता बढ़ती है तो शक्ति का संचय होता है।

वास्तव में स्वर्ग और नरक इसी धरती पर हैं, जिस परिवार अथवा गृहस्थ में सुख, शान्ति का वास होता है, वह परिवार अथवा गृहस्थ 'स्वर्ग'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के समान होता है और जहाँ विकृति, कुटिलता, वैमनस्य का वास होता है, वहाँ 'नरक' होता है। **आर्योद्देश्यरत्नमाला** में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने स्वर्ग और नरक की परिभाषा इस प्रकार दी है-

''जो विशेष सुख और सुख की सामग्री को जीव का प्राप्त होना (है, वह) वह स्वर्ग कहाता है।[3]

''जो विशेष दुःख और दुःख की सामग्री को जीव का प्राप्त होना है, उसको नरक कहते हैं।''[4] परिवार अथवा गृहस्थ को स्वर्ग बनाने का सन्देश अथर्ववेद में इस प्रकार उपलब्ध है-

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्व१ः स्वायाः। अश्लोणा अङ्गैरहुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान्॥[5]

जहाँ पवित्र हृदयवाले और शुद्धात्मा गृहीजन परस्पर स्नेहभाव रखते हुए, शुभकर्म करते हुए, रोगरहित शरीर वाले होकर आनन्द में रहते हैं वह घर स्वर्ग के समान, सब अंगों से स्वस्थ और सदाचारी रहकर माता-पिता तथा पुत्रों का दर्शन कर आनन्द में रहते हैं।

वास्तव में स्वस्थ गृहस्थ ही 'आदर्श परिवार' है अर्थात् वह स्वर्ग है। परिवार के प्रत्येक सदस्य की प्रवृत्ति सत्कर्मों में सदैव लगी रहनी चाहिये तथा बुरे कर्मों से हमेशा बचते रहना चाहिये।

'आदर्श परिवार सदैव दूध, घी व उत्तम धनधान्य से परिपूर्ण होता है। अथर्ववेद में कहा गया है कि-

उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः।
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः॥[6]

गाय, बकरी, भेड़ आदि परिवार के लिये पशुधन होना भी आवश्यक है। जिससे कि परिवार के सभी सदस्य हृष्ट-पुष्ट रहें। इसी परिप्रेक्ष्य में ''आदर्श परिवार'' का अन्य उदाहरण अथर्ववेद के मन्त्र में देखिए-

यज्ञं दुहानं सदमित् प्रपीनं पुमांसं धेनुं सदनं रयीणाम्। प्रजामृतत्वमुत दीर्घमायू रायश्च पोषैरुप त्वा सदेम ॥[7]

जहाँ सदा यज्ञ-याग होते हों, समृद्धि का केन्द्र हो, पुरुषों से युक्त, गौओं से युक्त, ऐश्वर्यों से परिपूर्ण, अमृतत्व से सम्पन्न, सन्तान से युक्त तथा धन-धान्य-समृद्धि के साथ जहाँ ईश्वर की उपासना होती हो, वहाँ 'आदर्श परिवार' का वास होता है।

अथर्ववेद के अनुसार 'आदर्श परिवार' में पुत्र और पत्नी का स्वरूप इस प्रकार बताया गया है-

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्॥[8]

पुत्र पिता का आज्ञाकारी होना चाहिये और माता के मनोनुकूल होना चाहिये। पत्नी सदैव अपने मधुर व शान्तिदायक वचन बोलनें वाली होनी चाहिये।

अथर्ववेद के इस मन्त्र में सुन्दर एवं 'आदर्श परिवार' का वास्तविक स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। अगर हम इस प्रकार के सदुपदेश जीवन में धारण करें तो निश्चित ही परिवार स्वर्ग बन जायेगा। परिवार के समस्त सदस्यों के लिये उत्तम् गुणों का होना आवश्यक है। सद्गुणों के ही अपनाने से परिवार में सुख, समृद्धि होती है। यजुर्वेद का सन्देश है-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव।
यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व॥ [९]

हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त, सब सुखों के दाता परमेश्वर! आप हमारे सारे दुर्गुणों, दुर्व्यसनों तथा दुःखों को दूर कीजिए और जो भी कल्याणकारी गुण, कर्म, स्वभाव हैं, वह सब हमको प्राप्त कराइये। अतएव सद्गुण अपनाने से परिवार में देवत्व का वास होता है और दुर्भावना आदि का नाश होता है।

परिवार में रहने वाला प्रत्येक मनुष्य पुरुषार्थी हो। कर्महीन की सारी योजनाएं असफल हो जाती हैं। अगर हमें सफलता प्राप्त करनी है तो अहर्निश परिश्रम करें। यजुर्वेद का उपदेश है-

कु॒र्वन्ने॒वेह कर्मा॑णि जिजीवि॒षेच्छ॒तᳬ समाः॑।
ए॒वं त्वयि॒ नान्यथे॒तो॒ऽस्ति न कर्म॑ लिप्यते॒ नरे॑॥ [१०]

यहाँ कर्मों को करता हुआ ही सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करे। इस प्रकार तुझ मनुष्य में कर्म लिप्त नहीं होता है, इससे भिन्न और कोई मार्ग नहीं है। हम आजीवन (सौ वर्ष तक) कर्मठ, पुरुषार्थी एवं उद्योगी होकर ही जीने की कामना करें। हमें यह जानना चाहिये कि कर्त्तव्य-बुद्धि से किया गया ही कर्म शुभ होता है। अनासक्ति के भाव से ही जीवन में पवित्रता आती है। शुभ-कर्मों से ही परिवार के प्रत्येक सदस्य का जीवन सुखी होता है। अतः वेद में कहा गया है कि-

भ॒द्रं कर्णे॑भिः शृणुयाम देवा भ॒द्रं प॑श्येमा॒क्षभि॒र्यजत्राः। स्थि॒रैरङ्गै॑स्तुष्टु॒वाᳬस॑स्त॒नूभि॒-र्व्य॑शेमहि दे॒वहि॑तं॒ यदायुः॑॥ [११]

हम भद्र सुनें, भद्र देखें तथा भद्र वचन बोलें तथा अंगों से सुकर्म करते रहें व दीर्घायु को प्राप्त करें।

वेदों के अनुसार परिवार के प्रत्येक सदस्य में सात्विक-भाव होना चाहिये। दुर्भावनाओं से कोसों दूर होना चाहिये। सात्विकवृत्ति वाला परिवार सदैव ही फलता-फूलता रहता है। वेद का कथन है कि अपने ही पुरुषार्थ से उपार्जित धन का भोग करें। इसी पवित्र भावना की पुष्टि यजुर्वेद का यह मन्त्र कर रहा है-

ई॒शा वा॒स्य॒मि॒दᳬ सर्वं॒ यत्किञ्च॒ जग॑त्यां॒ जग॑त्। तेन॑ त्य॒क्तेन॑ भुञ्जीथा॒ मा गृ॑धः॒ कस्य॑ स्वि॒द्धन॑म्॥ [१२]

यह सब जो कुछ पृथिवी पर चराचर वस्तु है, वह सब परमात्मा से व्याप्त है। उस परमात्मा के द्वारा दिये हुए पदार्थों का त्याग की भावना से भोग करना चाहिये। किसी के भी धन का लालच नहीं करना चाहिये।

परमात्मा सर्वव्यापक है, वह संसार के कण-कण में समाया हुआ है। अतः अनासक्ति भाव से ही पदार्थों का भोग करना चाहिये। अनासक्तिभाव से परिवार के प्रत्येक सदस्य में ईश्वर-भक्ति, ईश्वर-विश्वास एवं आस्तिकता की भावना जागृत होगी।

वेदों के अनुसार प्रत्येक परिवार में पारस्परिक प्रेम, एकता, सौमनस्य, स्वावलम्बन, धन-समृद्धि आदि सद्गुणों का प्रचुर मात्रा में वास रहना चाहिये। जिस परिवार में सद्गुण नहीं होते वह परिवार शीघ्र नष्ट हो जाता है। परिवार के सदस्यों को ऐसा कोई भी घृणित कार्य नहीं करना चाहिये, जिससे परिवार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नष्ट हो। परिवार में स्वार्थपरता एवं धनलिप्सा नहीं होनी चाहिये। प्रत्येक व्यक्ति को अशुभ लक्ष्मी या धन से बचना चाहिये। अथर्ववेद का सन्देश है कि-

या मा लक्ष्मीः पतयालूरजुष्टाभिचस्कन्द वन्दनेव वृक्षम्। अन्यत्रास्मत् सवितस्तामितो धा हिरण्यहस्तो वसु नो रराणः॥ [13]

जो पतन की ओर ले जाने वाली लक्ष्मी मुझ पर चढ़ गयी है जैसे आकाशबेल किसी वृक्ष पर चढ़ जाती है। हे परमात्मन्! तुम्हारे हाथों में ऐश्वर्य है। आप हमें ऐश्वर्य प्रदान करें, तथा निन्दनीय लक्ष्मी को हमसे दूर रखें।

इस प्रकार परिवार के प्रत्येक सदस्य को चाहिये कि वह पतन की ओर जाने वाली लक्ष्मी का परित्याग करें और जो उत्थान करने वाली लक्ष्मी है, उसको ग्रहण करें। इस प्रकार की लक्ष्मी स्थायी है, जो परिवार को उन्नति की ओर अग्रसर करती है।

परिवार में सत्य का व्यवहार तथा असत्य का त्याग होना चाहिये। क्रोध, ईर्ष्या आदि दुर्गुणों से परिवार को बचना चाहिये। परिवार किसी का ऋणी नहीं होना चाहिये। ऐसा परिवार सदैव सुखी होता है।

अथर्ववेद का कथन है-

अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिन् तृतीये लोके अनृणाः स्याम। ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः सर्वान् पथो अनृणा आ क्षियेम॥ [14]

हम इस लोक में, परलोक में तथा द्युलोक में भी कभी ऋणी न हों, जो देवयान व पितृयाण लोक हैं, उन सभी मार्गों पर ऋणरहित होकर रहें।

इस मन्त्र में परिवार के लिये एक महत्त्वपूर्ण शिक्षा है। जो परिवार अनृणी होता है, वह स्वयं में सुखी परिवार होता है। जो ऋणयुक्त परिवार होता है, वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। इस प्रकार परिवार में अकरणीय कर्मों को नहीं करना चाहिये, जिससे परिवार की छवि धूमिल हो।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा। सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥ [15]

भाई-भाई से, बहिन-बहिन से द्वेष न करें। सब एक-दूसरे से मिलकर अनुकूल होकर शिष्टतापूर्वक मधुर वचन बोलें।

परिवार में पारस्परिक प्रेम का भाव रहना चाहिये। इस प्रकार के व्यवहारर से परिवार की समुन्नति होगी। पारिवारिक कर्त्तव्यों के अन्तर्गत पति-पत्नी, माता-पिता, सास-ससुर, भाई-बहिन, पुत्र-पुत्री आदि में कुशलता का व्यवहार होना चाहिये।

'आदर्श परिवार' में सद्बुद्धि का होना, सौमनस्य, सद्भाव, एकता, समन्वय, योगक्षेम, धर्म एवं ऐश्वर्य, संगठन, सुख-सम्पन्नता, निर्भयता, स्वावलम्बी, निरोग, प्रेमभाव, भ्रातृभाव, पुत्र की कर्मठता, अनृणता, अतिथि-सत्कार, अन्न-समृद्धि, तेजस्विता आदि गुणों का पाया जाना ही मानव-जीवन का लक्ष्य है। गृहस्थ-जीवन में उसी परिवार को आदर्श परिवार कहा जाता है, जिसमें स्नेह हो। स्नेह से सुख और समृद्धि निरन्तर बढ़ती है, अथर्ववेद का आदेश है-

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्। क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ ॥ [16]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाद-टिप्पणियां-

१ अथर्व०७.६०.१

२ यजु०३.४१

३ आर्योद्देश्यरत्नमाला-महर्षि दयानन्दसरस्वती रत्न सं०१४

४ आर्योद्देश्यरत्नमाला-महर्षि दयानन्दसरस्वती रत्न सं०१५

५ अथर्व०६.१२०.३

६ अथर्व०७.६०.५

७ अथर्व०११.१.३४

८ अथर्व०३.३०.२

९ यजु०३०.३

१० यजु०४०.२

११ यजु०२५.२१

१२ यजु०४०.१

१३ अथर्व०७.११५.२

१४ अथर्व०६.११७.३

१५ अथर्व०३.३०.३

१६ अथर्व०१४.१.२२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotiḥ
ISSN 2277-4351
Vol.1, No.2 (149-154) Jan-jun 2013

आर्ष साहित्य में प्रत्याहार

राम हरीश मौर्य, पूर्व शोधच्छात्र, वेद विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रति + आ + √हृ + घञ् से प्रत्याहार शब्द निष्पन्न होता है। यह अष्टाङ्ग योग की पाँचवी योगावस्था है। जिसका अर्थ है–पीछे हटना, वापस चलना, प्रत्यावर्तन, पीछे रखना, रोकना, इन्द्रिय दमन करना आदि। योगशास्त्र में प्रत्याहार का अर्थ है–इन्द्रियों का अपने बाह्य विषयों से हटाकर अन्दर की ओर ले जाना, अन्तर्मुख होना। जब चित्त की बाहरी विषयों को उपेक्षा कर अन्तर्मुखी प्रवृत्ति होती है, तब प्रत्याहार कहा जाता है। जहाँ इन्द्रियाँ वश में की जाती है उसे प्रत्याहार कहते है। प्रत्याहार एक ऐसी विद्या है जो मन और ज्ञानेन्द्रियों को नियन्त्रित करती है। मन दोहरी भूमिका अदा करता है एक ओर वह ज्ञानेन्द्रियों को सन्तुष्ट करता है तो दूसरी ओर वह आत्मा से मिलता है। प्रत्याहार ज्ञानेन्द्रियों को शान्त करता है और उन्हे अन्तर्मुखी बना देता है जिससे साधक दैवी शक्ति की ओर अग्रसर हो सके। यदि मनुष्य की बुद्धि इन्द्रियों के वश में होती है तो वह अपना आपा खो बैठता है। इसके विपरीत यदि श्वास का सुसंगत नियत्रण हो तो इन्द्रियाँ वासना के बाह्य विषयों के पीछे भागने के बजाय अन्तर्मुखी हो जाता है और मनुष्य उसके क्रूर शासन से मुक्त हो जाता है।

साधक जब प्रत्याहार की अवस्था को प्राप्त होता है तब आत्म परीक्षण की खोज के मार्ग से जाता है। इन्द्रिय–विषयों के तीव्र परन्तु आकर्षक इन्द्रजाल पर विजय प्राप्त करने के लिए उसे अपनी इच्छा के विषयों के स्रष्टा का अपने मन में स्मरण करते हुए भक्ति के पृथक्करण की आवश्यकता होती है। वास्तव में मनुष्य जाति के लिए दासता एवं मुक्ति का कारण मन है। मन दैवी शक्ति है। सात्विक मन मोक्ष का साधन है और पापी मन पाप का।

अवः परेण पितरं यो अस्य वेदावः परेण पर एनावरेण। कवीयमानः क इह प्र वौचद्देवं मनः कुतो अधि प्रजातम्॥[1]

मनुष्य के जन्म के साथ ही सैकडो वृत्तियाँ मनुष्य को प्राप्त होती है। उसका कर्त्तव्य है कि वह सद्वृत्तियों को अपने पास रखे और दुष्टवृत्तियों को दूर करे।

एकंशतं लक्ष्म्यो३ मर्त्यस्य साकं तन्वा जनुषोऽधि जाताः। तासां पापिष्ठा निरितः प्र हिण्मः शिवा अस्मभ्यं जातवेदो नि यच्छ॥[2]

मैत्रायण्युपनिषद् में कहा गया है कि बन्धन एवं मोक्ष का कारण मन है। जब यह वासना के विषयों के बन्धन में होता है तब दासता और जब विषयों से निर्लिप्त होता है तब मुक्ति का कारण बनता है–

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्तये निर्विषयं स्मृतमिति।।[3]

प्रत्याहार आध्यात्मिक जीवन के लिए प्रथम सोपान है। प्रत्याहार में सफल होने पर ही दीर्घ काल तक मन को एकाग्र किया जा सकता है। यदि हम इच्छानुसार मन को इन्द्रियों से हटाना तथा लगाना सीख ले तो यह मनोनिग्रह की दिशा में ठोस कदम होगा ऐसा करने से हम कभी भी मन को बहिर्गामी वृत्ति से रोक सकते हैं। जब ज्ञानेन्द्रियाँ बाहरी विषयों की उपेक्षा करके उनकी ओर आकृष्ट नहीं होगी तब साधक साधना की ओर आकृष्ट होगा। अतएव पतञ्जलि ने कहा है कि इन्द्रियों का अपने विषयों से सम्बन्ध न रखकर चित्त के स्वरूप का अनुसरण करना प्रत्याहार है–

स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।।[4]

इन्द्रियों का स्वभाव है चित्त (चित्तमन्तःकरणसामान्यम्[5]**)** अनुसरण करना। चित्त यदि बाह्य विषयों की ओर लगा है तो इन्द्रियाँ भी बहिर्मुखी होगी। चित्त ने यदि बाह्य विषयों से मुख मोड़ लिया है और अन्दर की ओर प्रवृत्ति को है तो इन्द्रियाँ भी अन्तर्मुखी हो जायेंगी। यजुर्वेद में एक रूपक बाँधा गया है–

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव। हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।[6]

इन्द्रियों की बलवत्ता के लिए प्रार्थना है कि मेरे मुख में वाक्य शक्ति, नासिका में प्राण शक्ति, आँख में दर्शन शक्ति और कानों में श्रवण शक्ति, अच्छी प्रकार बनी रहे। मेरे केश पक कर श्वेत न हो जाय, दाँतों से रक्त न बहे, बाहुओं में खूब बल हो, उरूओ में ओज, जंघाओं में गति और पैरों में स्थिरता हो पैर लड़खड़ाने न लगे, प्रभो! सर्वाङ्ग स्वस्थ तथा अच्युत रहे। तथा सभी इन्द्रियाँ कल्याण कारी कार्यो को करे आदि–

वाङ् म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः। अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम्।।
ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः प्रतिष्ठा।
अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभृष्टः।। [7]

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः।।[8]

योगी को एक बार जब सृष्टि की पूर्णता की अनुभूति होती है तब उसे इन्द्रिय–विषयों की तृष्णा मिट जाती है और उन्हे वैराग्य की दृष्टि से सदा देखता है वह सर्दी–गर्मी में, सुख–दुख में, मान–अपमान में, पाप–पुण्य में अशान्ति का अनुभव नही करता है। वह दो विरोधी भावनाओ जय–पराजय के साथ स्थिर चित्त से व्यवहार करता है। वह स्वयं द्वन्द्व भावनाओं से मुक्त हो जाता है। उपनिषदों एवं पुराणों में प्रत्याहार को स्पष्ट करते हुए कहा गया है–

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु स्वभावतः।।
बलादाहरणं तेषां प्रत्याहारः स उच्यते।[9]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयेषु विचरतामिन्द्रियाणां बलादाहरणं प्रत्याहारः। यद्यत्पश्यति तत्सर्वमात्मेति प्रत्याहारः।।

सर्वविषय पराङ्मुखत्वं प्रत्याहारः। अष्टादशसु मर्मस्थानेषु क्रमाद्धारणं प्रत्याहारः।।[10]

शब्दादि विषयान्पञ्च मनश्चैवाति. चञ्चलम्। चिन्तयेदात्मनो रश्मीन्प्रत्याहारः स उच्यते।।[11]

विषयेष्वात्मतां दृष्ट्वा मनसश्चित्त. रञ्जकम्। प्रत्याहारः स विज्ञेयोऽभ्यसनीयो मुहुर्मुहुः।।[12]

विषयेभ्यः इन्द्रियार्थेभ्यो मनोनिरोधनं प्रत्याहारः।[13]

चित्तस्यान्तर्मुखीभावः प्रत्याहारस्तु सत्तम।[14]

चरतां चक्षुरादीनां विषयेषु यथाक्रमम्।

तत्प्रत्याहरणं तेषां प्रत्याहारः स उच्यते।।[15]

शब्दादिष्वनुरक्तानि निगृह्याक्षाणि योगवित्।

कार्याच्चित्तानुकारीणि प्रत्याहारपरायणः।।

वश्यता परमा तेन जायतेऽतिच. लात्मनाम्। इन्द्रियाणामवश्यैस्तैर्न योगी साधकः।।[16]

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु स्वभावतः। निग्रहः प्रोच्यतेसद्भिः प्रत्याहारस्तु सत्तमाः।।[17]

इस प्रकार प्रत्याहार का प्रधान लक्ष्य इन्द्रियों को वश में करना है। विषयों में विचरण करती हुई इन्द्रियों को बल पूर्वक अपनी ओर आकृष्ट कर लेने को प्रत्यहार कहा जाता है। अर्थात् इन्द्रियाँ बाह्य भोगों में रस लेने को ही अभ्यस्त होती है; उन्हें बाह्य उपकरण में से हटा कर अन्तः करण को रसानुभूति से जोड़ लेने को प्रत्याहार कहते है। इसके अभाव में साधना सफल नही हो सकता। व्यास जी योग दर्शन के भाष्य में प्रत्याहार को मधुमक्खियों का उदाहरण देकर स्पष्ट किया है–

स्वविषयसंप्रयोगाभावे चित्तस्वरूपानुकार इवेति चित्तनिरोधे चित्तवन्निरूद्धानीन्द्रियाणि नेतरेन्द्रियजयवदुपायन्तरमपेक्षन्ते। यथा मधुकरराजं मक्षिका उत्पन्तमनूत्पतन्ति निविशमानमनुनिविशन्ते यथेन्द्रियाणि चित्तनिरोधे निरुद्धानीत्येष प्रत्याहारः।।[18]

अर्थात् इन्द्रिय के अपने विषयों के साथ सन्निकर्ष न होने पर इिन्द्रयों के द्वारा चित्त के स्वरूप का अनुकरण कर लिया जाता है, इसलिए चित्त का निरोध होने पर चित्त के समान इन्द्रियाँ भी निरुद्ध हो जाती है; अन्य इन्द्रिय जय के समान अन्य उपायों की अपेक्षा नही करती। यथा मधुमक्खियाँ उड़ते हुए मधुमक्खियों के राजा के पीछे उड़ जाती है और बैठते हुए उस मधुमक्खियों के राजा के पीछे बैठ जाती है; वैसे ही इन्द्रियाँ चित्त के निरुद्ध होने पर निरुद्ध हो जाती हैं यही प्रत्याहार है। भोज राज के अनुसार विषयों के प्रति अभिमुख न होने पर इन्द्रियों का सम्बन्ध केवल चित्त से ही रहता है इसलिए इन्द्रियाँ भी चित्त के स्वरूप का अनुकरण करती है–

इन्द्रियाणि विषयेभ्यः प्रतीपमाह्रियन्ते ऽस्मिन्निति। तस्मिन्सति चित्तस्वरूपमान्नानु. कारीणीन्द्रियाणि भवन्ति।।[19]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोरक्ष संहिता में प्रत्याहार को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि दिन के तीसरे काल में सूर्य अपनी प्रभा समेट लेता है, वैसे ही योगी भी प्रत्याहार से मन के विकारों का हरण कर लेता है। जैसे कछूआ अपने अङ्गो को समेट कर अपने ही अङ्ग में छिपा लेता है, वैसे ही योगी भी प्रत्याहार द्वारा इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर आत्मा में लीन कर लेता है।

यथातृतीय कालस्यो रविः प्रत्याहरेत्प्रभाम्। तृतीयाङ्गस्थितो योगी विकारं मानसं तथा।।

अङ्गमध्ये यथाङ्गान् कूर्मः संकोचयेद ध्रुवम। योगी प्रत्याहरेदेवमिन्द्रियाणि तथात्मनि।।[20]

महाभारत के शान्तिपर्व में साधना के विघ्नों को योग का दोष कहा गया है और इनमें पांच दोषों को मुख्य रूप से कहा गया है–

योगदोषान् समुच्छिद्य पञ्च यान् कवयोविदुः। कामं क्रोधं च लोभं च भयं स्वप्नं च पञ्चमम्।।

क्रोधं शमेन जयति कामं संकल्पवर्जनात्। सत्त्वसंसेवनाद धीरो निद्रामुच्छेत्तमर्हति।।[21]

विद्वानों ने योग के जो–काम, क्रोध, लोभ, भय, और स्वप्न ये पाँच दोष बताये है उनका पूर्णतया उच्छेद्य करे। इनमें से क्रोध को शम मनोनिग्रह के द्वारा जीते, काम को संकल्प के त्याग द्वारा पराजित करे तथा धीर पुरुष सत्त्वगुण का सेवन करने से निद्रा का उच्छेद्य कर सकता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य ये छः विकार ही आत्मा में देहाभिमान उत्पन्न करने वाले होने कारण मनुष्य के शत्रु भी माने गये है इन से मन को दूर करने का प्रयत्न करना आवश्यक है। घेरण्ड संहिता में षट् शत्रुओं का नाश करते हुए प्रत्याहार करने का उपदेश किया गया है–

यस्य विज्ञान मात्रेण कामादिरिपुनाशनम्।।

यतो यतो मनश्चरति चाञ्चल्य वशतः सदा। ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्।।

पुरस्कारं तिरस्कारं सुश्राव्यं दुश्रुतं तथा। मनस्तस्यान्नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्।।

सुगन्धो वापि दुर्गन्धो घ्राणेषु जायते मनः। तस्मात् प्रत्याहारेदेतदात्मन्येव वशं नयेत्।।

मधुराम्लकटुतिक्तादि रसान्याति तदात्मनः। तदा प्रत्याहरेत्तेभ्य आत्मन्येव वशं नयेत्।।[22]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रत्याहार को योग का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अङ्ग माना गया है इसीकारण अमृतनादोपनिषद् में प्रत्याहार को प्रथम योगाङ्ग के रूप में स्वीकार करते हुए कहा गया है कि– **प्रत्याहारस्तथा ध्यानं प्राणायामोऽथधारणा। तर्कश्चैव समाधिश्च षडङ्गो योग उच्यते।।**[23] कभी–कभी ऐसा भी होता है कि यम–नियमों का पालन करने वाले व्यक्ति का मन विषयों में भटक जाता है। इसमे कारण यह है कि यम–नियमों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्ध मुख्यतः चित्त की हिंसादि वृत्तियों तथा कर्मेन्द्रियों से है जबकि विषयों में व्यक्ति की प्रवृत्ति आँख, नाक, कान, त्वचा तथा रसना इन ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा होता है। शब्द, स्पर्श, रूप रस तथा गन्ध आदि अपने–अपने विषयों को देखते ही इन्द्रियाँ उनमें जाने को उसी प्रकार उद्यत हो जाती है। जैसे बलवान घोड़े घास को देख कर उधर दौड़ पड़ते है। क्योकि मन के बिना तो ये इन्द्रियाँ अपने विषयो का ज्ञान कर ही नही सफती। इस प्रकार प्रत्याहार मनोनिग्रह की कला है। सामवेदीय ऋचाओं में प्रत्याहार की उपयोगिता दृष्टि गोचर होती है–

कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन् वनस्य जठरे पुनानः। 24

आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये। ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये॥ 25

अर्थात् साधना के मार्ग पर अग्रसर उपासक प्रत्याहार की साधना से सम्पन्न होकर योग की साधनाओ से नवोत्पन्न होता हुआ वन में आसन जमाकर अपने आप को पवित्र करता हुआ प्रभु का आह्वान करता है तथा जैसे हजारों लाखों सूर्य किरणे सूर्यरथ को वहन करती है; इसी प्रकार ब्रह्म के साथ योग विधि से संयुक्त उपासक जो कि प्रत्याहार आदि साधनों से सम्पन्न है तथा योग ज्ञान द्वारा सूर्य चन्द्र एवं अग्नि के समान प्रकाशमान है वे ही परमेश्वर का सम्यक आह्वान कर सकते है।

कहने का तात्पर्य यह कि सकाम भावना को निष्काम भावना से जीते; कामनाओं को निःस्पृहता से जीते, लोभ के विचार को सन्तोष से जीते, भय को सतत् जागरूकता से जीते, आलस्य को उत्साह से जीते। इसी प्रकार धैर्य और संयम का आश्रय लेकर विषय वासना एवं असंयम को जीते, विद्वानों की संगति के द्वारा अहंकार और दम्भ को वश में करे। इसी प्रकार चिन्ता को चिन्तन से, दुर्भावना को सद्भावना से और मनः संयम से कुकर्मों की ओर प्रवृत्ति को रोके। मन को नियन्त्रण में न रखने से ही कुकर्मों एवं दुर्गुणों की ओर प्रवृत्ति होती है। योग को जानने वाला मनुष्य प्रत्याहार परायण होकर शब्दादि विषयों में लगी हुई इन्द्रियों को रोक कर उन्हें चित्तानुकारिणी बना ले इससे जितेन्द्रियता में दृढ़ता आ जाती है। इस दृढ़ता के अभाव में कोई भी योग साधक योगी नहीं हो सकता। इस प्रकार यम–नियम आसन, प्रणायम और त्रिविध संयम के वीच में 'प्रत्याहार' की साधना बड़ी महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य है। इसकी पुष्टि भोज वृत्ति के द्वारा की जा सकती है–
"तदयं योगो यमनियमाभिः प्राप्तबीजभावा आसनप्राणायामैरङ्कुरितः प्रत्याहारेण कुसुमितो ध्यानधारणासमाधिभिः फलिष्यतीति।[26]

पाद-टिप्पणियां-

1. अथर्ववेद–9/9/18

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2. अथर्ववेद–7/115/3
3. मैत्रायणी उपनिषद्– 4/3–ट
4. योगदर्शन–2/54
5. योग वार्तिक–1/2
6. यजुर्वेद–34/6
7. अथर्ववेद–19/60/1–2
8. ऋग्वेद–1/89/8
9. जाबालदर्शनोपनिषद्–7/1–2
10. शाण्डिल्योपनिषद्–1/8/1
11. अमृतनादोपनिषद्–5
12. तेजोबिन्दूपनिषद्–1/34
13. मण्डलब्राह्मणोपनिषद्–1/7
14. त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्–1/2/30
15. योग चूडामण्युपनिषद्–120
16. विष्णु पुराण–6/7/43–44
17. कूर्मपुराण–उपरिविभाग–11/38
18. योगदर्शन व्यास भाष्य–2/54
19. योगदर्शन भोजवृत्ति–2/54
20. गोरक्ष संहिता–2/23–24
21. महाभारत शान्तिपर्व–240/4–5
22. घेरण्ड संहिता–4/1–5
23. अमृतनादोपनिषद्–7
24. सामवेद–530
25. सामवेद–245
26. योगदर्शन भोजवृत्ति–2/55

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotiḥ Vol.1, No.2 (155-161) Jan-jun 2013
ISSN 2277-4351

वैदिक साहित्य में वर्णित सेना एवं उसके प्रकार

(नरेश कुमार, असिस्टेण्ट प्रोफेसर (तदर्थ), वेदविभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार)

समाज, राष्ट्र एवं देश को यदि उन्नत होना है तथा विकास के मार्ग पर बढ़ना है तो उसके लिये आवश्यक है कि वह आन्तरिक एवं बाह्य खतरों से पूर्णतः सुरक्षित हो। विदित ही है कि प्रत्येक देश को सर्वदा विभिन्न प्रकार के बाह्य एवं आन्तरिक शत्रुओं से असुरक्षा का भय बना रहता है। ये उभयविध शत्रु सामाजिक व्यवस्था, राजनीतिक शक्ति एवं आर्थिक विकास में व्यवधान उपस्थित करते रहते हैं। जब आन्तरिक कलह एवं उपद्रवों की अत्यधिक अभिवृद्धि हो जाती है, अथवा निकटवर्ती शत्रुओं द्वारा उत्पन्न समस्याएँ विकराल रूप धारण कर लेती हैं, उस समय युद्ध आरम्भ होने की सम्भावनायें बढ़ जाती हैं। सबल सेना के बल पर ही राष्ट्र की सुरक्षा सम्भव है। वर्तमानकाल में जलसेना-स्थलसेना-वायुसेना आदि विभिन्न प्रकार की सेनाएं राष्ट्र-सुरक्षार्थ गठित की जाती हैं। वेद भी सेना के विभिन्न प्रकारों एवं उनके महत्त्व को प्रतिपादित करता है-

ऋग्०३.५६.३ में प्रयुक्त **त्र्यनीकः** पद यह प्रतीत होता है कि उस समय तीन प्रकार की होती थी, किन्तु स्पष्ट रूप से सेना के प्रकारों का वर्णन उपलब्ध नहीं होता है। ऋग्वेद में वर्णन प्राप्त होता है कि विजयप्राप्ति के लिये इन्द्र ने दुन्दुभि की ध्वनि से घोर नाद करती हुई पताकायुक्त अश्वारोही, पदाति वीरों तथा रथ-सेना के साथ युद्ध किया था। जैसा कि अधोलिखित मन्त्र में द्रष्टव्य है-

आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः कैतुमद्दुन्दुभिर्वावदीति। समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु॥[1]

ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक आर्य तीन प्रकार की सेना से परिचित थे, किन्तु त्रि-अंगिनी सेना के स्वरूप के विषय में निश्चितरूपेण कहा नहीं जा सकता, क्योंकि वेद में रथ एवं पदाति सेना का विवरण तो प्राप्त होता है किन्तु अश्व-सेना का स्पष्ट रूप से उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि वेद में प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष रूप से तीन प्रकार की सेनाओं का विश्लेषण प्राप्त होता है।

सेना में अश्व का प्रयोग-

वैदिक साहित्य में युद्धार्थ अश्व के प्रयोग का वर्णन प्राप्त होता है। कुछ स्थलों पर रथ में जोतने के लिये भी अश्व के उपयोग का वर्णन प्राप्त होता है। इस परिप्रेक्ष्य में मन्त्र द्रष्टव्य है-

इन्द्राकुत्सा वहमाना रथेना वामत्या अपि कर्णे वहन्तु। निः षीमद्भ्यो धमथो निः षधस्थान्मघोनो हृदो वरथस्तमांसि॥[2]

वेद में अश्वारोहण का वर्णन तो अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है किन्तु पृथक् रूप से अश्वसेना का प्रयोग प्राप्त नहीं होता। वेद में इन्द्र के दधिक्रा नामक अश्व का, उसके पराक्रम का तथा उसकी शक्ति का वर्णन प्राप्त होता है। रथ सेना की प्रयाण वेला में यह सबसे आगे रहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। यह शक्तिशाली अश्व युद्धभूमि में शत्रुओं का संहारक, अनुशासन में रहने वाला, शीघ्रगामी सेनाओं पर आक्रमण करने वाला, सरल मार्ग से गमन करने वाला था। जिस पर भयंकररूप से कड़कने वाली विद्युत् सभी को भयभीत कर देती है, उसी प्रकार समस्त शत्रुओं के संहारक तथा आक्रमणकारी दधिका से सभी भयभीत होते थे। वह अपने तेज एवं पराक्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा निषाद पञ्च जनों को आकृष्ट कर लेता था। जैसा कि अधोलिखित ऋग्वेद के मन्त्रों में द्रष्टव्य है-

उतो हि वां दात्रा सन्ति पूर्वा या पूरुभ्यस्त्रसदस्युर्नितोशे। क्षेत्रासां ददथुरुर्वरासां घनं दस्युभ्यो अभिभूतिमुग्रम्॥

उत वाजिनं पुरुनिष्षिध्वानं दधिक्रामु ददथुर्विश्वकृष्टिम्। ऋजिप्यं श्येनं प्रुषितप्सुमाशुं चर्कृत्यमर्यो नृपतिं न शूरम्॥

यं सीमनु प्रवतेव द्रवन्तं विश्वः पूरुर्मदति हर्षमाणः। पड्भिर्गृध्यन्तं मेधयुं न शूरं रथतुरं वातमिव ध्रजन्तम्॥

यः स्मारुन्धानो गध्या समत्सु सनुतरश्चरति गोषु गच्छन्। आविर्ऋजीको विदथा निचिक्यत्तिरो अरतिं पर्याप आयोः॥

उत स्मैनं वस्त्रमथिं न तायुमनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु। नीचायमानं जसुरिं न श्येनं श्रवश्चाच्छा पशुमच्च यूथम्॥[3]

ऋग्वेद में कामना की गयी है कि समस्त मानवों के हितैषी देव हमें अश्वों के साथ युद्ध में पार कराने वाले हों।[4] युद्ध क्षेत्र में जिस प्रकार वीरों की प्रशंसा की गयी है उसी प्रकार अश्वों की भी प्रशंसा प्राप्त होती है। यजुर्वेद में अश्व तथा अश्वपति दोनों को ही नमन किया गया है। जैसा कि अधोलिखित मन्त्र में द्रष्टव्य है-

नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमो नमोऽश्वेभ्योऽश्वपतिभ्यश्च वो नमो नमऽआव्याधिनीभ्यो विविध्यन्तीभ्यश्च वो नमो नमऽउगणाभ्यस्तृंहतीभ्यश्च वो नमः॥[5]

इस प्रकार हम देखते हैं कि युद्ध भूमि में अश्व को योद्धा के सहायक रूप में चित्रित किया गया है।

रथ-सेना सम्बन्धी विवेचना-

युद्ध के अवसर पर रथ का प्रयोग वाहन के रूप में किया जाता है। प्रायः रथ में सारथि और योद्धा 'रथी' दो ही व्यक्ति बैठा करते थे, किन्तु कुछ मन्त्रों में दो से अधिक व्यक्तियों के बैठने का विवेचन प्राप्त होता है। रथ में अश्वों के अतिरिक्त मेढ़ों, हरिणियों, बैलों आदि को भी रथ में जोते जाने का उल्लेख मिलता है। वृत्रासुर के साथ युद्ध में पूषा को गाड़ी को मेढ़े के द्वारा वहन करने का तथा इन्द्र के हृष्ट-पुष्ट अश्वों का वर्णन प्राप्त होता है। जैसा कि अधोलिखित मन्त्र में द्रष्टव्य है-

ओकिवांसा सुते सचाँ अश्वा सप्ती इवादने। इन्द्रा न्व१ग्नी अवसेह वज्रिणा वयं देवा हवामहे॥[6]

ऋग्वेद में एक स्थल पर मुद्गल की पत्नी मुद्गलानी के रथ में बैलों को जोते जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। यथा-

ककर्दवे वृषभो युक्त आसीदवावचीत्सारथिरस्य केशी। दुधेर्युक्तस्य द्रवतः सहानस ऋच्छन्ति ष्मा निष्पदो मुद्गलानीम्॥१०.१०२.६॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रथ को अश्व से बनाया जाता था तथा गोचर्म की रस्सियों से उसे कस कर बाँधा जाता था तथा उसे इन्द्र के वज्र के सदृश सुदृढ़ माना जाता था।[७] यह रथ इन्द्र का बल, मरुतों की सेना, मित्र का गर्भ तथा वरुण की नाभि स्वरूप माना गया है। जैसा कि अथर्ववेदीय अधोलिखित मन्त्र में द्रष्टव्य है-

इन्द्रस्यौजो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः। स इमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय॥[८]

रथ में जोते जाने वाले अश्वों को बैलों से अधिक शक्तिशाली, अत्यधिक शब्द करने वाले, शत्रु को पादाक्रान्त करने वाले तथा शत्रु का विनाशक बतलाया गया है। जैसा कि ऋग्वेदीय मन्त्र में द्रष्टव्य है-

रथवाहनं हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म। तत्रा रथमुप शग्मं सदेम विश्वाहा वयं सुमनस्यमानाः॥६.७५.८॥

अश्वों को नियन्त्रित करने के लिये कशा का प्रयोग किया जाता था, जिसका प्रयोग संग्रामों में अश्वों को प्रेरित करने के लिये, उनके उन्नत भोगों पर प्रहार करने के लिये तथा निम्न स्थानों पर समीप से ताड़न के लिये किया जाता था।[९] रथ सेना अनेक रूपों से युक्त भयंकर शब्द करती हुई आगे प्रस्थान किया करती थी। 'अनस्वति वाहिनी विश्वरूपां कुरुटिनी' (अथर्व०१०.१.१५)। रथारूढ़ राजा युद्ध के लिये रथ पर अनेक प्रकार के आयुधों को रखा करता था। प्रायः इस प्रकार के रथ की कामना की जाती थी, जिसमें रथ के चलाने के साधन तथा आयुध विद्यमान हों तथा रमण के लिये उत्तम सुखदायक साधन हों। यजुर्वेद में इसी प्रकार के रथ की कामना की गयी है। जैसा कि अधोलिखित मन्त्र में द्रष्टव्य है-

रथवाहनꣳहविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म। तत्रा रथमुप शग्मꣳसदेम विश्वाहा वयꣳसुमनस्यमानाः॥[१०]

पदातिसेना विषयक वर्णन-

वैदिक साहित्य के अनुशीलन के यह स्पष्ट होता है कि वैदिक आर्य वीर प्रायः युद्ध के लिये पैदल ही प्रस्थान किया करते थे। वेद में विभिन्न देवताओं तथा उनके वीरों के लिये रथ का तथा उनके आरोहण के लिये अश्व के प्रयोग का विवरण अत्यल्प ही किया गया है। योद्धा युद्धावसर पर शत्रु सेना पर टूट पड़ते थे तथा उसका छेदन-भेदन किया करते थे।[११] वीर योद्धाओं के उत्साहवर्द्धनार्थ वीरता से परिपूर्ण गुणों का स्मरण कराया जाता था। मरुत्देवता वीर का यह कार्य स्वयं किया करते थे। ये शूरवीर प्रायः पैदल ही युद्ध किया करते थे। अथर्ववेद के एक मन्त्र कहा गया है कि इन्द्र के द्वारा युद्ध की क्रीड़ा के समय सैनिकों सैनिकों के पदघोष सुनायी पड़ते हैं। यथा-

यैरिन्द्रः प्रक्रीडते पद्घोषैश्छायया सह।
तैरमित्रास्त्रसन्तु नोऽमी ये यन्त्यनीकशः॥[१२]

अन्यत्र उल्लेख मिलता है कि इन्द्र से प्रेरित होकर मरुद्गण दस्युओं का वध करने के लिये पैदल ही गये थे।[१३] इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिकवाङ्मय में पदाति सेना का युद्धार्थ प्रयोग किया जाता था।

स्त्रीसेनाविषयक वर्णन-

वैदिकसाहित्य में पुरुषों के सदृश स्त्रियों के भी युद्ध में भाग लेने का वर्णन प्राप्त होता है। ऋग्वेद में पर्याप्त साधनसम्पन्न देवपत्नियों से सुरक्षार्थ प्रार्थना की गयी है। यथा-

अभि नो देवीरवसा महः शर्मणा नृपत्नीः। अच्छिन्नपत्राः सचन्ताम्॥१.२२.११॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वेद में भग देवता तथा वरुण की बहिन उषा की स्तुति की गयी है, वह अपने रथ पर विराजमान होकर शत्रु को वशीभूत किया करती थी।[१४] एक अन्य मन्त्र में वर्णित है कि इन्द्र के द्वारा नमुचि नामक दास का विनाश करने के अवसर पर दासों ने स्त्रियों का आयुध के रूप में उपयोग किया था, अर्थात् स्त्रीसेना का निर्माण किया था। उस समय इन्द्र ने यह सोचकर कि स्त्री सेना मेरा कुछ नहीं कर सकती है, उसने नमुचि की दो सुन्दर स्त्रियों को अन्दर बन्द कर दिया था तथा युद्ध करने के लिये दस्युओं पर आक्रमण किया था।[१५] अन्यत्र मुद्गल की पत्नी मुद्गलानी के रथारूढ़ होकर सहस्रों गायों को जीता था। इस अवसर पर इन्द्र उसके रथी थे तथा मुद्गलानी ने सारथि का कार्य किया था। यथा-

उत्स्म वातो वहति वासो अस्या अधिरथं यदजयत्सहस्रम्। रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ भरे कृतं व्यचेदिन्द्रसेना॥ ऋग्०१०.१०२.२॥

अन्यत्र मुद्गलानी के पराक्रम का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि परित्यक्ता स्त्री जिस प्रकार पति को प्राप्त करके उत्कर्षित होती है तथा जिस प्रकार मेघ पृथिवी पर चक्रवत् वर्षा करता है, उसी प्रकार मुद्गलानी ने बाणों की वर्षा करके अनेकों गौ-संघों के अभिलाषी जनों को अपने सारथ्य से शत्रुओं के द्वारा अपहृत गौओं पर विजय प्राप्त करायी थी। सुखप्रद अन्न एवं धन को भी प्राप्त कराया था। उदाहरणार्थ मन्त्र द्रष्टव्य है-

परिवृक्तेव पतिविद्यमानट् पीप्याना कूचक्रेणेव सिञ्चन्। एषैष्या चिद्रथ्या जयेम सुमङ्गलं सिनवदस्तु सातम्॥[१६]

सामवेद में उल्लेख मिलता है कि इन्द्र की पत्नी इन्द्राणी अविजिता अमुषिता तथा सर्वप्रधाना थी।[१७] तै०सं० में इन्द्राणी सेना की प्रेरक देवी मानी गयी है-**इन्द्राणी वै सेनायै देवता**[१८]। अथर्ववेद में एक विशिष्ट प्रकार की स्त्री सेना का तथा उसके पराक्रम का वर्णन है, जो इन्द्राणी के संरक्षण में झिल्ली से बाहर निकली हुई सर्पिणी के सदृश २१ भागों में विभक्त होकर युद्धार्थ प्रस्थान करते समय शत्रु के नेत्रों को सर्पिणियों के समान आच्छन्न कर दिया करती थी। उस समय शत्रु उसके सामने ठहर नहीं पाते थे। स्त्री की तुलना सर्पिणी से इसलिये की गयी है क्योंकि जिस प्रकार केंचुली से निकली हुई सर्पिणी नवजीवन एवं नवीन स्फूर्ति से युक्त हो जाती है उसी प्रकार स्त्रियाँ भी युद्ध भूमि में अपने तेजोमय, स्फूर्तियुक्त उत्साह का प्रदर्शन किया करती हैं। यथा-

अमूः पारे पृदाक्व स्त्रिषप्ता निर्जरायवः। तासां जरायुभिर्वयमक्ष्या३वपि व्ययामस्यघायोः परिपन्थिनः॥

विषूच्येतु कृन्तती पिनाकमिव बिभ्रती।
विष्वक्पुनर्भुवा मनोऽसमृद्धा अघायवः॥

न बहवः समशकन्नार्भका अभि दाधृषुः। वेणोरद्गाइवाभितो ऽसमृद्धा अघायवः॥

प्रेतं पादौ प्र स्फुरतं वहतं पृणतो गृहान्।
इन्द्राण्येतु प्रथमाजीतामुषिता पुरः॥[१९]

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेद में स्त्रियों के युद्धभूमि में प्रयाण, उनके वीरतायुक्त कार्यों का, सेना में प्रधान पद प्राप्त करने का तथा सैनिकों को संरक्षण प्रदान करने का वर्णन प्राप्त होता है। वैदिककालीन स्त्रियाँ पुरुषों के सदृश युद्ध में अपना योगदान दिया करती थी तथा वे अद्भुत साहस, पराक्रम, शूरवीरता और सुदृढ़ मनोबल से युक्त होती हुई पुरुषों के समान राष्ट्र सुरक्षा में योगदान देती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युद्धार्थ पर्वतीय सेना, संग्रहीता सेना एवं आशु सेना का प्रयोग-

वैदिक साहित्य में ऐसी सेना का भी उल्लेख मिलता है जो दुर्गम एवं पर्वतीय स्थानों पर निवास करती हुई पर्वतों के मध्य कन्दराओं में रहते हुए गुप्त रूप से अभ्यास किया करती थी। पर्वतीय सैनिक की स्तुति करते हुए यजुर्वेद में कहा गया है- **नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च॥१६/२९॥** **संग्रहीता सेना** एक विशिष्ट प्रकार की सेना होती थी जो युद्धकाल में इधर-उधर बिखरे हुए अस्त्र-शस्त्रों को तथा युद्ध-सामग्री को एकत्र करके संग्रह करने का कार्य किया करती थी। इस कार्य को करने वाले सैनिकों को 'संग्रहीता' कहा गया है। वेद में इनको नमन करते हुए कहा गया है-

नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो नमो रथिभ्योऽअरथेभ्यश्चवो नमो नमः क्षत्तृभ्यः संग्रहीतृभ्यश्च वो नमो नमो महद्भ्योऽअर्भकेभ्यश्च वो नमः॥।[२०] इस प्रकार की सेना में अनेक सैनिकों को नियुक्त किया जाता था। आशु सेना से अभिप्राय सेना के एक शीघ्रगामी विभाग से है। वेद में द्रुतगामी सेना और द्रुतगामी रथ का वर्णन करते हुए उन्हें नमन किया गया है-

नमो वन्याय च कक्ष्याय च नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय च नमऽआशुषेणाय चाशुरथाय च नमः शूराय चावभेदिने च॥[२१] वैदिक आर्य बात से सम्यक् रूप से परिचित थे कि आक्रमण के समय तत्काल कार्यवाही करने वाले सैनिक सतर्क, सचेत तथा द्रुतगति वाले होने चाहिये ताकि राष्ट्र की सम्यक्तया रक्षा की जा सके।

शिपिविष्ट सेना, प्रहारक सेना, श्रुत सेना, अन्नायुध सेना-

युद्धभूमि में सैनिकों के लिये पशुओं का उपयोग प्रायः किया जाता था, इस कारण से सेना के पशुओं की देखरेख, उनकी रक्षा एवं पालन-पोषण के लिये एक विभाग का गठन किया जाता था। वैदिक साहित्य में पशुपालन विभाग जिसे 'शिपिविष्ट विभाग' नाम से अभिहित किया गया है, उसको नमन किया गया है। यथा-

नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च॥[२२]

प्रहारक सेना के अन्तर्गत सैनिक आते हैं जो शत्रु को छिन्न-भिन्न करने की सामर्थ्य रखते हों। वेद में इस प्रकार के वीरों को नमन किया गया है।[२३] वेद में विजयेच्छुक वीरों द्वारा प्रहारक सेना पर विजयप्राप्ति का वर्णन प्राप्त होता है। यथा- **उतप्रहामतिदीवा जयति** (अथर्व०६.५०.६)। ये प्रहारक सैनिक शत्रुओं को यथाशीघ्र तितर-बितर किया करते थे जिससे कि कि विरोधी शासक का मनोबल क्षीण हो जाये। **श्रुत सेना**, सेना का एक विशिष्ट प्रकार का विभाग होता था जो युद्धक्षेत्र की अपनी स्थिति की सूचना अपने केन्द्र को प्रदान करता था तथा अपने सैनिकों के मनोबल में वृद्धि के लिये इसी सेना का एक विभाग विरोधी शत्रुपक्ष के समाचारों को जानने का प्रयास करता था। वेद में इसकी प्रशंसा करते हुए कहा गया है- नमो बिल्मिने च कवचिने च नमो वर्मिणे च वरूथिने च **नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च** नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च॥[२४] **अन्नायुध सेना**, वेद में शुद्ध अन्न के अभाव से ग्रस्त क्षेत्रों में शुद्ध अन्न पहुँचाने की व्यवस्था के लिये एक पृथक् विभाग की संरचना की गयी थी। वेद में ऐसे सैनिक को नमन किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है जो युद्ध क्षेत्र में शुद्ध भोज्य सामग्री को पहुंचाते हैं।[२५]

वात-विज्ञानयुक्त सेना, भूगर्भ सेना सम्बन्धित विश्लेषण-

वैदिक साहित्य में इस प्रकार के वायुविज्ञान-वेत्ताओं का उल्लेख मिलता है जो वायु को नियन्त्रित करने तथा स्वेच्छापूर्वक उसे प्रवाहित करने में समर्थ थे। वहाँ सैनिकों के इस प्रकार के विभाग की संरचना की गयी थी जो वातविज्ञान के विशेषज्ञों की सहायता से वातविज्ञान रूपी आयुध का प्रयोग शत्रु पर कर सकें तथा स्वपक्षीय जनों की रक्षा कर सकें। ये सैनिक वायु में रोगोत्पादक एवं विनाशक द्रव्यों के मिश्रण द्वारा शत्रुपक्ष का विनाश किया करते थे। वेद में इस प्रकार की विद्या में प्रवीण रुद्र एवं मरुद् वीरों के नाम उल्लेखनीय हैं। वेद में रुद्र वीरों को उनके कार्यों के लिये नमन किया गया है। उदाहरणार्थ मन्त्र द्रष्टव्य है-

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वातऽइषवः। तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः। तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः॥[२६]

वेद में **भूगर्भ सेना** भी उल्लेख मिलता है। वहाँ तीनों लोकों की सुरक्षा की दृष्टि से भूगर्भ में रहने वाले जीवों की रक्षा के लिये ऐसे सैनिकों की व्यवस्था की गयी थी जो शस्त्र धारण करने वाले शत्रुओं से उनकी रक्षा कर सकें। यजुर्वेदानुसार नीलग्रीवा वाले, श्वेतकण्ठ वाले, पृथिवी के गर्भ में रहने वाले एवं गतिशील सैनिकों का यह विभाग सहस्त्र योजन परिमाण वाले देश में शत्रु के विनाश के लिये धनुष धारण किया करता था।[२७]

इस प्रकार उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि वेद में विविध प्रकार की सेनाओं का उल्लेख प्राप्त होता है।

पाद-टिप्पणियाँ-

१ ऋग्०६.४७.३१॥

२ ऋग्०५.३१.९॥

३ ऋग्०४.३८.१-५॥

४ स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता। विप्रेभिरस्तु सनिता। ऋग्०१.२७.९॥

५ यजु०१६.२४॥

६ ऋग्०६.५९.३॥

७ दिवस्पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः। अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रं हविषा रथं यज॥ अथर्व०६.१२५.२॥

८ अथर्व०६.१२५.३॥

९ आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ उप जिघ्नते।
अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय॥
ऋग्०६.७५.१३॥

१० यजुर्वेद २९.४५॥

११ ऐधेव यामन्मरुतस्तुविष्वणो युधेव शक्रास्तविषाणि कर्तन॥ ऋग्०१.१६६.१॥

१२ अथर्व०५.२१.८॥

१३ वृष्णे यत्ते वृषणो अर्कमर्चानिन्द्र ग्रावाणो अदितिः सजोषाः। अनश्वासो ये पवयोऽरथा इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्यून्॥ ऋग्०५.३१.५॥

१४ भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिरुषः सूनृते प्रथमा जरस्व। पश्चा स दघ्या यो अघस्य धाता जयेम तं दक्षिणया रथेन॥१.१२३.५॥

१५ ऋग्०५.३०.९॥

१६ ऋग्०१०.१०२.११॥

१७ इन्द्राण्ये तु प्रथमाजीता मुषिता पुरः-
सामःपूर्वा०१.२७.१४॥

१८ तै०सं०२.२.८१॥

१९ अथर्व०१.२७.१-४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

---

२० यजु०१६.२६॥

२१ यजु०१६.३४॥

२२ यजु०१६.२९॥

२३ नमो वन्याय च कक्ष्याय च नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय च नमऽआशुषेणाय चाशुरथाय च नमः शूराय चावभेदिने च॥ ॥यजु०१६.३४॥

२४ यजु०१६.३५॥

२५ नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वातऽइषवः। तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः। तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः॥ ॥यजु०१६/६६॥

२६ यजु०१६.६५॥

२७ नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वाऽअधः क्षमाचराः। तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥१६/५७॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotiḥ
ISSN 2277-4351

Vol.1, No.2 (162-165) Jan-jun 2013

सामवैदिकचिन्तने प्रकृतिमानवयोः सम्बन्धः

(रामराजउपाध्यायः, निदेशकः पौरोहित्यप्रशिक्षणपाठ्यक्रमस्य, श्रीलालबहुदारशास्त्री संस्कृतविद्यापीठे, नवदेहली-१६)

सा[१] च अमश्चेति ततः साम्नः सामत्वम् इत्यस्मिन् सा अर्थात् ऋचा अमः नाम स्वरो वर्तते। अर्थात् यस्या ऋचाया उपरि स्वरारोहणं कर्तुं शक्यते तस्या नाम ऋचा विद्यते। सामविषये प्राप्यते-[२] ऋच्यध्यूढं साम गीयते।

परञ्चैवं प्रश्न समुदेति यत् सामवेदस्यावश्यकता काऽऽसीत्। यतोहि सामवेदे ऋग्वेदस्य मन्त्रास्सन्ति। तत्र पृथक् पञ्चसप्ततिर्मन्त्रा एवं सामवेदस्य विद्यते। सामवेदे ऋग्वेदस्य ते एव मन्त्राः संगृहीतास्सन्ति ये गीयमाना विद्यन्ते। यतोहि ऋचां गायनेन देवानां प्रसादयित्वा पुरुषार्थचतुष्ट्यानामाप्तिः क्रियन्ते। सामवेदे यत्किमपि चिन्तितमस्ति तत्सर्वं प्रकृतिमानवसंबंधात्मकमेव। मानवस्य जीवनं प्रकृतिरुपर्याधारितं विद्यते। मानवस्य संरक्षणार्थं प्रकृतेः संरक्षणं चरमपरमोद्देश्यम्।

इदानीं जनाः वदन्ति पर्यावरणं प्रदूषितं भवति। पर्यावरणं किमस्तीति विषये, प्रकृतेः स्वरूपमपरं पर्यावरणं विद्यते। यावत् प्रकृतेः संरक्षणं न क्रियते तावत् पर्यावरणं शुद्ध भविष्यतीत्यनौचित्यचिन्तनं प्रतिभाति। विपुलवेदविद्याविचारकाः वदन्ति प्रकृतिमानवसंबन्धः वेदस्य प्रमुखप्रतिपाद्यमस्ति। जैमिनीयोपनिषद्ब्राह्मणे[३] सृष्ट्युत्पत्तिः प्रजापतिद्वारा अभवदिति लिखितमस्ति। सृष्टिप्रक्रियायां आकाशान्तरिक्षसलिलादीनां वर्णनमादौ जैमिनीयब्राह्मणे प्राप्यते। आपो वै अन्तरिक्षमित्यनुसारेण अन्तरिक्षाकाशयोः भावैक्यं मन्यते। जैमिनीयोपनिषदि प्राप्यते अन्तरिक्षे सूर्यः पृथिवीश्च कथं स्थिता वर्त्तते? समाधाने सत्येते सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितास्सन्ति। सृष्टिप्रक्रियायामदितिरेव प्रकृतिः विद्यते। आदित्यश्चन्द्रः विद्युज्जलमन्तरिक्षादि पञ्चप्रकृतयस्सन्ति। सृष्टौ यत्किमपि जातत्वं जनितत्वञ्च विद्यते तत्सर्वं प्रकृतिरेव जैमिनीयोपनिषद्ब्राह्मणानुसारेण [४] प्रकृतिपुरुषयोः व्याप्य-व्यापकसम्बन्धः विद्यते।

संक्षेपेण वक्तुं शक्यते प्रजापतिः हिरण्यगर्भ एक एव। व्याहृतित्रयं द्वारा लोकत्रयस्य रचना जाता। प्रतिलोकस्याधिष्ठातृदेवता अदितिपुत्ररूपेण स्थापितास्सन्ति। विश्वस्य सर्वे पदार्थाः स्वकीये कारणे एव विलीनाः भवन्ति। इदमस्ति प्रलयस्य स्वरूपम्। जैमिनीयब्राह्मणानुसारेण[५] प्रजापतिः यज्ञेन विश्वस्य सृष्टिमकरोत्।

सामविधानब्राह्मणे प्राप्यते [६] सृष्टेः पूर्वं प्रलयावस्थायां ब्रह्म ह वा इदमग्र आसीत्। अस्य तेजो रसो अत्यरिच्यत। स ब्रह्मा समभवत्। स तूष्णीं मनसाध्यायत्। तस्य यन्मन आसीत् स प्रजापतिः अभवत्। अस्मिन् विषये सायणाचार्याः निर्दिशन्ति यत् ब्रह्मणः सकाशात् हिरण्यगर्भस्योत्पत्तिरभवत्। व्याख्यां कुर्वन् तैरुच्यते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उक्तलक्षणस्य सिसृक्षि ब्रह्मणोऽत्र रसः संसारहेतुभूततेजोमयाधिष्ठानभूतं स्रष्टव्यविषयसामर्थ्योपेतं सत्वाख्यं विज्ञानम् अत्यरिच्यत् अर्थात् रजस्तमसि अभिभूय स्वयमेवान्तरितोऽभवत्। तदतिरिक्तः सत्त्वगुणो मायांशो ब्रह्मा व्यष्टि-समष्ट्यात्मना परिवृढः प्राणहिरण्यगर्भसूत्रात्मादि संज्ञकः समभवत् सम्यगुत्पन्नोऽभूत्। विषयेऽस्मिन्नुद्घोष्यते यत् तस्य ब्रह्मणः सिसृक्षीः रसस्तपवोऽधिष्ठातृ विज्ञानात्मकस्तेजस्ततो विभूयान्मिमेष। स प्रथम उन्मुखो ब्रह्मा हिरण्यगर्भः प्राणादिसंज्ञकः समभवत्।

उपर्युक्तेन कथनेनैवमनुभूयते सः हिरण्यगर्भाख्यो ब्रह्मा तूष्णीं उपरतः समस्तव्यापारः सन् मनसा केवलेन निर्विषयेण अध्यायत् सृष्टव्यविषयचिन्तामकरोच्च। केन प्रकारेण सृष्टि भविष्यति। अथवा केन प्रकारेण संसारस्य रचना भविष्यति। अस्मिन् विषये स ब्रह्म अचिन्तयत्। गम्भीरचिन्तायाः निवारणे ध्यानस्यावश्यकता अस्ति तस्मात् कारणात् तस्य ध्यायमानस्य ब्रह्मणः यन्मनः आसीत् स सृष्टव्योपाय विषयाकरणशक्तिरस्ति। सः सैव मनोरूपा शक्तिः प्रजापतिः प्रजानानां सृष्टाः एतन्नामको विराडादिसंज्ञया व्यवह्रियमाणः सम्भूतः। यदा ब्रह्मा ध्यानमकरोत् तदा यन्मनसि आसीत् सः निवारणार्थे सृष्टव्योपायस्य विषये एकं समाधानं तस्याग्रे आगच्छत् यत् मानवानां सृष्टिर्भवितुं शक्नोति परञ्च तेषां जीवनं कथं सुरक्षितं स्यात्। यतोहि केवलं सृष्टिः नास्त्यावश्यकमपितु तेषां जीवनं कथं भवेदित्यावश्यकम्। इदमेवचिन्तनमस्ति प्रकृतिमानवसंबन्धः॥

विषयेऽस्मिन् मानवजीवनाय प्रकृतेः संरचना जाता। प्रजापतेः मानवस्योत्पत्तिर्जाता प्रकृतेरप्युत्पत्तिर्जाता। कारणेनानेन प्रकृतिमानवयोस्संबंधः सहोदरस्य प्रतिभाति। सामविधानब्राह्मणस्य व्याख्यानावसरे सायणाचार्यस्योक्तिरस्ति तस्य विराडाख्य प्रजापतेः शिरः उत्तमांगः द्यौः द्युलोकः आसीत्।[5] तस्य द्यौः शिरः आसीद् उरोऽन्तरिक्षं मध्यं समुद्रं पृथिवी पादौ। अर्थात् उत्तमांगः द्यौः द्युलोक आसीत्। तथा उरः वक्षः तदुपलक्षितः मध्यदेश अन्तरिक्षं एतदाख्यं यद् द्यावापृथिव्योर्मध्यस्थानीयं मध्यभागं आसीत् तत्। इदमेव रूपमपरस्थानेऽपि लिखितमस्ति तथा मध्यभागान्तं प्रदेशावर्त्ति आश्रयणीयाश्रयशब्दः तत्समुद्रः आसीत् तथा पृथिवी प्रथिता भूमौ पादौ पादद्वयस्थानीया भवति। एतावता तत्र लोकत्रयात्मकमुक्तम्। द्यौः शिरस्त्याद्यवयवरूपत्वम् उपनिषदि वैश्वानरविद्यायाम् लिखितम्।

प्रकृतौ प्रथमं स्थानं द्युलोकस्य विद्यते। द्वितीयं स्थानमस्ति अन्तरिक्षस्य। उरो अन्तरिक्षमित्यनेनैवं प्रमाणी क्रियते यत् प्रजापतेः हृदयमन्तरिक्षं विद्यते। ततः समुद्रस्य रचना जाता। समुद्रस्य का आवश्यकता इति विषये प्राप्यते समुद्रजलस्यावशोषणं मेघाः कुर्वन्ति। यथावसरे समेषां संसारवासीनां जलस्यावश्यकतायाः पूर्तिर्भवति। अयं समुद्रः किमस्ति सूत्रे लिखितं यत् मध्यं समुद्रः अर्थात् मध्यस्थानमेव समुद्रोऽस्ति। ततो पृथिवीमरचयत्। अस्या रचनाया उद्देश्यं स्पष्टमस्ति। मानवानां जीवनं कस्योपरि भविष्यतीति विषये द्युलोके सम्भावना नास्ति। अन्तरिक्षेऽपि तथैव सम्भाव्यते। समुद्रेऽपि मानवानां जीवनं सफलीभूतं न भविष्यति। एतदर्थं स्पष्टमस्ति यत् मानवजीवनाय पृथिव्याः रचना जाता। पृथिवी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजापतेः पादौ विद्यते यतोहि सूत्रे स्पष्टमस्ति पृथ्वीपादौ।

सायणाचार्येणोक्तमस्मिन् प्रकरणे द्युलोकम्, अन्तरिक्षलोकं पृथिवीलोकञ्च लोकत्रयात्मकत्वसिद्धये तत एव सृष्टिं सृष्टस्योपजीवनाय साम प्रदानं चाह स वै इति। वै शब्दः प्रसिद्धः। स खलु प्रजापतिः इदं प्रतीयमानं विश्वं भूतं कृत्स्नं देवतीर्यङ् मनुष्यादि भूतजातं सृष्टवान्। सृष्टस्य तस्य उपजीवनं जीवनसाधनं साम प्रायच्छत् प्रकर्षेण दत्तवान्। अर्थात् प्रकृतेः आदौ सर्जनां कृत्वा इदं विश्वभूतं जगत् स असृजत्। परन्तु कस्यापि सृजनेनैव सर्वाणि कार्याणि न सिद्ध्यन्त्यपितु निर्माणानन्तरं सृजनानन्तरं वा केन प्रकारेण निर्मितस्य संसारस्य रक्षा भविष्यतीति महत्त्वपूर्णं कृत्यं विद्यते। प्रश्नस्यास्य समाधाने सामवेदीयब्राह्मणे समाधानमिदं प्राप्यते-[8] स वा इदं विश्वं भूतमसृजत्। तस्य सामोपजीवनं प्रायच्छत्। अस्य स्पष्टीकरणं सामस्वराणां प्रदर्शनावसरे प्राप्यते। सामस्वरबोधकतालिकानुसारेण सामवेदे सप्तस्वराः निगदिताः। नारदीय शिक्षायामपि प्राप्यते-

सप्तस्वराः त्रयो ग्रामाः मूर्छनास्त्वेकविंशतिः।
ताना एकोनपञ्चाशत् इत्येतत् स्वरमण्डलम्॥

अत्र सप्तस्वराणां विषये प्राप्यते-

षड्जश्च ऋषभश्चैव गान्धारो मध्यमस्तथा।
पञ्चमो धैवतश्चैव निषादः सप्तमः स्वराः॥

अत्र प्रथमो स्वरो विद्यते षड्जः। स्वरस्यास्य स्वरबोधकवर्णः **सा** इत्यस्ति। स्वरेणानेन देवानां तृप्तिर्भवति। पद्मपुष्पेवास्य स्वरस्य वर्णमस्ति। मयूरादागतोऽयं स्वरः। स्वरोत्पत्तिस्थानं कण्ठं विद्यते। स्वरस्यास्य प्रथमं गानमग्निनाभवत्। अस्य स्वरस्य देवता ब्रह्मा विद्यते। स्वरस्यास्योच्चारणस्थानानि नासिकाकण्ठतालुहृदयजिह्वादन्तानि सन्ति। अस्य स्वरस्योच्चारणस्य प्रत्यक्षसम्बन्धः प्रकृतेः सह विद्यते। प्रकृतौ वनस्पतयः पशुपक्ष्यादयः भवन्ति। अस्य स्वरस्य सम्बन्धः मयूरेण सह दृश्यते। पद्मपुष्पेति वनस्पत्यादयः स्वीक्रियते। इत्यनेन हेतुना अत्र वक्तुं शक्यते षड्जस्वरस्य संबन्धः प्रकृतेः सह प्राप्यते।

सामवेदस्य द्वितीयः स्वरो विद्यते ऋषभः स्वरः। स्वरस्यास्य स्वरबोधकवर्णः **रे** इत्यस्ति। स्वरेणानेन ऋषीणां तृप्तिर्भवति। शुकपक्षीवास्य स्वरस्य वर्णमस्ति। गोरादागतोऽयं स्वरः। स्वरोत्पत्तिस्थानं शिरः विद्यते। स्वरस्यास्य प्रथमं गानं ब्रह्मणाभवत्। अस्य स्वरस्य देवता अग्निः ज्ञायते। स्वरस्यास्योच्चारणस्थानानि नाभिकण्ठादयस्सन्ति।

सामवेदस्य तृतीयः स्वरो विद्यते गान्धारः। स्वरस्यास्य स्वरबोधकवर्णः **ग** इत्यस्ति। स्वरेणानेन पितृणां तृप्तिर्भवति। सुवर्णस्येवास्य स्वरस्य वर्णमस्ति। अजाविकागतोऽयं स्वरः। स्वरोत्पत्तिस्थानमनुनासिकं विद्यते। स्वरस्यास्य प्रथमं गानं सोमद्वारा अभवत्। अस्य स्वरस्य देवता गौ विद्यते।

चतुर्थः स्वरोऽस्ति मध्यमः। स्वरस्यास्य स्वरबोधकवर्णः **म** इत्यस्ति। स्वरेणानेन गन्धर्वाणां तृप्तिर्भवति। कुन्दपुष्पेवास्य स्वरस्य वर्णमस्ति। क्रौञ्चादागतोऽयं स्वरः। स्वरोत्पत्तिस्थानं हृदयं विद्यते। स्वरस्यास्य प्रथमं गानं विष्णुनाभवत्। अस्य स्वरस्य देवता ब्रह्मा अस्ति।

पञ्चमः स्वरो विद्यते पञ्चमः। स्वरस्यास्य स्वरबोधकवर्णः **प** इत्यस्ति। स्वरेणानेन देवपितृऋषीणाञ्च तृप्तिर्भवति। कृष्णवर्णस्येवास्य स्वरस्य वर्णमस्ति। कोकिलादागतोऽयं स्वरः। स्वरोत्पत्तिस्थानं गलाहृदयञ्च विद्येते। स्वरस्यास्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथमोच्चारणं नारदेनाभवत्। अस्य स्वरस्य देवता सोमो ज्ञायते।

षष्ठः स्वरो विद्यते धैवतः। स्वरस्यास्य स्वरबोधकवर्णः **ध** इत्यस्ति। स्वरेणानेन यक्षाणां तृप्तिर्भवति। पीतवर्णीयास्य स्वरस्य वर्णमस्ति। अश्वादागतोऽयं स्वरः। स्वरोत्पत्तिस्थानं मस्तकं विद्यते। स्वरस्यास्य प्रथमं तुम्बुरुऋषिणा गानमभवत्। अस्य स्वरस्य देवता आदित्यः विद्यते।

सप्तमो स्वरोऽपि निषादः। स्वरस्यास्य स्वरबोधकवर्णः **नि** नित्यस्ति। स्वरेणानेन भूतसमुदायानां तृप्तिर्भवति। सप्तरंगीयवर्णस्येवास्य स्वरस्य वर्णमस्ति। हस्तिमाध्यमेनागतोऽयं स्वरः। स्वरोत्पत्तिस्थानं सन्धयस्सन्ति। स्वरस्यास्य प्रथमं गानं तुम्बुरु ऋषिणाभवत्। अस्य स्वरस्य देवता आदित्यो विद्यते।

उपर्युक्तेन सामवेदीयस्वरमाध्यमेनैवं प्रतिभाति प्रकृतेः संरक्षणार्थमेव सामस्वराणामाविर्भावः सञ्जातः। यतोहि प्रकृतिसंरक्षणं विना मानवजीवनं संभावितं नास्ति। साधारणोदाहरणेनेदं सिद्धमस्ति। वैज्ञानिकाः वदन्ति वृक्षादयः कार्बनडाइऑक्साइडेति वायुः स्वीकुर्वन्ति ऑक्सीजनेतिवायुः च उत्सर्जन्ति। मानवाः ऑक्सीजनेति वायुः स्वीकुर्वन्ति कार्बनडाऑक्साइडेति च वायुः उत्सर्जन्ति। अत्रैवमनुमीयते वृक्षादीनां जीवनं मानवं विना तथा मानवानां जीवनं वृक्षादीन् विना न सम्भाव्यते। यतोहि वृक्षादीनां जीवनाय कार्बनडाइऑक्साइडेति आवश्यकं मानवानां जीवनाय ऑक्सीजनेति आवश्यकं विद्यते। अयमेवास्ति प्रकृतिमानवयोः संबन्धः। उभयोर्मध्य पूरकाख्यात्मकं सम्बन्धं दृश्यते।

एतावता वक्तु शक्यते मानवजीवनाय प्रकृतेः संरक्षणं परमावश्यकमस्ति। मानवानां वनस्पतिनाञ्च मध्ये आनुपातिको संबंधो भवेदिति प्राचीनाचार्याः वदन्ति। **पूर्त्तकमलाकर**ाख्यमेकं पौरोहित्यस्य अतिप्राचीनं पुस्तकं विद्यते। तस्मिन् पुस्तके तरुपुत्रकाख्यमेकं प्रयोगं प्राप्यते। तदनुसारेण प्रतिजनाः दश दश तरवः परिपालयन्तु स्वसन्तान इवेति निर्दिष्टः। इत्यनेनैवं ज्ञायते एकस्य जनस्य कृते दश तरवः आवश्यकास्सन्ति। एते यथा पर्यावरणं शुद्धं कुर्वन्ति यथावश्यकमस्ति एकस्य जनस्य। अर्थात् पर्यावरणसंरक्षणेन मानवजीवनं सुरक्षितं संरक्षितं भविष्यति। एतावता प्रकृतेः संरक्षणं कर्तव्यमिति भावः॥

पाद-टिप्पणियां-

१ बृहदारण्यकोपनिषदि १.३.२.२

२ छान्दोग्योपनिषदि

३ प्रजापतिः प्रजा असृजत्- जै०उप०ब्रा०१.३.१.१

४ जै०उप०ब्रा०१.२.३.३

५ जै०ब्रा०१.६७

६ सा०वि०ब्रा०१.१.१

७ सा०वि०ब्रा०१.१.५

८ सा०वि०ब्रा०१.१.६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotiḥ
ISSN 2277-4351
Vol.1, No.2 (166-178) Jan-jun 2013

Gratitude and Devotion in the Vedic Tradition

(Shashi Tiwari (Retd.), Maitreyi College, University of Delhi, &
General Secretary, WAVES, India)

The Vedic religion, as it developed through the centuries as 'Hindu Religion' incorporated ideas of different orders. A variety of beliefs, customs, rites and philosophies have amalgamated here to evolve an organic system. From the very beginning, India has witnessed conflicting civilizations. Each has contributed its own share to the common storehouse of Hinduism. According to the famous philosopher, and former President of India, Honorable Dr. Sarvepalli Radhakrishnan, 'Hinduism is more a culture that a creed.' We can see that the spirit of Hinduism is expressed in various ways through rituals, modes of worship, temples, philosophy, theology, dance, music, festivals, values and beliefs, but all have their base in Vedic concepts.

Long tradition of Hinduism has produced many scared works. The most ancient and authoritative are the revealed literature, the Vedas '*Śruti*'. There are the *Samhitās*, *Brāhmaṇas*, *Ā raṇyakas* and *Upaniṣads*. The Upaniṣads, record the philosophical and spiritual teachings given by the ancient seers. In addition to this, Hinduism has a vast corpus of auxiliary scriptures including the two great epics, the *Ramā yan. a* and the *Mahābhārata*. The *Bhagavad- Gītā* is regarded as the essence of the *Mahābhārata*. These epics have had a profound influence on all aspects of Hindu life and culture in India for thousand of years. Then there are eighteen Purāṇas, rich in myth and symbol of which the best known is the *Shrimad-Bhāgavatam* but traditionally epic and purāṇas are considered as the extension of Vedic texts in their contents and style.

A verse from the Vedas can be considered the essence of Vedic concept of openness - '*Ā no Bhadrāḥ kratavo yantu Viś́vataḥ* (YV 25.14; RV1.89.1) meaning 'Let the noble thoughts come to us from every side'. This statement reflects the spirit of Vedic outlook which is stated in another Vedic verse as- *Ekam sad viprā bahudhā vadanti* (RV.1.164.46), 'there is one and the same Reality but the wise ones describe it in many ways.' That Reality is responsible for generation (creation), operation

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(sustenance), and dissolution (merger). The Upaniṣad declares that 'one Supreme Being manifests in all humans, animals and other beings and one who understands this happens to be liberated from hatred. Do not create enmity with any one as God is within every one'
- *Yastu sarvāṇi bhūtāni ātmanyevā-nupaśyati/ sarvabhūteṣu cātmānam tato na vijugupsate//* (Īśa. Up. 6).
The tolerance for others is an essential quality for spiritual development of any individual. The Sanskrit wisdom proclaims- '*Vasudhaiva kutumbakam*' meaning 'the entire world is one family'.

I. *Ṛta* - The Inherent Law Principle

In Vedic view, *Ṛta* can be seen as the inherent law principle of the whole entity. The Vedic seers studied nature's drama very minutely. Sand-storm and cyclone, intense lightening, terrific thunder-claps, the heavy rush of rain in monsoon, the swift flood in the stream that comes down from the hills, the scorching heat of the sun, the cracking red flames of the fire, all are witness to power which is beyond man's power and control. They felt the greatness of these forces and activities and adorned them distinctively in the Vedic *Mantras*. Their realization of divine supreme power for managing creation, movement, change and destruction in the whole universe was not without any set arrangement. They called that order '*Ṛta*' after good deals of observation. Simply it is Eternal Order or Eternal Law. The word is obsolete in modern times, but its negative *Anṛita* (RV.1.105.6) meaning literally, disorder or chaos, has been used from ancient times as the negative of truth. *Ṛta,* in broader sense, is more than truth as it includes justice and goodness. *Ṛta* gives integration to natural substances, harmony in environment and reduces chaos to cosmos. Hence, the conception of *Ṛta* has an aesthetic content. It implies splendor and beauty. It is controlling and supporting power. It upholds sun in the sky. *Ṛta* as Universal Law governs everything in the cosmos. The whole of the manifested universe is working under it. This is the reason that the Vedic gods, upholding *Ṛta*, are all lawful, and beautiful and excellent. The brilliance and glory are their significance attributes. *Ṛta* exists before the manifestation of any phenomena. The phenomena of the world are shifting and changeable, but this principle regulating the periodical recurrence of phenomena is constant.

Ṛta implies not only the religious and philosophical framework but a total world-view, including the scheme of right conduct under various circumstances. It also implies such concepts as justice, virtue, morality, righteousness, law and duty. Most importantly, love of God is regarded here as the essence of righteousness because through it man becomes pure, kindhearted, honest and virtuous. On

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

the other side, *Ṛgveda* establishes *Sam* as ultimate goal in life for being peaceful and happy. All the natural energies, activities, worldly materials and resources are wished to be in harmony and concord for the welfare of all beings (RV7.35.1-15). Harmonization brings desired peace and smooth management which is result of *Ṛta*.

II. God-Realization and Its Ways

The Vedic view of the Divine is much subtler and deeper in spiritual content than the cults ordinarily known as monotheism and polytheism. This makes a difference in the entire conception of life and religion. According to the Vedic philosophy, God-realization is the main aim of human life. *Taittirīyopaniṣad* proclaims that god is One and That is the truth. - *Satyam jañam anantam brahma* (Tai. Up. 2.1.1). God is the sole controller of universe. He is present in all hearts. He is one and indivisible. The whole world is his creation. God is giver of light and warmth to the sun, the moon, and the stars and even to fire according to *Kathopaniṣad.* He is supreme power in the whole nature. One Supreme God is addressed by different names as *Devas*.

After a careful consideration, Upaniṣ adic philosophy emphasizes that God is the only object of loving adoration. He alone is to be praised and adored for Divine assistance through out life. Man can have his direct relation with God without any hindrance and hitch because He looks upon every one and cares for all beings. God can help one out of one's sorrows and imperfection. Those who realize and praise God as their savior, creator and father, seek eternal bliss and not others. *Muṇḍakopaniṣad* declares–*yamevaiṣa vṛṇute tena labhyaḥ* (Kath.Up. 1.2.23; Mund.Up. 3.2.3). In fact, attainment of salvation is the ultimate goal of all means in ancient Indian thoughts but without the grace of God it is not possible. As says *Kaṭhopaniṣad* –'By the grace of God, Self (*Ātman*) can realize the glory of Self.

-Dhatuḥ prasādānmahimān-amātmanaḥ (Kath.Up. 1.2.23)

Kenopaniṣad (4.6) and *Chāndogyopn-iṣad* (3.14) have laid stress on the *Upā-sanā* of Brahman , which is regarded as the main subject of *Sāmveda Saṁhitā* .

Vedic religion prescribes openness of thoughts and beliefs. That is the reason we find here description of different modes of worship and various ways of realization of God. Among them four ways are important-

1. The path of knowledge (*Jñāna)*
2. The path of action *(Karma)*
3. The path of Meditation *(Yoga)*
4. The Path of Devotion *(Bhakti)*

It is significant to note that first three paths involve Devotion *(Bhakti*) for their fulfillment.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Realization of Self is the path of knowledge (*Jñāna).* But it appears that the way of *Jñāna* passes through the way of devotion, *Bhakti.* It needs Self-determination and renunciation with absolute faith in the Great God. The devotion to God is an innermost means of gaining true knowledge. Knowledge devoid of devotion remains as mere information. Knowledge attains its consummation when the aspirant not only knows God, but he feels a consuming love to attain Him. Among all charities imparting of divine knowledge is regarded as the best charity by Upaniṣads and *Manusmṛti.* The man of knowledge is called in the Vedas *Vipra* (wise), *Kavi* (Poet-Philosopher) and *Ṛṣi* (seer), and by many such words. Prayers for wisdom (RV 7.32.26; AV 18.3.67), mental power (RV 3.62.10), mental perfection (RV10.25.1), talent (RV 8.4.16; YV 32.14), knowledge of Brahman (AV 11.5.5), and *Brahmcharya* (AV 11.5.17-19) are done in Vedic verses here and there. It is regarded that knowledge of Supreme is essential '*Ya it ta vidus ta ime samāsate*' (RV 1.164.39) meaning 'Those who have known That- they are perfect'.

The second is the way of action (*Karma)* which means performance of all actions and activities without any desire or motive. In the late religious literature we find a tendency to consider action useless or at best as a necessary evil, but in the Vedas action is accepted as a vital part of human life. The Vedas give emphasis on living a full life span with health and vigour and in joy of being (RV 7.66.16; YV 36.24; AV 19.67.1-7). The Vedic God Indra is the most typical representation of this conception. The path of *Karmayoga* recommends that actions performed without attachment to their results do not bind one –'*Na karma lipyate nare'*(YV40.2*)* meaning 'thus actions do not cling to man' and hence lead to God. Śrī Kṛṣṇa called it *Niṣkāma Karma* in Gītā. He said, 'Thy business is with the action only, never with its fruits; let not the fruit of action be thy motive, nor be thou to inaction attached' (Gītā 2.47). The Indian philosophic system classifies work in three categories – *Sāttvik, Rājas*, and *Tāmas*. *Niṣkāma Karma* comes under the first category, while *Sakāma karma* and *Akarma* belong to the second and third categories respectively. However, by self-control and modulation of desires, one can elevate oneself from an *Akarma* state to the *Niṣkāma* state. *Niṣkāma* does not mean that one would not get fruits out of it. It only suggests that one should work for its own sake and the best of fruits would follow automatically. For achieving this state, Srī Kṛṣṇa suggests dedication of fruits of all activities to Supreme God. He, who acts offering all actions to God, shaking all attachment, remains untouched by sin as lotus leaf by water.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

In such cases of complete surrender, it is combined with meditation and single minded devotion of God. God takes all the responsibilities of the individual and rescues him from troubles. Here too, devotion and remembrance of God is essential for detachment from the fruits of actions. The way of action leads to the realm of devotion, when fruits of actions are dedicated to God. With this view the *Iśopaniṣad* can be referred here. The last four mantras of this Upaniṣad are regarded by Ācharya S ań kara, the great commentator, as prayer of a person who has performed actions through out his life and now, at the final departure time, he is asking a superior region (*loka*) from God.

For the path of *Yoga*, the method of *Iśvarapraṇidhāna* (*Yogasūtra* 1/23) is prescribed by Maharshi Patañ jali. It again means 'dedication to Lord'. He says- 'Restriction of the fluctuations of mind i.e. *Yoga* can be attained through dedication to the Lord. Meditation is a necessary accessory of devotion. The Upaniṣads and Gītā emphasize on the contemplation of God at every moment. *Śravaṇa, manana, nididhyāsana* are said three steps of contemplation. In *Bṛhadāraṇyaka Upaniṣad* finally Yā jñ avalkya explained to Maitreyi, that it is the Self that should be realized, should be heard of, reflected on, and meditated upon.' - *Ātmā vā are draṣṭavyaḥ śrotavyo mantavyo nididhyāsitavyo Maitreyi.* (Br. Up. 4.5.6) According to Vedic philosophical thoughts, the God can be realized through the practice of meditation, chanting of His name 'Om', surrendering before Him, and absolute dedication. A devoted Yogī realizes His glory and greatness in the form of His grace. Thus these paths are associated directly or indirectly with the devotion to God.

III. The Path of Devotion (*Bhakti*)

Of the different ways by which we can concentrate our lives in the Supreme Lord, the way of devotion, the *Bhakti Marg* is regarded most accessible to all, may be the illiterate or the literate. It is the path of devotion to God and submission to His will. The Sanskrit term '*Bhakti*' means experience as well as practice, reverence as well as love and adoration to God. Gratitude and devotion to God is defined variously in the ancient Indian scriptures. There are many Sanskrit scriptures dealing devotion as their main theme. *Sāṇḍilya-Sūtra* (1.1.2) defines *Bhakti* as the deepest attachment and intense longing for God. *Nāradabhakti-Sūtra* (1.2) defines *Bhakti* as the highest form of love towards God. The *Bhagavadgītā* treats the way of devotion at length. The excellence of *Bhakti* is clearly brought out in the Gītā. Devotion and admiration for God is its highest teaching. This topic has been treated mainly in chapter twelve and in some sections of other chapters of this great treatise. In many places, Gītā states that the Supreme state is

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

attainable through the practice of devotion only. Here, undoubtedly devotion is described as surest, swiftest and easiest path. Devotion to God with all gratitude is regarded as the culmination of all paths in ancient religion of India. But the Vedas are the foundation of this devotional path. Here the Divinity is contemplated as the Lord and in most affectionate terms, as Father, Mother, Brother, Guest and so on. The worshiper seeks Divine Bliss (*Swasti*). He prays for Divine help (*Ūti*), benediction (*Śam*), protection (*Sarman*), assistance (*Avas*), mercy (*Mṛḍa*) benevolence (*Sumati*), love(*Vena*) etc. God is the Saviour (*Trātā*) , the merciful (*Marḍitā*) and protector (*Avitā*). He is the most beloved (*Preṣṭhaḥ*) and best (*Śreṣthah*) -RV 10.156.5. Here superlatives are very significant. He as well as the worshiper is described as the Loving Being (*Vena*- YV 32.8). According to Vedic ideology Divinity is common and universal.

The principal centre of spiritual life is the heart. By inward prayer, we enable the heart to participate in the union with God. By devotion and prayer we attain a state of mind in which we become detached from every thing pertaining to the world and are directly united with God. Devotion (*Bhakti*) includes faith and love. The faith and devotion are like oars of a boat which lead life towards God. Meditation of God is important for devotion because through it a devotee reaches nearer to God. The invocation of the Divine Names is a part of the spiritual movement of *Bhakti*. Attributes and characteristics of God are constantly chanted through these names in the prayers. Praise of the One Divine Being is done in prayers of all Indian languages with many names and forms.

In Vedas, *Om* and *Udgītha* are referred to as important names for the chanting of Brahman. It is believed that truly devotional and spiritual practice is constant repetition of the name of the God. 'Remember Govinda, remember Govinda, remember Govinda, O unintelligent! - *Bhaja Govindam, Bhaja Govindam, Govindam Bhaja mūḍhamate*- is a famous prayer sang by great philosopher Śaṅkara who propounded *Advaita* philosophy on the basis of Vedas. Through his inner joyfulness and natural bliss a devotee approaches God, the Merciful and Absolute Bliss. Prayer to God in pain and pleasure is a simple attribute of *Bhakti*.

In the way of devotion, special attention is given to the path of surrender and refuge to God. Sri Kṛṣṇa began to teach Arjun only when he fully surrendered at His feet accepting himself as His disciple. Gītā ends with this note that whoever surrenders to God with his entire ego, will be relieved from all sins. God saves one from all sins and sufferings who takes His refuse. Lord Kṛṣṇa says in Gītā, "By single-minded devotion to Me, it

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

may be possible to understand, to see and enter Me" (11.54). He promises that "My devotee shall never perish" (Gītā 9.31) and he will be protected from every trouble in his life. In short, following are the essential requisites in the path of devotion and gratitude to God, according to Vedic tradition:

-Single minded devotion to God
-Meditation and chanting of prayers
-Perfect control over mind and senses
-Absence of attachment
-Complete surrender to God
-Seeking Divine Grace and kindness

Devotion to God is regarded the simplest attitude and the most effective way of attaining the highest realization in Hindu tradition ever since Vedic times. For a devotee all actions become the veritable offerings to the Supreme. All his thoughts become God-centric. He is simply to accept God as the only object of his thought, word and action. His life and existence is devoted to living in consonance with His will. A genuine urge and desire is sufficient to make the God take care of the devotee. God is never partial and is equal towards all beings. But since the true devotee always worships Him devotedly, He stands for him and looks after him completely.

IV. Devotion with Knowledge

Knowledge and devotion are complementary. Knowledge and love of God are ultimately one and the same because knowledge is the foundation of devotion. It is typical of Vedic worship that the worshipper seeks the knowledge of the Object to be worshipped. His devotion is not blind, but based on enlightenment. The Devotee asks, 'who was manifested as the one Lord of creation? Who upheld this earth and the sky? The Divine being was existed in the beginning. Then to whom we shall adore with our oblations?'

- *Hiraṇyagarbhaḥ samavartatāgre Bhū tasya jātaḥ patireka āsit. Sa dādhāra pṛthivīm dyām utemām kasmai devāya haviṣā vidhema//* RV 10.122.1

The devotion is best cultivated when one has accurate knowledge that Supreme resides in all creatures, and is the real motivating force of all actions, and is means and goal of all our attainments. The second verse says, 'He who bestows soul-force and vigour, whose laws the whole world including deities obeys.'

- *Ya ātmadā baladā yasya viśvam upāsate praśiṣam yasya devāḥ* / RV 10.121.2;YV 23.1.

The doctrine that all men, high and low, are equal before God happens to be the central idea of devotion. The sense of essential divinity of man is a special feature of Vedic religion and spiritual idealism. Man establishes his kinship with divine in the mother's womb according to *Ṛgveda* (8.83.8). The path of knowledge removes the ignorance which creates diversity of all living beings. One who realizes the Divine as the Loving One finds the

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

whole world united in Him, and the universe comes to have one home.

- *Venas tat paśyan nihitam guhā sad yatra viśvam bhavatyekanīḍam* /YV 32.8

In fact, it is knowledge (*Jñāna*) that finds fruition in devotion. There remains no scope for dualism and diversity in devotion. It is the basic realization of his imperfection that makes the devotee grateful and appreciative to the Lord. The thirst for union with the Lord is nothing but fervent yearning for perfection.

V. Divine Grace and the Devotee

While experiencing devotion to Supreme God, worshiper looks upon Him as Father, Creator, Saviour, Great Support, Helper, Friend, Merciful One and Most Beloved and prays for His grace. There are numerous Vedic mantras which express this type of feeling of devotee which is according to *Bhakti* ideal. For instance, a few are given below:

-*Yo naḥ pitā janitā yo vidhātā*/ RV 10.82.3

-*Sa naḥ pitā janitā sa uta bandhuḥ*/ AV 2.1.3

-*Sa no bandhr janitā sa vidhātā*/ YV 32.10

-*Uta vāta pitāsi na uta bhrātota naḥ sakhā*/ SV 1841

For a sincere devotee, God is full source of all strength, spiritual as well as physical. This results in absolute surrender to Him. In Him he has his ultimate refuge. Consequent upon the complete surrender, the divine grace (*Kripā*) comes. A *mantra* of Agni describes him as the great refuge of man, 'I will bring you oblation. I will send you my prayer. You are adorable in our invocations. O Deity! O King! You are fountain in the desert to a worshipful man.'

-*Pra te yakṣi pa ta iyarmi manma bhuvo yathā vandyo haveṣu/ Dhanvanniva prapā asi tvamagna iyakṣve pūrave pratna rājan*// RV 10.4.1

Here we find an attitude of worship in keeping with what has come to be known latterly as the spirit of *Bhakti*. As in the desert the thirsty man is saved by a fountain of water found in oasis, so in the world man is saved by Divine grace. When love deepens and absolute surrender happens, the grace of God descends on the devotee. God seems to be under the control of such a devotee. In Gītā, Lord Kṛṣṇa says, "He who is ever content, harmonious, self-controlled, determined, with mind and reasons dedicated to Me, he, My devotee, is dear to Me" (Gītā 12.14).

The worshiper seeks only Divine Bliss, help, benevolence, love, and protection. When a devotee disregards everything except devotion to God, it becomes responsibility of God to take care of the devotee. The devotee regains peace by meditation and seeks grace of God by prayer. The attractions of love between the worshipper and the Deity have found fine comparisons in a *mantra*. ' Like cattle to the village, like warriors to their horses, like loving milky cows to their calves, like the

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

husband to the wife, may the deity, the Upholder of the heaven, Lord of all bliss, turn towards us'.

- *Gāva iva grāmam yuyudhi ivāsvān*

vāśreva vatsam sumanā duhānā/

Patiriva jāyām abhi no nyetu dhartā

divaḥ savitā viśvavāraḥ//RV 10.149.4

He experiences the grace of God within him in every situation. God does not refuse His grace to any one who is his sincere devotee. Grace is said to be divinely bestowed to devotees without any discrimination. According to this, the chief thing in religion is Divine grace which is most needed by the humble and distressed. The devotee constantly realizes that all he has and all that he enjoys are from God who in His infinite kindness has endowed him with these. Even a *Jñāni* or *karmī* worships Almighty for His grace at the time of his death for better future.

VI. God's Gifts to Man and Man's Thanks to God

The gifts of God to men are as varied as men are varied. In Vedic way of life devotee expresses thanks with all modesty to God and praises Him with all sincerity for his well-being and his achievements from the sunrise till the end of the day through performing various religious practices, *yajans* and prayers. Praise and thanks are due to Him for life, health, food, intelligence, society and the whole creation. All the achievements and capacities in life are only possible due to the grace of God. Elements of nature that sustain life such as trees, sun, wind, day and night are all expressions of His grace. Truthful devotees thank God for His grace whenever they pluck a flower or a leave, whenever they take a bath in any holy river, whenever it rains, when there is sunrise or sunset, when there is good harvest and so on. In every prayer to God the devotee expresses hearty praise and thankfulness to God for his existence and wellbeing. Prayers, illustrate God and various deities as father and mother Who can protect the worshiper. All *namaḥ* is nothing but thankfulness. It shows sense of honour and gratitude towards respectable.

- *Namo Bharanta emasi* /RV1.1.7

- *Tryambakam yajāmahe*/ YV 3.60

- *Bhūyiṣtham te nama uktim vidhema*/ RV 1.189.1; YV 3.25, 40.16

Similarly, a popular Sanskrit Prayer says, "You are my mother, You are my father, You are my relative, You are my friend, You are my learning, You are my wealth and You are all and every thing for me."

Tvameva mātā ca pitā tvameva

tvameva bandhuśca sakhā tvameva/

Tvameva vidyā draviṇam tvameva

tvameva sarvam mama devadeva//

Feeling of gratitude involves one's thought, speech and action. It is desired by a devotee that God always be in his memory so that he can lead a happy life by thanking Him. Devotee sings enumerable glories of God with feelings of dedication, and surrender to

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Him. He performs religious rites for his purification and also for pleasing God. Praise and prayer to God is a natural function of a holy man because he likes to listen and sing enormous glories of God.

- *Tajo asi tejo mayi dhihi/*
Vīryam asi vīryam mayi dhihi/
Balma asi balam mayi dhihi/ YV19.9

VII. Expression of Gratitude to God

According to Vedic view, various types of help and support received in one's growth can be classified into three categories. They are – family and friends, 2. The great sages, and 3.God. These are called three debts – *Pitri Ṛṇa*, *Ṛṣi Ṛṇa*, and *Deva Ṛṇa.* Family and friend provide help and support in our immediate necessities. The great sages and teachers have provided the various levels of knowledge about life and nature which is always very helpful in our growth. God has provided us life and every thing to lead a good life. '*Jīvem Sardaḥ Satam*' is a famous prayer of Vedic origin. Besides, He has provided vast nature and its beautiful variations through seasons and other diverse elements for sustenance and growth. The Vedas direct that one has to repay these debts in one's life by performing certain prescribed actions and above all, by expressing gratitude for them time to time through prayers or *yajans*. The act of giving earnest thanks is an elevating one because it also expresses the humility and humbleness of a person and reflects one's wisdom in recognizing the limitation of the individual ego and ability. It also provides everyone a calm, blissful and joyous frame of mind.

VIII. Perfection Pertains to Providence

For everlasting peace and bliss of mankind it is imperative that human beings should possess some divine qualities. In comparison to Maker, man is a feeble and frail creature full of flaws and foibles. Man, however strong he may be, is after all a tiny creature in the vast cosmos. Hence, he should not be puffed up with pride over his victory and forget his magnificent Master who is Supreme and sole Sovereign of the universe. He should ascribe his triumph to grace of God. He should resign himself to the will of Magnificent Maker and entrust all his desires and deeds to benign Benefactor. Man is abode of errors. Perfection pertains to Providence only. Admiration is attributed to omnipotent Almighty only. Obeisance suits Supreme Being only. Eulogy and praise befit beneficent Giver of bliss only. Adoration behooves benign Being only. A prayer from the Veda says: 'Profound obeisance is offered to Provider of bliss! Heartfelt homage is paid to beneficent Lord! Sincerest salute is made to benevolent God! Affectionate adoration is rendered to blissful and benign Supreme Being!'

-Namaḥ śambhavāya ca mayobhavāya ca/ namaḥ śankarāya caMayaskarāya

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ca/ namaḥ śivāya ca śivatarāya ca//

-YV 16.41

IX. *Bhak*ti Tradition in Ancient India

The charm of *Gīta*, Divine Song, appears more decided, when we find there an assurance from God about his constant relation and unconditional love with devotee. The ninth chapter deals with Divine constitution in which all creatures rest. The Lord describes that the surest way to approach Divine is to have unswerving devotion (*Ananyā bhakti*) with a life and conduct set forth in the scriptures. The verse says, "On Me fix your mind; be devoted to Me, worship Me, prostrate yourself before Me, harmonized thus in the Self, you shall come unto Me, having Me as your supreme goal" (Gītā 9. 34). "By one-pointed devotion to Me alone will you be able to know Me, see Me and enter Me" (Gītā 11.54). The eleventh chapter is called *Viśvarūpadarśna* i.e. the vision of the universal form of the Almighty. Here Śrī Kṛṣṇa showed his Almighty form to Arjun to widen his vision and to put into his mind a higher conception of worship. Finally Arjun, amazed and puzzled by the glorious manifestation of the God, offered his prayers wholeheartedly, "I fall before You, with my body, I worship as is fitting; You bless me. As father with the son, as friend with friend, as lover with the beloved, please bear with me. O Supreme God! Be pleased and kind to me" (Gītā 11.44, 45).

The *Bhakti* movement attained intensity and sweep up in different parts of India during medieval times. The *Vedantic* doctrines of Ramānuja and his disciple, Ramānanda, were the main source of inspiration for this reform movement. Ramānuja declared that it was possible for all men to attain communion with God and enjoy eternal bliss through devotion. His simple maxim was: "Let no one ask a man's caste or sect, whoever adores God, is God's own." He traveled far and wide. He has twelve disciples. Of them, Raidāsa was a cobbler, Dharṇa an untouchable peasant, Senā a barber, and Kabīra a low caste weaver. This was the case with other religious reformers also. The great Tulsīdāsa who lived in the time of Akbar, was a *brāhamin* by birth but he left parents in his childhood to become a minstrel and a devotee of God. He wrote immortal poetry on Srī Rāma but his Rāma was none other than eternal God. He desired only His absolute devotion for attaining His grace and thus Tulsīdāsa prayed, "I don't have any other desire in my mind despite a desire that I can get the devotion, bliss and grace of God."

Dādu, leader of the *Bhakti* movement in Rajputanā, was a low caste spinner. Nanak was the son of a small trader.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The Marathi poet, Nā madeva was a tailor, while Tukāram was a low caste trader. The great Bengal saint Chitanya, belonged to a poor family but he showed the path of divine Bliss through devotion to God by His popular name Śrī Kṛṣṇa. Vemannā, the celebrated poet of Andhra, was an illiterate peasant. In short, the doctrine that all men are equal before God, became the central idea of this movement. These saints were neither idle philosophers nor arm-chair social reformers. They were active among the people and earned their livelihood by hard work. They raised voice against blind superstition and the caste system, and proclaimed the equality of all men before God. Kabī ra, the fifteenth–century saint of Hindu -Muslim unity, said: "The Hindu God lives at Banaras, the Muslim God at Mecca. But He who made the world, lives not in a city made by hands. There is one Father of Hindu and Muslim, one God in all matter." Some of his poems sang the unity of Hindu and Muslims: "In all vessels, whether Hindu or Muslim, there is one soul." Again he proclaimed, "There is one earth and only one potter, one is the creator of all, all the different forms are fashioned by one wheel." All saints of this movement proclaimed that in the way of devotion all people, irrespective of caste, color, creed and lineage, are basically divine and have innate urge and potentiality for liberation.

Among the modern thinkers of India, the name of Swami Vivekā nanda is significance in this context. He was a disciple of Śrī Rāmakṛṣna Paramahaṁ sa whose association gave a new implication to his life. Śrī Rāmakṛṣna, as is well known, has sincerely practiced the various leading faiths, including Christianity, Islam and several approaches of *Sana ̄ tana Dharma,* one at a time, and attained God-realization through them all. Hence, the followers of several religions hold the Paramahaṁsadeva in great esteem. Particularly, his significant pronouncement pertaining to 'more than mere religious tolerance' – *yato mat tatho path* – is hailed as a modern carter of religious freedom. The sage had said, "All religions are true: one can attain God by any path of one's choosing provided it is practiced with sincerity and devotion." Furthermore, and this is equally important in the present-day context, he inspired his favorite disciple, Swami Vivekananda, to commit himself to the service of the poor and the downtrodden whom, alas, the world has in such a large numbers everywhere; not in 'an enforced or casual manner, but as a service of the living *Nārāyaṇas* (God-in-men)'. This counsel, later on, came to form the Ramakrishna Mission for 'selfless service of suffering humanity.' It is inspiring that even today people are

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

drawn to it with devoted commitment. Swami Vivekānanda took a great effort to join together the springs of India's religious thoughts. His Vedānta was to view humanity as the manifestations of Divinity.

X. Conclusion

Vedic religion teaches moral universalism and gratitude to God. Gratitude or devotion to God has universal appeal because it constitutes the essence of all types of religious practices. Indeed, gratitude to God is an inter-religious concept and a common virtue. The Vedic seers ask us to rise to the conception of God, who is beyond imagine and concept, who can be experienced but not known, who is the vitality of the human spirit and the ultimate of all that exists. This goal represents the transcendent unity of all religions which is above their empirical diversity. In fact, the unity of different religions can be realized in an inward and spiritual way. The feeling of gratitude towards God is a common sentiment in all spiritual experience. It is a universal foundation on which rests faith and devotion. But the building that is erected on this foundation differs with each individual. Each individual has, in some sense, his unique experience. The variety of experience adds to the spiritual richness of the world. Srī Rāmakṛṣna used to narrate a short story on the importance of faith. "There are various sects among Hindus, which sect or which creed should one follow? Pārvati once asked Mahādeva 'O Lord! What is the root of the Eternal, Everlasting, All embracing Bliss?' To her Mahā deva thus replied, 'The root is faith.' Let every one perform with faith the devotions and duties of his own creed." Finally it can be said that the cult of devotion which was stared by Vedic seers in their expressions through out the Vedic literature, later on developed and continued as the purest feeling of gratitude towards God in our religious tradition of India and thus refuted all man-made discrimination.

Abbreviations:

AV-Atharvaveda; RV- Ṛgveda;
SV- Sāmaveda ;YV-Yajurveda; Up. Upaniṣad;
Kath.Up.-Kathopaniṣad;
Mund. Up.-Muṇḍakopaniṣad;
Br.Up.-Bṛhadāraṇyakopaniṣad;
Tai.Up.-Taittirīyopaniṣad;
Isa.Up.- Īśopaniṣad

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotiḥ
ISSN 2277-4351

Vol.1, No.2 (179-184) Jan-jun 2013

Themes In Vedic Mythology. Significance of Some Vedic Legends

(Kapil Dev Dvivedi, Director , Vishva Bharati Research Institute, Gyanpur (Bhadohi)

*(Lecture delivered in Centre for Religious Studies, University of Toranto Oct 12, 1990-**Editor**)*

In the Vedas we find some legends, which throw light on some divine phenomena. The deities like Vishnu, Indra, Savitar, Soma, Agni etc. are called supporters and sustainers of the world. They give light, energy, fame, progeny, happiness and bliss. They remove darkness, ignorance and obstacles. They provide happiness, intelligence and total welfare.

Lord Vishnu is called Vishnu, because he is omnipresent.

वेवेष्टि व्याप्नोति सर्वं जगद् इति विष्णुः।

Vishnu is derived from the root ViS.

In the RV. 1.22.17-21 it is said that:

Vishnu, the unconquerable preserver, strove three steps, bearing from thence fixed observances. Behold the acts of Vishnu, through which this intimate friend Indra perceives religious ceremonies. Sages constantly behold that highest position of Vishnu.

At another place (RV. 1.154.4) it is said that :- Where three stations, filled with honey, imperishable, gladden us spontaneously, who alone sustained the triple universe, the earth, the sky and all the worlds. May I attain that beloved heaven of his, where men devoted to the gods rejoice, for there is a spring of honey in the highest abode of the wide stepping Vishnu.

The author of बृहद्देवता explains what are these three steps of विष्णु. He says they are – 'पृथिव्याम् अन्तरिक्षे दिवि च ' on the earth, in the mid-region and in the sky.

त्रीणि भान्ति रजांस्यस्य, तत्पदानि तु तेजसा। तेन मेधातिथिः प्राह, विष्णुमेनं त्रिविक्रमम्।। बृह० २.६४

Vishnu is called त्रिविक्रम, because he enlightens the earth, the mid-region and heaven. विष्णु is a synonym of Sun.

विष्णु is also the Supreme Being. His abode is called परमपद i.e. salvation. The sages, who have devoted their lives in penance, visualize that supreme abode of Vishnu.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः॥ ऋग्०1.22.20

In the Vedas Indra is proclaimed as the sovereign leader of Gods. He performs several heroic deeds. बृहद्देवता says he performs three acts, viz. 1. Taking of water, 2. Slaying of वृत्र and 3. All kinds of heroic deeds.

In the book 'Nirukta' it has been discussed at length by the author यास्क that वृत्र means a demon वृत्र, or the cloud. During the rainy season the sun is covered by clouds and the sunrays disappear. This battle goes on. Sometimes the sun is Visible and sometimes the cloud prevail. With the help of पवि or thunderbolt the sun drives away clouds and becomes victorious. This phenomenon is called the battle of इन्द्र and वृत्र. When the clouds are cut-down, they shower rains and the rivers on the earth and swollen. In this way इन्द्र is called the deity of rains. He brings rains with the help of मरुत् देवता, The मरुत् देवतो are wind-gods. They always accompany इन्द्र and give him their full support. Therefore it is 'हनो वृत्रं जया अपः'

O God Indra, slay the demon वृत्र and provide water to us.

The story of इन्द्र and वृत्र also has a psychological meaning. इन्द्र is the soul and वृत्र are vices and evils. The evil thoughts envelop the soul and endanger his existance. This is a battle between the virtues and the vices. It is an eternal fight, which goes on forever. Sometimes ill-thoughts dominate and sometime the virtues. Therefore in the Vedas it is said that-

पाप्मा हतो न सोमः। यजु०६.३५

O God Indra, Slay down the evil-deeds and ill-intentions and preserve our nobility.

In the ब्राह्मणग्रन्थs वृत्रs are described as evil-deeds and vices, (पाप्मा वै वृत्रः, शत०ब्रा० ११.१.५.७). The evil-deeds are to be checked and nobility of mind and heart is to the preserved. By virtuous deeds इन्द्र becomes victorious and is supposed to be the king of all gods. Wherever a heroic deed is required, the Lord Indra is invoked for help.

In the Vedas we find several enemies of इन्द्र. They include वल, शंबर, अहि etc. They denote different shapes of clouds. At several places in the Vedas obstructions to the rains are described and that is attributed to वृत्र. वृत्र is derived from the root वृ to cover. Similarly the demons अहि, बल, शंबर are different forms of वृत्र who obstruct rains. इन्द्र slew them and waters rushed down. This is what बृहद्देवता describes :-

रसादानं तु कर्मास्य, वृत्रस्य च निबर्हणम्।
स्तुतेः प्रभुत्वं सर्वस्य, बलस्य निखिला कृतिः॥

बृहद्देवता २.६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

It is true that the original base of most of the Rigvedic deities and their concept is some aspect or force of nature and it is then turned into a personified being. Such a process of transition from nature to concrete personification has worked behind so many Rigvedic deities. In the case of Indra, it is not possible to ignore an element of a real human personality, that of a military hero, who led his followers to grim but successful battles. He is such a superhuman hero, who came to be mingled with a powerful warring force of nature, and the resulting mythology developed with an insperable mixture of happenings of real life and the nature.

Now we may take up अश्विनौ, Ashvins or अश्विनी कुमार, they are called physicians of the gods (देवानां भिषजौ). In the Vedas several hymns are ascribed to the Ashvins. They are wonderful physicians. They have not only cured the gods and divinities, but they are invoked to cure human ailments also. They cured the sage Cyavana, who was aged and suffered acute weakness. They made him young.

पुनश्च्यवानं चक्रथुर्युवानम्। ऋग्० १.११८.६

The medicine prescribed to him, now-a-days is supposed to be च्यवनप्राश. This medicine is even today very popular in india and Doctors prescribe it for strength, rejuvenation and longevity.

The बृहद्देवता gives some hint, who are these Ashvins. Where do they live and what kind of property they possess.

The बृहद्देवता remarks :-

सूर्याचन्द्रमसौ तौ हि, प्राणापानौ च तौ स्मृतौ।
अहोरात्रौ च तावेव, स्यातां तावेव रोदसी॥

बृहद्० ७.१२६

अश्नुवाते हि तौ लोकान् ज्योतिषा च रसेन च। पृथक्-पृथक् च चरतो दक्षिणेनोत्तरेण च॥ बृहद्० ७.१२७

The word अश्विन् is derived from the root अश् व्याप्तौ, to pervade. अश्विन्s mean, who are pervading everywhere. Ashvins are two seperate entities, they are spread everywhere, Both of them have different qualities. One of them gives light or energy to the world and the other gives रस juice, water or humidity. They differ in qualities. One remains on the right-handside and the other on the left hand side. One is positive and the other is negative. There properties differ and even then they are united and make one unit. Therefore बृहद्देवता remarks that they may be taken according to the context (1) The sun and moon, (2) प्राण and अपान, the vital airs called प्राण and अपान, (3) Day and night, (4) The earth and heaven.

If we take some clue from this we can explain the growth of all vegetation, plants and herbs. They require light from the sun and

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

humidity from the moon. प्राण and अपान vital airs also serve the same purpose. Day and night also perform the same functions. They are positive and negative charges.

For the human being vital air called प्राणवायु provides oxygen and अपान वायु drives out carbon dioxide. If a man is treated by प्राणायाम or Breathing exercises then he is sure to be cured and recovered. The two आश्विन्s perform this magic and they are renowned for their medical efficiency.

The Lord रुद्र has been defined veriously. The निरुक्त and बृहद्देवता say- यद् अरोदीत् तद् रुद्रस्य रुदत्वम्, while pouring rains he roared with the lightning therefore he is called रुद्र.

अरोदीदन्तरिक्षे यद्, विद्युद्वृष्टिं ददन्नृणाम् ।
चतुर्भिर्ऋषिभिस्तेन, रुद्र इत्यभिसंस्तुतः ।। बृहद्० २.३४

रुद्र is the lord of rains. He causes rains and nourishes the plants and herbs. Therefore in the YV. he is called the Lord of plants and herbs. In the 16th chapter of the Yajurveda it is said that.

वृक्षाणां पतये नमः, कक्षाणां पतये नमः, वनानां पतये नमः, ओषधीनां पतये नमः।। यजु० १६.१८-१९

वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनां पतये नमो नमः।।

यजु० १६.१७

There is a story in the पुराणs that after the churning of the ocean all jewels were taken by Gods, but none of them dared to drink the poison drawn out of the ocean. It was Lord Rudra, who come forward and drank it. Therefore he is known as विषपायी, who drinks poison and शंकर, because he blesses the people and provides them nectar or अमृत. It is well known that the plants absorb carbon dioxide and emit oxygen. रुद्र being Lord of plants and herbs, performs this fuction. In this way the plants may be regarded as personified रुद्रs and plant-protection may be regarded as service or prayer to Lord रुद्र.

On the other hand we find रुद्र as the destroyer of the world. In the Yajurveda it is said that there are innumerable रुद्र on the earth, in the mid region and in the sky.

असंख्याता सहस्राणि ये रुद्राऽअधि भूम्याम्।

यजु०१६.५४

अस्मिन् महत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवाऽअधि।

यजु० १६.५५

नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवंरुद्राऽउपश्रिताः।

यजु० १६.५६

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः।

यजु० १६.६४

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वातऽइषवः।।

यजु०१६.६५

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः।।

यजु०१६.६६

या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि

।। यजु०१६.२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

This indicates that there are innumerable forms of pollution. Lord Shiva on one hand protects the earth and he is शिव and शंकर blesses the earth with happiess and prosperity. On the other hand he is destroyer of the universe. If his orders are not obeyed and the natural laws are not strictly observed then he destroys the universe. In this way we can say that protection of environment is a must to please Lord Shiva.

There is a story in the Upanishad that the god, human beings and demons approached प्रजापति and they sought his blessings. He only said- द द द. The gods and others had hard time to understand this syllable. After a lot of deliberation the gods took the syllable द as दाम्यत, इन्द्रियदमनं कुरुत इति, control your sense-organs, eyes, ears, nose and tongue. The human beings took it as दत्त, दानं कुरुत, be charitably disposed, help the needy persons by giving them some money or other articles. The demons took this द syllable as दयत, जीवेषु दयां कुरुत, refrain from cruelity and show mercy on the creatures. In this way one syllable द uttered by प्रजापति was variously interpreted by gods and others according to their concepts.

We find in the Vedas a story of the king Pururavas and a nymph called Urvashi. The king fell in love with Urvashi and married her. They remained united for a long time and had a son named Ayus. Later on the nymph Urvashi left her husband Pururavas and went away to the heaven. The king was bewildered and kept on weeping, but he could not get her again. In the YV it is said :-

अ॒ग्नेर्ज॒नित्रमसि॒ वृषणौ स्थऽउ॒र्वश्यस्या॒युरसि पुरू॒रवाऽअसि। यजु०५.२

The dramatist Kalidas took this theme and wrote a drama called Vikramorvashiyam, where this love affair of the king Vikramaditya and Urvashi is depicted.

Who is this Pururavas and who is Urvashi ? How they united and later on are seperated. The whole story is metaphorical. Here Puru-ravas is actually the cloud, Puru means loud, and Ravas Means sound, so Pururavas means:- one who roars loudly, i.e. the cloud. Urvashi is lightning. उरु अश्नोति व्याप्नोति इति उर्वशी, one who expands herself widely. In the rainy season the cloud and lightning are united. They remain together and embrace each other. When the

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

rainy season is over, the lightning disappears. This is called seperation of पुरूरवस् and उर्वशी.

In this way the Vedic legends intend to express some subtle meanings. They personify the natural phenomena and give them names of males and females. A theme expressed by means of a story becomes more interesting and pleasing. Therefore this kind of method has been adopted in the Vedas for making it congenial.

***

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वज्जन-परिचय

प्रो० दिनेशचन्द्र शास्त्री	अध्यक्ष-वेदविभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
प्रो० वीरन्द्र कुमार अलंकार	प्रोफेसर, संस्कृतविभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ (पंजाब)
डॉ० बद्रीप्रसाद पंचोली	किशनगढ़-राजस्थान
डॉ० वेदप्रकाश शास्त्री	4-E, कैलाश नगर, फाजिलका, पंजाब
डॉ० रामनाथ वेदालंकार	वेदमन्दिर, गीता आश्रम, ज्वालापुर, हरिद्वार
डॉ० एम०एल० गुप्ता	पूर्व प्रधानाचार्य, एस०एस०जे० स्नातकोत्तर कॉलेज, भरतपुर (राज०)
डॉ० अपर्णा धीर	संयोजिका, परियोजना विभाग राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, जनकपुरी, नई दिल्ली
डॉ० अर्चना दुबे	वनस्थली, विद्यापीठ, जिला-टोंक (राजस्थान)
डॉ०कृष्णवल्लभ पालीवाल	एम०एस-सी०, पी-एच०डी०, नई दिल्ली-१२
डॉ०भवानीलाल भारतीय	सेवानिवृत्त प्रोफेसर, दयानन्द शोधपीठ, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़
(स्व०) श्रीपाद दामोदर सातवलेकर	सञ्चालक-स्वाध्यायमण्डल, पारडी (बलसाड)
(स्व०) वासुदेवशरण अग्रवाल	लखनऊ (उत्तर प्रदेश)
(स्व०) युधिष्ठिर मीमांसक	रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत (हरियाणा)
श्री सन्दीप कुमार चौहान	शोधच्छात्र-वेदविभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
डॉ० प्रशस्यमित्र शास्त्री	वैदिक प्रवक्ता, बी०-२९, आनन्द नगर, जेलरोड, रायबरेली (उ०प्र०)
डॉ० दिनेश आर०माछी	संस्कृतविभागाध्यक्ष, सरकारी विनयन कालेज शहेरा, जिला, पंचमहल, गुजरात
डॉ० भारतेन्दु द्विवेदी	एसो०प्रो० एवं विभागाध्यक्ष-सं०वि०,का०न०रा०स्ना०महाविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोही
डॉ० भारती आर्य	द्वारा-विश्वभारती अनुसन्धान परिषद्, ज्ञानपुर, भदोही (उ०प्र०)
डॉ० सुशील कुमार 'अमित'	प्राध्यापक, गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर, हरिद्वार
डॉ० राम हरीश मौर्य	पूर्व शोधच्छात्र, वेद विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
डॉ० नरेश कुमार	असिस्टेण्ट प्रोफेसर (तदर्थ) वेदविभाग, गु०कां०वि०वि०, हरिद्वार
डॉ० रामराजउपाध्याय:	निदेशक, पौरोहित्य प्रशिक्षण पाठ्यक्रम, ला०ब०शा०सं०विद्यापीठ, नई दिल्ली-१६
प्रो०शशि तिवारी	पूर्वविभागाध्यक्ष, सं०वि०, मैत्रेयी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
डॉ० कपिलदेव द्विवेदी	पूर्व निदेशक, विश्वभारती अनुसन्धान परिषद्, ज्ञानपुर, भदोही (उ०प्र०)

–०–

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

UTTMUL 000 25/35/1/2012-TC

ISSN 2277-4351

'वैदिक वाग् ज्योतिः' 'Vaidika Vāg Jyotiḥ'

An International Half Yearly Refereed Research Journal on Vedic Studies

Vol. 1, Jan-June 2013, No.2

Imprint-line

(a)	Publisher's Name	:	Prof. A.K. Chopra (Registrar)
(b)	Printer's Name	:	Chandra Kiran Saini
(c)	Owner's Name	:	Registrar (A.K. Chopra)
(d)	Printing Press with complete address	:	Kiran Offset Printing Press Near Gurukul Kangri Pharmacy Kankhal, Haridwar 249 404 (Uttarakhand)
(e)	Place of publication with address	:	Grurkula Kangri Vishwavidyalaya Haridwar 249 404 (Uttarakhand)
(f)	Editor's Name	:	Prof. Dinesh Chandra Shastri

I, **Prof. A.K. Chopra** hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Sd/-

(Prof. A.K. Chopra)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vaidika Vāg Jyotiḥ is a half yearly peer-reviewed International Vedic Journal of Gurukul Kangri Vishwavidyalaya, Haridwar . Manuscripts should be submitted to the Editor both in Electronic Form and in Hard Copy (Typed in double spacing on A4 size paper). Research papers of late eminent vedic scholars recommended by reviewers can also be consider for publication.

Copyright © Gurukul Kangri Vishwavidyalaya, Haridwar.

The Advice and Information in this Journal are believed to be true and accurate but the person associated wi.h the production of the journal can not accept any legal responsibility for any errors or omissions that may be made.

Contact for :-

Submission of Manuscript
Chief Editor **'वैदिक वाग् ज्योतिः' 'Vaidika Vāg Jyotiḥ'**
Gurukula Kangri Vishwavidyalaya, Haridwar - 249 404
Uttarakhand, INDIA
Email - dineshcshastri@gmail.com
Tel : +91- 9410192541
http:/www.gkv.ac.in

For further Information Mail to :
Prof. Dinesh Chandra Shastri
Chief Editor (dineshcshastri@gmail.com)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ISSN 2277-4351
UTTMUL 000 25/35/1/2012-TC
Vol. 1, Jan-June 2013, No.2

'वैदिक वाग् ज्योतिः' 'Vaidika Vāg Jyotiḥ'

An International Half Yearly Refereed Research Journal on Vedic Studies

Aims & Objectives

1. *To rectify and clarify the illusionary thoughts expressed by critics on Vedas, by referring to the existing logical proof and arguments, in Shastras.*

2. *To extract the knowledge-scientific or otherwise, hidden in Vedas.*

3. *To publish the original Vedic findings.*

4. *To prepare special edition on Vedic doctrine, containing detailed arguments for notified Vedic research outcomes.*

5. *To accelerate Swāmī Dayānand Sarswatī's thoughts and opinions for clearing the illusions prevailing about Vedas.*

6. *To publish critical edition of work carried out on Vedas by citing the facts that originally existed in Vedic books, rarely available.*

मुद्रकः किरण ऑफसैट प्रिंटिंग प्रैस, कनखल, हरिद्वार फोनः 9837007222

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar